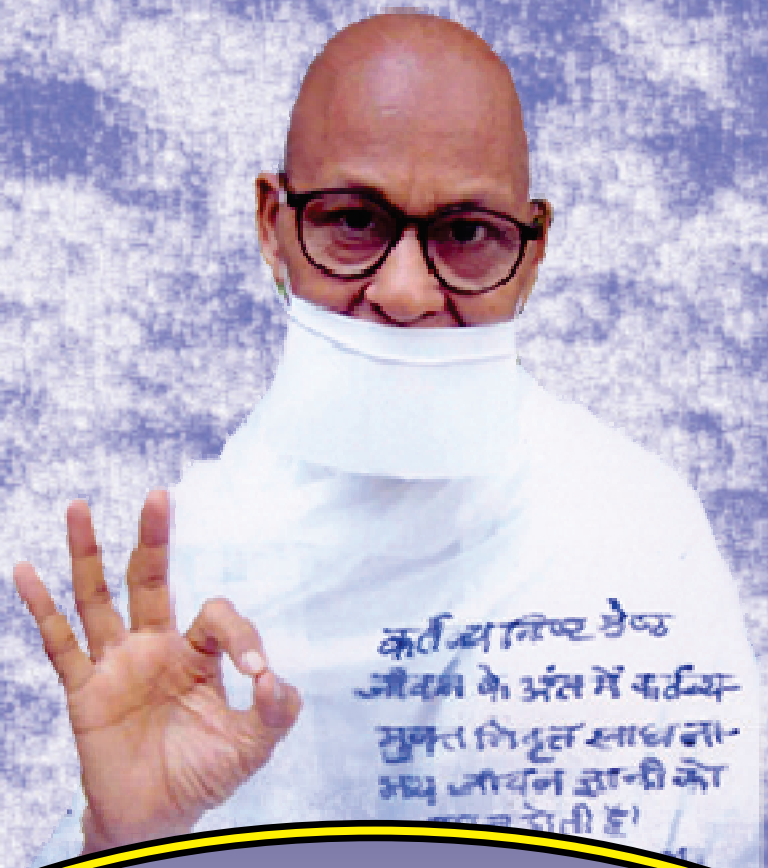

# आगम मनीषी
# श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित
# जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर
# भाग ० ६

# औपपातिक सूत्र : परिचय

## प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय किस प्रकार है ?

**उत्तर–** स्थानकवासी जैनों द्वारा मान्य आगमों का विभाजन चार भागों में विभक्त किया गया है–अ गशास्त्र, उपा गशास्त्र, छेदशास्त्र एव मूल शास्त्र। जिसमें यह प्रस्तुत आगम उपा गशास्त्र विभाग के १२ सूत्रों में से प्रथम सूत्र है । १२ शास्त्रों के उपा ग सूत्र होने में अनेक प्रकार से स्पष्टीकरण किया जाता है। तथापि इस द्वितीय विभाजन के शास्त्रों में अ तिम शास्त्र का नाम उपा गसूत्र है। ऐसा उपा ग सूत्र जिस विभाजित आगमों के अ त में है, उस कारण से उस विभाग के सभी आगम उपा ग सूत्र स ज्ञक कहलाये गये हक्त। प्रसिद्ध में जो निरयावलिकादि पाँच सूत्र है उसके प्रार भ के मूलपाठ में ही उस शास्त्र का नाम उपा गसूत्र कहा गया है और निरयावलिकादि पाँच विभाग उस शास्त्र के अ तर्गत के पाँच वर्गहक्त। पर तु किसी समय किसी के मतिभ्रम से पाँच वर्ग ही पाँच सूत्र रूप में प्रचलित हो गये हक्त। जिन्हें अनुगामी–गतानुगतिक श्रद्धा से समस्त श्वेताम्बर जैन लोग पाँच आगम बिना तर्क के मान्य करते आये हक्त। ३२ या ४५ स ख्या की आगम गिनती में भी उसे एक शास्त्र को पाँच शास्त्र गिनते आये हक्त। हकीकत में आगम प्रमाण से वह एक ही शास्त्र है, आगम प्रमाण को मान्य करने वाले विद्वान जिसे किसी भी शर्त से नकार नहीं सकते।

इस प्रकार प्रस्तुत आगम, प्रचलित पर परा के बारह उपा ग सूत्रों में अपनी विशिष्टता से प्रथम स्थान पाया हुआ है। इस सूत्र के रचना-काल की एव रचनाकार की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अतः इसे आगम लेखन के समय देवर्द्धिगणि आदि स्थविर भगव तों की रचना स्वीकार करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। क्यों कि देववाचक श्री देवर्द्धिगणि द्वारा रचित श्री न दीसूत्र की आगम सूचि में अ ग बाह्य, उत्कालिक सूत्रों में इस आगम का निर्देश प्राप्त होता है, अतः समस्त श्वेताम्बर जैनों को यह स्वीकार्य शास्त्र है ।





इस सूत्र पर प्राचीन स स्कृत टीका व्याख्या नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेव सूरि की है। अर्वाचीन स स्कृत टीका आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. की है। हिंदी गुजराती आदि जनभाषा में अर्थ एव विवेचन अनेक स्थानों से प्रकाशित हुए हक्त। आगमों के सारा श प्रावधानों के ३२ भागों में इस शास्त्र का सारा श तेवीसवें पुष्प में दिया गया है । जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर के प्रस्तुत प्रावधान में यह आगम छट्ठे भाग के अ तर्गत पाठकों के कर कमलों में उपस्थित किया जा रहा है ।

यह शास्त्र मौलिक रूप से १२०० श्लोक प्रमाण स्वीकारा गया है । जो मुख्य दो विभागों में विभक्त है– (१) समवसरण (२) उपपात । दूसरे **उपपात** विभाग की मुख्यता से ही इस शास्त्र का नामकरण **'औपपातिक सूत्र'** किया गया है ।

## प्रश्न–२ : उपा गसूत्र कौन कौन से हक्त और उनका न दीसूत्र में क्या स्थान हक्त ?

**उत्तर–** प्रसिद्ध १२ उपा ग सूत्र इस प्रकार है– (१) औपपातिक सूत्र (२) राजप्रश्नीय सूत्र (३) जीवाभिगम सूत्र (४) प्रज्ञापना सूत्र (५) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र (६) चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र (७) सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र (८ से १२) निरयावलिका आदि पाँच सूत्र अर्थात् उपा ग सूत्र ।

न दीसूत्र की आगम सूचि के अ गबाह्य **कालिक** आगम सूत्रों में ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र तथा च द्रप्रज्ञप्ति सूत्र का नाम है। शेष १० उपा ग सूत्रों का निर्देश वहाँ उत्कालिक सूत्रों की सूचि में प्राप्त होता है ।अतः स्पष्ट होता है कि वे सभी उपा ग आगम प्राचीन काल से हैक्त। इन १२ में से केवल प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार का नाम श्यामाचार्य प्राप्त होता है । इस सूत्र की रचना आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय के कालकाचार्य के द्वारा हुई थी या करवाई गई थी, यह हकीकत है । किन्तु कुछ भी लिखित इतिहास नहीं मिलने से देवर्द्धिगणि के पूर्व हुए श्यामाचार्य से इस सूत्र की रचना का स ब ध स्थापित कर दिया गया है। वास्तव में शास्त्र लेखन के पहले एव दृष्टिवाद अ ग की मौजूदगी में ऐसे तत्त्व

शास्त्र की रचना का कोई कारण नहीं था। शेष उपा गसूत्र के रचनाकार का नाम अप्राप्त है। अतः यह स्वीकारना सहज योग्य होता है कि दृष्टिवाद को लेखन नहीं करने के निर्णय में ऐसे अनेक शास्त्रों का स कलन लेखन देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आदि की देखरेख में हुआ है और वह सामुहिक आगम लेखन स कलन मात्र होने से उसमें किसी के नामकरण की आवश्यकता नहीं रही। इसलिये न दीसूत्र आदि अनेक आगमों के रचनाकार आज तक अज्ञात है। प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार का नाम भी बाद की प्रक्षिप्त गाथाओं में है किंतु मूल रचना की गाथाओं में नहीं है। अतः ये बिना नामकरण वाले सभी शास्त्र जो न दी सूत्र की सूचि में है वे एक पूर्वधरों की(देवर्द्धिगणि आदि की) उपस्थिति, स रक्षण में स कलित, स पादित, लिखित है। ऐसा श्रद्धा के साथ स्वीकारना उचित होता है।

**प्रश्न–३ : प्रस्तुत सूत्र का विषय स कलन किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** इस औपपातिक सूत्र का विषय दो अध्याय के रूप में माना जाता है। प्रथम का नाम समवसरण है, दूसरे का नाम उपपात है। प्रथम अध्याय में नगरी, उद्यान, चैत्य, वृक्ष, राजा, भगवान महावीर का शरीर, उनकी शिष्य स पदा, परिषद में देव, मनुष्य एव नरेन्द्र का आगमन, मौलिक उपदेश, व्रत धारण, शिष्य सम्पदा, परिषद विसर्जन आदि वर्णन है। दूसरे अध्याय रूप विभाग में अस यत जीवों का, परिव्राजकों का एव कुश्रमणों का देवों में उत्पन्न होने का वर्णन है। सुश्रमणों एव सुश्रावकों का आचार, गुण एव आराधना का वर्णन है। अ त में आराधक सुव्रती जीवों की देवगति एव सिद्धगति, केवलि समुद्घात, सिद्ध स्वरूप एव उनके सुखों का वर्णन है।

**विशेषताएँ :–** इसमें एक ओर जहाँ सामाजिक, राजनैतिक, नागरिक चर्चा है तो दूसरी ओर धार्मिक, दार्शनिक, सा स्कृतिक तथ्यों का सु दर प्रतिपादन है। इस सूत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भगवती आदि अ ग आगमों में भी इस सूत्र को देखने का स केत किया है। इसका कारण यह है कि यहाँ अनेक विषयों का विस्तार से वर्णन है जिनका कि अन्य





सूत्रों में स क्षिप्त कथन है। इसमें श्रमण भगवान महावीर के समस्त अ गोपा गों का उपमायुक्त वर्णन है। समवसरण का भी सजीव चित्रण हुआ है। भगवान की उपदेश विधि भी यहाँ सुरक्षित है। तप का सु दर विश्लेषण भेद-प्रभेदों द्वारा किया गया है। इसमें वैदिक और श्रमण पर परा के परिव्राजकों, तापसों एव श्रमणों की आचारस हिता भी दी गई है। उसी बीच अ बड़ स न्यासी का रोचक वर्णन है। अ त मेंसिद्धावस्था का सा गोपा ग स्वरूप समझाया गया है।

# प्रथम विभाग : समवसरण

**प्रश्न–१ : प्रथम विभाग के नामकरण की सार्थकता क्या है और यहाँ नगरी आदि कितने ही विस्तृत वर्णन क्यों है ?**

**उत्तर–** किसी नगरी में तीर्थंकरादि का पधारना होता है उसे आगम भाषा में 'समवसृत होना' कहा जाता है, यथा– **सामी समोसढ़े, सामी समोसरिए।** भगवान के दर्शन व दन पर्युपासना करने के लिये मनुष्य देवादि के परिषद के रूप में एकत्रित होने को भी **समवसरण** कहा जाता है। इस प्रकार प्रार भिक वर्णन समवसरण रूप होने से इस विभाग का यह सार्थक नाम 'समवसरण' है।

प्रस्तुत शास्त्र के प्रथम विभाग में च पानगरी में भगवान के समवसृत होने(पधारने) के पहले एव साथ में नगरी, चैत्य, वन–उद्यान, वृक्ष, शिलापट्टक, अशोक वृक्ष आदि का तथा ऋद्धि सहित कोणिक राजा, धारिणी राणी, प्रवृत्ति निवेदक आदि का विस्तृत वर्णन है। राजा एव इन्द्र का तथा अन्य जन समूह के आगमन का विस्तृत वर्णन है।

जैन श्रमणों के लिये जैन आगमों में कोई भी दर्शनीय रोचक स्थल देखने जाने का इन्द्रिय पोषण की अपेक्षा निषेध है तथापि ज्ञान अनुभव के लिये साधकों को आगम से ही अनेक विषयों का ज्ञान परिज्ञान हो जाय, ऐसे ही हेतुओं से क्षेत्रीय, सामाजिक, राजकीय, सा स्कृतिक, जीवादि तत्त्व, सामुहिक यात्रा, स्त्री शरीर, पुरुष शरीर,

द्वीपसमुद्रों का क्षेत्रीय वर्णन, ज्योतिष म ड़ल स ब धी आकाशीय वर्णन, देवलोक, नरकलोक, स पूर्णलोक-अलोक का वर्णन आगमों में भरपूर रहा हुआ है।

इसी दृष्टिकोण से तथा आगम लेखन समय के विशिष्ट निर्णय से इस आगम के प्रार भ में समवसरण वर्णन के पूर्व नगरी, देवालय, बगीचे के अनेक वृक्ष, अशोक वृक्ष, शिला आदि का और भगवान के समवसृत होने का विस्तृत वर्णन रखा गया है। जिसमें यह भी हेतु रहा है कि फिर अन्य अ गशास्त्र या उपा गादि कोई भी शास्त्र में पुनः नगरी आदि का विस्तृत वर्णन लेखन नहीं करना पड़े और स क्षिप्त पाठ देकर अवशेष वर्णन को **जाव** आदि पदों से सूचित कर दिया जाय। अतः प्रत्येक **आगम** के अ दर आने वाले **नगरी आदि** के वर्णन को वहाँ विस्तृत नहीं किया गया है। इसी कारण आगम लेखन समय से ही इस शास्त्र का महत्त्व विशिष्ट हो गया हो, यथा- **जहा उववाइए**। जैसा औपपातिक सूत्र में विस्तृत वर्णन है वैसा यहाँ भी समझ लेना।

**प्रश्न-२ : चम्पानगरी में भगवान महावीर स्वामी का कितने स त सतियों के साथ पदार्पण हुआ था ?**

यहा के प्रार भिक विस्तृत वर्णन में यह दर्शाया गया है कि भगवान महावीर स्वामी एकदा च पानगरी के पूर्णभद्र देवालय के बगीचे में पधारे एव अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्टक ऊपर विराजमान हुए। यहाँ भगवान के साथ १४००० श्रमण और ३६००० साध्वियों का कथन है वह मात्र स पदा का घोष पाठ समझना चाहिये। क्यों कि भगवान १४००० स तों को(सभी को) साथ में नहीं रखते है तथा साध्वियों का तो विहार में साथ में रहना जिनशासन में निषिद्ध ही माना गया है। अतः किसी भी तीर्थंकर के विचरण स ब धी वर्णन में साधु-साध्वियों का जो कथन शास्त्र में देखने को मिलता है उसे एका तिक अर्थ में नहीं समझ लेना कि भगवान की मौजूदगी में सभी साधु-साध्वी भगवान के साथ ही रहते। किंतु आवश्यक और उपयुक्त स ख्या में स त साथ में रहते। शेष अलग-अलग योग्यतानुसार अपने योग्य ग्रुपों में विचरण करते थे।





एव साध्वियों का विहार-विचरण अलग ही होता है एक साथ नहीं होता है। मात्र कथन शैली में स पूर्ण स पदा युक्त विचरण कहने की पद्धति होती है। दूसरी बात यह है १४-३६ हजार की उत्कृष्ट साधु-साध्वी स पदा भगवान की पूरे जीवन में किसी समय थी। प्रार भ के वर्षों में जघन्य मध्यम स ख्या भी रही होगी तो भी उस समय के प्रस ग कथन में भी एक घोष पाठ की समानता कायम रखते हुए कथन शैली अपनाई गई है।

**प्रश्न-३ : कोणिक राजा ने भगवान के प्रति भक्ति दर्शक कौन सा अनुष्ठान कर रखा था ?**

**उत्तर-** भगवान महावीर के विचरण स ब धी तथा दैनिक प्रवृत्ति स ब धी एव कुशलक्षेम स ब धी समाचार हमेशा नियमित प्राप्त होने की व्यवस्था कोणिक राजा ने कर रखी थी। इस व्यवस्था के सुचारु स चालन के लिये राजा ने अत्यधिक वेतन वाले एक पुरुष को नियुक्त किया था। जिसे शास्त्र में **प्रवृत्ति वादक** कहा गया है। इस नियुक्त पुरुष ने अन्य अनेक पुरुषों को, अनेक प्रकार की वृत्ति-वेतन से लगा रखा था। जो भगवान के दैनिक समाचार आगे से आगे देते रहते थे। जिस प्रकार आज-कल कूरियर वाले अथवा दैनिक समाचार पत्र वाले आगे से आगे अपने नियुक्त व्यक्तियों के माध्यम से आदान प्रदान करते हक ऊसी तरह राजा के उस नियुक्त व्यक्ति ने अनेक स देशवाहक नियुक्त कर रखे थे। इस प्रकार भगवान के दैनिक समाचार प्राप्त करने की व्यवस्था से कोणिक राजा की प्रगाढ़ भक्ति प्रकट होती है।

उपनगर में भगवान के पधारने की सूचना देने पर उस पुरुष को १ लाख ८ सुवर्णमुद्रा दी गई एव नगरी में आने की सूचना देने पर १२ लाख सुवर्ण मुद्रा दी। यह भी कोणिक की भगवान के प्रति भक्ति का प्रागटय करने वाला उदारता भरा आचरण है।

**प्रश्न-४ : भगवान की स पदा के श्रमणों के स सारी जीवन की स पदा, वैराग्य एव आध्यात्मिक स पदा का वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** भगवान महावीर के चौदह हजार अ तेवासी शिष्य थे, इनमें से कई राजा, महाराजा, म त्री, महाम त्री, सेठ, सार्थवाह, कुमार, राजकर्मचारी,

सुभट, योद्धा, सेनापति, अधिकारी, सेठ, इभ्य सेठ आदि उत्तम जाति कुल गुण वाले, राजा से भी गुणाधिक एव इच्छित भोगसामग्री से युक्त होते हुए भी जिन्होंने सा सारिक भोग स ब धी सुखों को किंपाक फल के समान दु:खदायी जानकर, जीवन को जल बुद-बुद के समान, ओस बिन्दु के समान, च चल, नाशवान जानकर प्राप्त सा सारिक ऋद्धि-स पदा, घर परिवार को त्याग कर, उपलब्ध स पत्ति का त्याग एव वितरण या दान करके स पूर्ण स पदा को मानो वस्त्र पर लगी रज के समान झाड़ कर, त्याग कर, मु ड़ित होकर, श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समीप आत्मकल्याण साधना के लिए श्रमण दीक्षा अ गीकार की। उनमें से कईयों को दीक्षित हुए आधा महिना, एक महिना, दो, तीन, चार महिना हुआ था। कईयों को और अधिक महिने एव वर्ष हुए थे अर्थात् विभिन्न दीक्षा पर्याय वाले अनेकानेक श्रमण थे ।

कई श्रमण मति एव श्रुत यों दो-दो ज्ञान धारण करने वाले थे । कई अवधिज्ञानी, मन:पर्यव ज्ञानी एव कई केवलज्ञान-दर्शन के धारी, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे । कई श्रमण मनोबल, कई कायबल, कई वचनबल के उत्कृष्ट धारक थे। कई खेलोषधि आदि लब्धिजन्य विशेषताओं के धारक थे। कई कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, पटबुद्धि, पदानुसारीबुद्धि के धनी थे। कई कानों के अलावा दूसरी इन्द्रियों से शब्दग्रहण करने में सक्षम थे और कई ऐसी अनेक विशेषताओं लब्धियों से युक्त थे। कई रत्नावली कनकावली, एकावली, लघुसि ह निष्क्रीड़ित, महासि ह निष्क्रीड़ित, भद्र प्रतिमा, महाभद्र प्रतिमा, सर्वतोभद्र प्रतिमा, आय बिल वर्धमान तप के धारक थे। कई ऋजुमति, विपुलमति मन:पर्यवज्ञान के धारक थे। कई आकाशगामिनि विद्या के या वैक्रिय लब्धि के धारक थे।

**प्रश्न–५ : च पानगरी में भगवान के पधारने पर इन्द्रों का, देव-देवियों का आगमन हुआ, क्या वैसा सभी बड़ी नगरियों में होता है ?**

**उत्तर–** कोई विशिष्ट प्रस ग से ही ६४ इन्द्रों सहित देव-देवियों का आगमन समवसरण में होता है। सदा या सभी बड़ी नगरियों में ऐसा होना कोई जरूरी नहीं होता है । सामान्य देव या सामानिक देव अकेलेएव परिवार ऋद्धि सहित कभी कभी कहीं आते रहते हों तो वह स भवित है।





**प्रश्न–६ : कोणिक राजा ने भगवान के पधारने पर नगरी में आर भ-समार भ और सजावट की प्रवृत्ति क्यों की थी ?**

**उत्तर–** कोणिक राजाने भगवान के लिये या भगवान के स्वागत के लिये ऐसा कुछ नहीं किया था। भगवान के पदार्पण के बाद तो नगरी में सफाई, सु दरता अपनी इज्जत शान के लिये रखना राजाओं का अपना निजी कर्तव्य हो जाता है। क्यों कि ऐसे प्रस ग पर अनेक देव-देवियों का अन्य राजाओं आदि का आवागमन भी नगरी में स भव रहता है । खुद को भी नगरी में से होकर ही भगवान की सेवा में पहुँचना होता है अत: अपने ही उद्देश्य प्रयोजन से कोणिक राजा ने नगरी में सफाई सजावट आदि कृत्य करवाये थे। इस वर्णन का आल बन लेकर आज स तों के आने के समय स्वागत रूप में आर भ समार भ या देखाव-आड़ बर किया जाना उचित नहीं माना जा सकता है।

**प्रश्न–७ : राजा और राणी भगवान के दर्शन के लिये साथ में ही जाते है ?**

**उत्तर–** वर्णन करने की पद्धति में पहले राजा का वर्णन पूर्ण कर फिर राणिओं का वर्णन किया जाता है। किंतु दोनों को जाना ही है और रथ वाहन तैयार करने का आदेश भी राजा के द्वारा प्रार भ में एक साथ दे दिया जाता है। अत: दोनों का साथ में जाने का समझना ही योग्य होता है। राजा इतनी बड़ी ऋद्धि ठाठ-बाठ से जाय और राणिया पीछे से अकेली जाय ऐसा उपयुक्त भी नहीं है।

दोनों ही ठाठ-बाठ से साथ में सपरिवार जाते हक्त। समवसरण में स्त्री परिषद की अलग व्यवस्था होती है। वहाँ पर राणियाँ नहीं बैठ कर वे राजा के साथ ही आगे के नियुक्त स्थान में राजा को सन्मुख रखती हुई बैठती है। अन्य सारे स्त्रीपुरुष अलग-अलग अपनी-अपनी परिषद में बैठते है। यहाँ पाठ में–**पुरओ काउ ठिइयाचेव** इन शब्दों से ऐसा अर्थ उत्पन्न किया जाता है कि भगवान के समवसरण में राणियाँ एव समस्त स्त्रियाँ खड़ी रहती थी। राजसी वैभव युक्त सुकुमार राणियाँ, सेठाणियाँ आदि घ टा दो घ टा प्रवचन में और परिषद के आगे की जगह

में खड़े रहकर अपना प्रदर्शन करे, ऐसा समुचित नहीं होता तथा इतनी देर खड़ा रहना शक्य भी नहीं होता है। अतः इस उपरोक्त पाठ में **चेव** शब्द खड़े रहने की विशेषता के लिये नहीं किंतु **पुरओ काउ** की विशेषता के लिये दिया गया है कि अन्य स्त्रियाँ, स्त्री परिषद में बैठती है। जब कि विशिष्ट स्त्रियाँ अपने पति के साथ ही नियुक्त स्थान पर उन्हें सन्मुख रखते हुए अर्थात् उनके पीछे ही बैठती है। प्रस्तुत पाठ में **स्थिता** शब्द से भी भ्रम उत्पन्न होता है किंतु यहाँ यह शब्द बैठने के अर्थ का द्योतक है खड़े रहने का एका त अर्थवाला शब्द नहीं है। **स्थिर होकर बैठने** के अर्थ में उस शब्द को समझना चाहिये। यों भी सभा में स्त्रियों को अपने शरीर को स कुचित करके बैठना ही उचित होता है। स्त्रियों का पुरुषों की विशाल परिषद के बीच खड़े रहना अशोभनीय सा भी होता है। अतः आगम में प्रयुक्त शब्दों का प्रस गानुकूल अर्थ करना ही उचित होता है ।

**प्रश्न–८ : भगवान की धर्मदेशना का जो यहाँ विस्तृत कथन है तो क्या वैसा ही धर्मोपदेश हमेशा एक सरीखा होना समझना ?**

**उत्तर–** भगवान का धर्मोपदेश परिषद के योग्य अनुकूल नूतन नूतन पद्धति से होना स्वीकारना चाहिये। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हक्त। परिषद के मुख्य व्यक्ति को लक्ष्य में रखकर या समस्त परिषद के लक्ष्य से योग्य विषय को लेकर ही उनका प्रवचन होता है। प्रस्तुत में शास्त्रकार ने एक सामान्य उपदेश का स कलन किया है ऐसा समझना चाहिये । तीर्थंकर रटा रटाया एक सरीखा उपदेश हमेशा देते हों यह उपयुक्त नहीं है अथवा वे केवल अव्यक्त ध्वनि ही करते है ऐसा मानना भी आगम सम्मत नहीं है ।

**प्रश्न–९ : भगवान की भाषा अर्धमागधी ही क्यों कही गई है ?**

**उत्तर–** अर्धमागधी भाषा में शास्त्रों की रचना गणधर प्रभु करते हैक्त, इस तथ्य को लेकर ऐसा मान लिया जाता है कि भगवान सदा अर्धमागधी भाषा में ही बोलते हक्त ।

वास्तव में बोलचाल की भाषा से महत्वपूर्ण शास्त्रों की भाषा कुछ भिन्न और कठिन होती है। अन्यथा बोलने की भाषा के शब्द





मूलपाठ में मिश्रण होने की शक्यता रहती है। अतः शास्त्र रचना की भाषा, बोलने की भाषा से विशिष्ट होनी चाहिये, तभी शास्त्र की स्वत त्र महत्ता एव शुद्धता अथवा निर्भेलता कायम रह सकती है ।

उपा गसूत्रों में किसी भी विकृतिभ्रम आदि कारण से तीर्थंकरों के प्रवचन की भाषा, आगम की भाषा की नकल रूप अर्धमागधी कह दी गई है। किंतु किसी भी अ गसूत्र में इस बात पुष्टि करने वाला पाठ उपलब्ध नहीं होता है। यों भी सोचा जाय तो क्षेत्र, काल, व्यक्ति, परिषद के योग्य सरल भाषा में उपदेश होना समुचित होता है। देवों की और आगमों की भाषा अर्धमागधी होना तो उपयुक्त होता है पर तु उपदेश की भाषा तो परिषद की मुख्यता से होनी चाहिये अर्थात् वक्ता अनेक भाषाओं में निष्णात है तो वह उपस्थित परिषद के बहुमत-अभ्यस्त भाषा में वक्तव्य देना लाभकारी समझेगा। वैसे ही तीर्थंकर भी जनानुकूल, क्षेत्रानुकूल कोई भी भाषा में प्रवचन फरमा सकते है एव प्रश्न वार्तालाप आदि भी जनभोग्य कोई भी भाषा में कर सकते ह्त। उनके प्रवचन को अर्धमागधी भाषा से प्रतिबद्ध करना या हमेशा अर्धमागधी भाषा में ही बात करते हैं, ऐसा मानना एक विचार शून्य प्रवाह मात्र बन गया है। ऐसा आभास होता है।

आज हमारे उपलब्ध आगम अर्धमागधी भाषा में है। उसे आम जनता पढ़कर या सुनकर अर्थ भाव को समझ नहीं सकती है। तो ऐसी भाषा का वक्तव्य जनता के क्या काम का होगा। वचन अतिशय से परिवर्तितत भाषा में तीर्थंकर के वचनों की मौलिकता नहीं रह पाने से जिनवाणी की प्रभावकता असरकारकता रहना कम स भव होगा । अतः मौलिक भाषा और जनभाषा में ही भगवान का प्रवचन होना स्वीकारना चाहिये तथा तिर्यंच और देवो के लिये एव अल्प स ख्यक अन्य भाषी मनुष्यों के लिये वचनातिशय का उपयोग समझना चाहिये । किन्तु प्रवचन की मुख्य भाषा, मुख्य परिषद या अधिकतम परिषद के अनुकूल समझना चाहिये ।

**प्रश्न–१० : भगवान महावीर स्वामी के गुणों का एव शरीर का वर्णन यहाँ किस प्रकार किया गया है ?**

**उत्तर**– ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भगवान के च पानगरी में पधारने का वर्णन है। उसी प्रस ग से भगवान के णमोत्थुण वर्णित गुणों का तथा अन्य भी अनेक गुणों का एव शरीर शौष्ठव का वर्णन मस्तक के बालों से प्रार भ करके पाँव के नखों तक क्रमशः समस्त अ गोपा गो का स्पष्ट वर्णन किया गया है। वह इस प्रकार है–

श्रमण भगवान महावीर स्वामी धर्म की आदि करने वाले, स्वय स बुद्ध तीर्थंकर थे, पुरूषोत्तम आदि णमोत्थुण पठित गुणों से युक्त थे । अरहा–पूज्यनीय, रागादि विजेता, केवलज्ञान युक्त, सात हाथ की ऊँचाई से युक्त, समचौरस स स्थान एव वज्र-ऋषभनाराच स हनन से युक्त, शरीर के अ तर्वर्ती पवन के उचित वेग से युक्त, निर्दोष गुदाशय युक्त, कबूतर के समान पाचन शक्ति वाले थे। पेट और पीठ के नीचे के दोनो पार्श्व तथा ज घाएँ सु दर सुगठित थी। उनका मुख कमल सुरभिमय निश्वास से युक्त था। उत्तम त्वचा से युक्त, निरोग प्रशस्त श्वेत मा स युक्त, जल्ल, मल एव दाग आदि से वर्जित शरीर था। अतएव निरुपलेप, स्वच्छ, दीप्ति से उद्योतित प्रत्येक अ गोपा ग थे।

उत्तम लक्षणमय उन्नत मस्तक था। मुलायम काले चमकीले घु घराले घने मस्तक पर केश थे। छत्राकार मस्तक का शिखर, फोड़े फुँसी घाव के चिन्हों से रहित, अर्द्ध चन्द्र सम ललाट, पूर्ण चन्द्र सम मुख, सुहावने कान, पुष्ट कपोल, कुछ खींचे हुए धनुष के समान सु दर टेढ़ी भाक्तहे, पु ड़रीक कमल के समान सफेद नयन, पद्मकमल के समान विकसित आँखे, गरूड़ की चोंच की तरह ल बी सीधी उन्नत नासिका, बिम्बफल के सदृश ओंठ एव दा तों की श्रेणी गाय के दूध जैसी सफेद थी। दाँत अख ड़ परिपूर्ण सु दराकार थे। जिह्वा और तालु तप्त स्वर्ण सम लाल थे। दाढ़ी मूँछ के बाल अवस्थित(मर्यादित) रहते थे। ठुड्डी मा सल सुगठित थी। गर्दन चार अ गुल चौड़ी उत्तम श ख के समान त्रिवली युक्त थी ।

उत्तम हाथी सम क धे, गोल ल बी भुजाएँ, ठोस स्नायु, नागराज के समान विस्तीर्ण दीर्घ बाहु, ललाई युक्त हथेलियाँ, उन्नत कोमल सुगठित हाथ, निश्छिद्र अ गुलियाँ थी। उनकी हथेली में चन्द्र, सूर्य,





चक्र, दक्षिणावर्त, स्वस्तिक आदि की स सूचक शुभ रेखाएँ थी। उनका वक्षस्थल–सीना स्वर्ण शिला के तल के समान स्वच्छ प्रशस्त, समतल विशाल था एव स्वस्तिक चिन्ह युक्त था, मा सलता के कारण रीड़ की हड्डी दिखाई नहीं देती थी। शरीर स्वर्ण के समान दीप्त, सु दर, रोग रहित, सुनिष्पन्न एव उत्तम पुरुष के १००८ लक्षण युक्त था। पसवाड़े नीचे की तरफ क्रमशः स कड़े थे। छाती एव पेट पर रोम राजी थी। उदर के नीचे के दोनों पार्त्क सुनिष्पन्न थे। मत्स्य जैसा उदर था। उनकी नाभि गोल, सु दर एव विकसित थी। उत्तम सि ह की कमर के समान गोल घेराव लिए उनकी कमर थी ।

उत्तम घोड़े के सुनिष्पन्न गुप्ता ग की तरह गुह्य भाग था। उनका शरीर मलमूत्र विसर्जन की अपेक्षा से निर्लेप था। हाथी की सूँढ़ की तरह गठित ज घाएँ थी। घुटने अति सु दर ड़िब्बे के ढ़कने के समान थे। हिरणी की पिंड़लियों के समान उतार सहित गोल पिंड़लियाँ थी। उनके पाँव के टखने सु दर सुगठित निगूढ़ थे। पाँव मनोज्ञ बने हुए थे। पैरों की अ गुलिया क्रमशः आनुपातिक रूप में सुन्दर थी। नख ता बे के समान लाल थे। पगथलिया लाल कमल के पत्ते के समान सुकुमाल कोमल थी। उसमें रेखाओं से पर्वत, नगर, मगर, सागर तथा च द्र रूप उत्तम चिन्ह एव स्वस्तिक आदि म गल चिन्ह अ कित थे ।

उनका रूप असाधारण था, उनका तेज निर्धूम अग्नि के समान था। वे प्राणातिपात आदि आश्रव रहित, ममता रहित, अकिंचन थे। निरुपलेप–कर्मब ध से रहित थे। निर्ग्रंथ प्रवचन के उपदेष्टा, धर्मशासन के नायक, चौतीस अतिशयों, पेंतीस सत्यवचनातिशयों से युक्त थे। आकाशगत चक्र, छत्र, चँवर, स्वच्छ स्फटिक से बने पादपीठ युक्त सि हासन और धर्मध्वज, ये उनके आगे चल रहे थे ।

इस प्रकार वे श्रमण भगवान महावीर १४००० साधु, ३६००० साध्वियों के परिवार से युक्त आगे से आगे चलते हुए सुख शा ति पूर्वक एक गाँव से दूसरे गाँव विहार करते हुए च पानगर के बाहरी उपनगर में पहुँचे ।

**प्रश्न–११ : तीर्थंकर या गुरु के नगर उपवन में आने का स देश मिलने पर श्रावक परोक्ष व दन किस प्रकार करते हक्त ?**

**उत्तर–** प्रस्तुत शास्त्र के वर्णन में, कोणिक राजा भगवान के आगमन की सूचना मिलते ही सि हासन से उतरा, पादुका निकाली, राजचिन्ह– तलवार, छत्र, मुकुट, चामर दूर करके एक क धे पर रखे जाने वाले दुपट्टे को मुख के सामने किया, हाथ जोड़ कर मस्तक पर अ जलि करके परम पवित्र भावों से सात-आठ कदम तीर्थंकर की दिशा में आगे चलकर फिर बाया घुटना ऊँचा रखते हुए दाहिना घुटना जमीन पर रखकर तीन बार मस्तक भूमि पर लगाया फिर कुछ झुके हुए एव हाथों को स कुचित करके घुटनों पर रखते हुए मस्तक पर अ जलि करते हुए सिद्धों की स्तुति णमोत्थुण के पाठ से पूर्ण करी। उसके अन तर उसी णमोत्थुण के पाठ से भगवान महावीर स्वामी को अपने धर्मगुरु धर्माचार्य का स बोधन करते हुए व दन, नमस्कार किया है। इसी प्रकार की विधि से राजप्रश्नीय सूत्र वर्णित चित्त सारथी श्रमणोपासक ने केशिश्रमण को अपने धर्मगुरु धर्माचार्य स बोधन करते हुए णमोत्थुण के पाठ से परोक्ष व दन-नमस्कार किया है। तात्पर्य यह है कि परोक्ष में देव, गुरु को णमोत्थुण के पाठ से व दन किया जाता है ।

**प्रश्न–१२ : बगीचे में ठहरे हुए श्रमणों की ज्ञानाराधना किस प्रकार दर्शाई गई है ?**

**उत्तर–** कई श्रमण आचारा ग सूत्र को क ठस्थ धारण करने वाले थे। कई श्रमण सूत्रकृता ग, ठाणा ग, समवाया ग आदि को क ठस्थ धारण करने वाले थे और कई श्रमण ग्यारह अ गसूत्र अथवा स पूर्ण द्वादशा गी को धारण करने वाले थे। वे श्रमण वहाँ उद्यान में भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग छोटे बड़े समूह में विभक्त होकर बैठे थे। कोई वाचना देते, आगम पढ़ाते, पढ़ते, कोई प्रश्नोत्तर श का समाधान करते, कोई स्वाध्याय का पुनरावर्तन करते, कई चि तन मनन करते, कई अनेक विध धर्मकथा करते थे एव कई विशिष्ट आसन से स्थित होकर ध्यान में लीन बन रहे थे ।





वे भगवान के श्रमण स सार को महान समुद्र की उपमा वाला समझ कर, उसके भवभ्रमण रूप भय से उद्विग्न होकर, विरक्त भाव में लीन रहते हुए एव सयम-तप को धर्म नौका समझ कर उसकी सम्यक् रूप से सुरक्षा करते हुए, मोक्ष प्राप्ति हेतु सम्यक् प्रयत्न करते थे ।

**प्रश्न–१३ : अन्य किन-किन विषयों का समावेश इस समवसरण विभाग में हुआ है ?**

**उत्तर–** स्थविरों के गुण, अगणारों के उपमा युक्त गुण, देवों का आगमन, जनसमुदाय का आगमन, राजा राणियों का आगमन, भगवान का अस्खलित परिपूर्ण उपदेश; उपदेश में– लोक स्वरूप, १८ पाप एव उनका त्याग, दान-शील-तप-भाव आदि शुभकृत्य, निर्ग्रंथ प्रवचन का महात्म्य, चार गतियों में जाने के ४-४ कारण, जीव का मोक्ष, द्विविध धर्माचरण, श्रावकधर्म-साधुधर्म, उपस हार एव भक्तिपूर्वक परिषद का विसर्जन इत्यादि विषयों का विश्लेषण है। अणगारों के तप का विश्लेषण भी किया गया है। इन विषयों का दिग्दर्शन सारा श पुस्तक में तथा भगवतीसूत्र, प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रश्नोत्तर में स्पष्ट किया होने से यहाँ पुनः विस्तार नहीं किया है ।

# द्वितीय विभाग : उपपात

**प्रश्न–१ : इस विभाग के नामकरण की सार्थकता किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** अपने आचरणों के अनुसार जीवों की परभव में या देवगति में उत्पत्ति विषयक वर्णन होने से इस दूसरे विभाग का **"उपपात"** यह नाम सार्थक होता है। प्रश्नों का प्रार भ गौतमस्वामी द्वारा किया गया है और उत्तर भगवान के द्वारा फरमाया गया है। एक दो प्रश्नोत्तर के बाद फिर स लग्न निरूपण शैली से अनेक प्रकार के जीवों के उपपात-उत्पत्ति का कथन है ।

**प्रश्न–२ : गौतमस्वामी का गुण-परिचय किस प्रकार किया गया है और प्रार भिक प्रश्नोत्तर शैली में क्या कथन किया गया है ?**

**उत्तर–** प्रथम गणधर इन्द्रभूति गौतम श्रमण भगवान महावीर के प्रथम ज्येष्ठ शिष्य थे। सात फुट करीब उनकी अवगाहना–ऊँचाई थी। समचतुरस्र स स्थानमय, वज्रऋषभनाराच स हनन युक्त उनका पार्थिव शरीर था अर्थात् उत्तम सुड़ोल शरीर की आकृति थी एव उनका शरीर अनुपम श्रेष्ठ शक्ति से स पन्न भी था। गौर वर्ण था। वे कठोर एव विपुल तप करने वाले थे। साधना में सशक्त, विशाल गुणों के धारक, कठोरतम ब्रह्मचर्य व्रत की विशुद्ध पालना करने वाले थे। शरीर ममत्व के पूर्ण त्यागी थे। तेजोलेश्या आदि विविध लब्धियों को धारण करने वाले थे। अवधिज्ञानी एव मनःपर्यवज्ञानी श्रमण शिरोमणी थे। द्वादश अ गके धारी, १४ पूर्वधारी, अद्वितीय मतिश्रुत ज्ञानी थे। वे श्रमण गौतम तीर्थंकर प्रभु महावीर स्वामी के दृष्टि क्षेत्र में विशिष्ट ध्यान मुद्रा के आसन से आसीन होकर ध्यान में सदा लीन रहा करते थे। वह ध्यान उनका अनुप्रेक्षा एव प्रेक्षा ध्यान होता था। उन अनुप्रेक्षाओं एव प्रेक्षाओं के माध्यम से कई जिज्ञासाएँ प्राप्त कर वे श्रमण भगवान महावीरस्वामी के पास शीघ्र पहुँच जाते थे एव विनयावनत होकर समाधान प्राप्त कर लेते थे। गौतमस्वामी के प्रश्नोतर का विषय इस प्रकार है–

**पाप कर्म का ब ध–** अस यत, अविरत, पापकर्मों का त्याग नहीं करने वाला, विविध पापक्रियाएँ करने वाला, इन्द्रियों का स वरण नहीं करने वाला, एका त पापी, अज्ञानी, भाव निद्रा में सुप्त जीव, प्रमुखतः पापकर्मों का ही उपार्जन करता है एव मोहवर्धक पापकर्मों का उपार्जन करता है। मोह कर्म का वेदन करते हुए भी जीव पुनः पुनः मोहनीय कर्म का ब धकरता है। अ ततोगत्वा दसवें गुणस्थान में जाने के बाद ही मोहकर्म का ब ध रुकता है तब केवल वेदनीय कर्म का ही ब ध होता है। यहाँ मोहकर्म ब ध के साथ अन्य कर्मों का भी ब ध है किंतु अकेले वेदनीय कर्मब ध के समय वीतराग गुणस्थानों में अन्य कर्मब ध का अभाव कहा है। ये अस यत जीव जो त्रस प्राणियों की घात में लगे रहते हक्त वे मरकर नरक में जाते है। जो त्रस प्राणियों की घात में लीन नहीं रहते, उनमें से कोई जीव देव भी बन सकते है और कई अन्य गतियों में भी जा





सकते है। देवगति में कौन कौन कैसे कैसे अज्ञानी अस वृत जीव जाते है उनका स्वरूप इस प्रकार है–

(१) जो अज्ञानी प्राणी किसी प्रकार की धार्मिक भावना प्रेरणा के बिना, अशुभकर्मों के उदय से एव परिस्थिति से भूख, प्यास सहन करते हक्त, ब्रह्मचर्य पालते हक्त, स्नान नहीं करते, सर्दी गर्मी सहन करते, ड़ाँस-मच्छर जन्य कष्ट एव मैल पसीना आदि अन्य परिताप कष्ट सहन करते है, वे अल्प या अधिक समय तक इस प्रकार के दुःख भोग कर व्य तर जाति के भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस आदि देव बनते हक्त। वहाँ वे दस हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हक्त। उनका देव बनना धर्म के आराधना की कोटि में नहीं किंतु वह केवल स सार भ्रमण की कोटि में ही है।

(२) जो किसी भी प्रकार के अपराध में आने से राजपुरुषों द्वारा यातनाएँ पाकर मृत्यु को प्राप्त करते हक्त। विरोधभाव वालों के द्वारा बुरी मौत मार दिये जाते है। जो स्वतः दुःख से घबराकर किसी भी तरह आत्मघात कर लेते हक्तअचानक घटनाग्रस्त होकर बुरी मौत मर जाते है। ये सब बुरी मौत से मरने वाले रौद्र एव स क्लिष्ट परिणामों में न मरे और सहज सामान्य भावों में आर्तध्यान में मरे तो व्य तर देवों में उत्पन्न होते हक्त। वहाँ १२ हजार वर्ष की उत्कृष्ट उम्र प्राप्त करते हक्त। जघन्य दसहजार वर्ष प्राप्त करते है। इनका वह देव भव भी भवभ्रमण रूप होता है।

(३) जो स्वभाव से भद्र, उपशा त, अल्प क्रोधमान माया लोभ की प्रवृत्ति वाले है, नम्र सरल, विनीत स्वभाव वाले हैक्त, माता-पिता की सेवा करते हक्त, उनकी आज्ञा का लोप नहीं करते हक्त, अल्प इच्छा वाले, अल्प परिग्रही, अल्प आर भ-समार भ, पाप की प्रवृत्तिया करने वाले एव स्वाभाविक ही अल्प प्रवृत्तियों से जीवन निर्वाह करने वाले हक्त, वे व्रत नियम धर्माचरण, धर्म का ज्ञान न करते हुए भी देवगति में जाते है। वे व्य तर जाति के देव बनते हक्त एव अधिकतम १४ हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैक्त। इनका भी यह देव भव स सार भ्रमण में ही है।

(४) जो स्त्रियाँ पति से त्यक्त हो, बाल विधवा हो, जो राज अ तःपुर में रहती हो, जिसका पति परदेश में रहता हो, दूसरा पति नहीं करती

हो, परिस्थितिवश खाना पीना पहनना आदि सुखभोग न करती हो, स योग न मिलने से शृ गार, स्नान, धूपमाला आदि का उपयोग नहीं करती हो, मैलपसीना भूख प्यास सर्दी गर्मी डाँस मच्छर आदि के कष्ट सहन करती हो, अल्प परिग्रह एव अल्प आर भ-समार भ से ही जिसका जीवन चल रहा हो, अल्पेच्छाएँ हो, इस प्रकार अकाम ब्रह्मचर्य के पालन करने एव कष्ट सहन करने से वे व्य तर देव रूप में जन्म लेती है । वहाँ ६० हजार वर्ष की अधिकतम उम्र प्राप्त करती है। उसका यह देव भव धर्माराधना का न होकर स सार भ्रमण के चक्र का ही एक भव होता है ।

**प्रश्न–३ : त्यागी तपस्वी बाल अज्ञानी जीवों की गति किस प्रकार की दर्शाई गई है ?**

**उत्तर–** (१) एक दिवस के भोजन में पानी के अतिरिक्त एक द्रव्य लेने वाले, दो द्रव्य लेने वाले, यों तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नव, दस, एव कोई ग्यारह द्रव्य खाद्यपदार्थ लेने वाले, गो-सेवा का विशेष व्रत एव प्रदर्शन करने वाले, गृहस्थ धर्म–अतिथि सेवा, दान आदि से युक्त गृहस्थ धर्म को ही श्रेष्ठ कल्याणकारी मानने वाले एव उनका अनुसरण करने वाले, धर्म शास्त्र सुनाने वाले कथा वाचक, भक्ति-मार्गी, अनात्मवादी, क्रिया विरोधी, वृद्ध-तापस, श्रावकधर्म शास्त्र के श्रोता ब्राह्मण आदि, नौ विगय एव मद्यमा स के त्यागी; जो कि केवल सरसों के तेल की विगय खाने वाले होते हक्त। वैसे मनुष्य अल्प इच्छा, अल्प परिग्रह, अल्प पाप प्रवृत्तियों से जीवन चलाने वाले, वहाँ से मरकर व्य तर देवों में उत्कृष्ट ८४ हजार वर्ष की उम्र प्राप्त करते हैक्त। बालभाव एव अज्ञान दशा के कारण वे धर्म के आराधक नहीं होते क्त। अतः उनकी यह देव अवस्था भी भवभ्रमण की एक अवस्था है।

(२) ग गा नदी के किनारे वानप्रस्थ तापस रहते हक्त। उनमें कई अग्निहोत्री होते हक्त, कई वस्त्रधारी, कई पृथ्वी सयन वाले, श्राद्ध करने वाले, पात्र धारण करने वाले, कु ड़ी धारण करने वाले, फलाहार करने वाले, पानी में एक बार या बार बार डुबकी लगाकर स्नान करने वाले, पानी





में डूबे रहकर स्नान करने वाले, मिट्टी आदि से देह को रगड़ कर स्नान करने वाले, ग गा के दक्षिणी तट पर रहने वाले, उत्तरी तट पर रहने वाले, श ख बजाकर भिक्षा लेने वाले, ग गातट पर खड़े रहकर आवाज करके भिक्षा लेने वाले, बहुत ल बे समय तक केवल एक ही मृग या हाथी आदि का मा स खाने वाले, द ड़ को ऊँचा करके चलने वाले, दिशाप्रोक्षी-दिशाओं में जल छिड़क कर फल फूल इकट्ठे करने वाले एव प्राप्त आहार में से दान करके खाने वाले, गुफावासी, जल तटवासी, जलवासी–पानी में निवास करने वाले, वृक्ष के नीचे रहने वाले, केवल जलाहारी, केवल वायुभक्षी, शैवाल, मूल, क द, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज का आहार करने वाले, गिरे पड़े हुए ही मूल क द आदि मिले तो ही उनका आहार करने वाले, प चाग्नि ताप से शरीर को आतापित करने वाले। ये साधक विविध प्रकार के नियम युक्त वानप्रस्थ पर्याय का पालन कर उत्कृष्ट ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनकी उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की उम्र होती है। ये भी बालभाव एव अज्ञानदशा में होने के कारण अर्थात् शुद्ध निष्पाप(निर्वद्य) धर्म को नहीं समझने से धर्म के आराधक नहीं होते। अतः उनका वह प्राप्त देव भव भी मोक्ष हेतुक नहीं होता है, स सार भ्रमण रूप ही होता है ।

(३) जो श्रमण प्रव्रजित होकर नानाविध हास-परिहास या हँसी मजाक में, उटपटा ग आलाप-स लाप में, भा ड़वत कायचेष्टा कर अन्यों को हँसाने में, गान युक्त क्रीड़ा में एव नृत्य वृत्ति में विशेष अभिरूचि रखकर प्रवृत होते हक्त एव उन्हीं में आन द मानते हुए मस्त रहते हक्त। इस प्रकार मोह रूप दशा एव मोह वर्धन दशा में रहते हुए आलोचना प्रतिक्रमण न करने से वे भी श्रमण धर्म के आराधक नहीं अपितु विराधक होकर, प्रथम सौधर्म देवलोक में का दर्पिक हास्य प्रिय एव नौकर देवों के रूप में उत्पन्न होते हक्त। वहाँ उनकी उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति होती है ।

(४) **परिव्राजकों** के अनेक प्रकार होते हक्त– **१. पच्चीस** तत्त्वों को

मानने वाले एव अनात्मवादी, अनीश्वरवादी सा ख्य मतावल बी(पाँच महाभूत, ग्यारह इन्द्रिय, पाँच तन्मात्राएँ एव पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहंकार)। **२.** हठयोग अनुष्ठाता योगी **३.** महर्षि कपिल के मतावल बी **४.** भृगु ऋषि की पर परा के अनुयायी–भार्गव **५.** गुफा, पर्वत, आश्रम, देवस्थान में रहने वाले, केवल भिक्षा के लिये बस्ती में आने वाले–ह स परिव्राजक **६.** नदी तट या नदी स गम स्थानों पर रहते वे परमहंस । मृत्यु समय में वस्त्र घास आदि का भी त्याग कर देने वाले **७.** गाँव में एक रात शहर में पाँच रात ठहरने वाले एव प्राप्त भोगों को स्वीकार करने वाले **बहूदक ८.** गृहस्थावस्था में रहते हुए क्रोध, लोभ, मोह और अह कार का त्याग करने वाले कुटीव्रती या कुटीचरी **९.** नारायण में भक्तिशील परिव्राजक–कृष्ण परिव्राजक तथा आठ ब्राह्मण परिव्राजक एव आठ क्षत्रिय परिव्राजक हक्त आठ ब्राह्मण परिव्राजकों के नाम– १ कर्ण २ कक ड़ ३ अ बड़ ४ पाराशर ५ कृष्ण ६ द्वैपायन ७ देवगुप्त ८ नारद। क्षत्रिय परिव्राजकों के नाम– १ शीलधी २ शशिधर ३ नग्न ४ भग्नक ५ विदेह ६ राजराज ७ राजराम ८ बल। ये परिव्राजक चारों वेद, इतिहास, निघ टु, छःअ गों में निष्णात; व्याकरण, ज्योतिष आदि ब्राह्मण योग्य शास्त्रों में सुपरिपक्व ज्ञानयुक्त होते हक्त। ये परिव्राजक दान धर्म की एव स्वच्छता मूलक धर्म की प्ररूपणा, विश्लेषण करके युक्तिपूर्वक समझाते हैक्त और कथन करते हक्त कि हर चीज की हम मिट्टी से एव जल से शुद्धि करके पवित्र आचरण कर पवित्र बनाते हक्त। स्नान आदि से देह को पवित्र बनाकर हम और हमारे मतानुयायी स्वर्गगामी होंगे।

**परिव्राजकों की आचार प्रणाली**–(१) बावड़ी, तालाब, नदी आदि में प्रवेश नहीं करते, मार्ग में आ जाय उसकी छूट (२) स पूर्ण वाहन प्रयोग का त्याग (३) हाथी, घोड़े, गधे आदि की सवारी का भी त्याग, परवश बलात् का आगार (४) सभी प्रकार के खेल, नृत्य, कुतूहल, मनोर जन, वीणा-वादि त्र और दर्शनीय स्थलों, पदार्थों को देखना, सुनना उन्हें अकल्पनीय होता है (५) हरी वनस्पति को स्पर्श करना, रगड़ना, तोड़ना, शाखाओं, पत्तों आदि को ऊँचा करना या मोड़ना उन्हें अकल्पनीय





होता है (६) सभी प्रकार की विकथाएँ, हानिप्रद निरर्थक कथाएँ करना उन्हे अकल्पनीय होता है (७) तुम्बा, लकड़ी एव मिट्टी इन तीन के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के पात्र और पात्रब धन नहीं रखते (८) अ गूठी से लेकर चूड़ामणी पर्यंत किसी भी प्रकार के आभूषण पहनना उन्हें निषिद्ध होता है (९) गेरुए र ग के वस्त्र के अतिरिक्त किसी भी र ग के वस्त्र परिव्राजकों को नहीं कल्पते हैं (१०) किसी भी प्रकार की फूलमालाएँ वे परिव्राजक नहीं पहनते, केवल कर्णपूर(कनेर)फूल की माला की छूट (११) ग गा की मिट्टी के लेप के अतिरिक्त च दन, केसर किसी भी प्रकार का लेप शरीर पर नहीं करते (१२) परिव्राजकों को पीने के लिए दो सेर(एक प्रस्थक) जल एव हाथ पाँव पात्र आदि धोने के लिए एव स्नान के लिये आठ सेर(एक आढ़क)पानी ग्रहण करना कल्पता है। स्वच्छ, निर्मल बहता हुआ एव छाना हुआ जल लेना कल्पता है। वह जल भी कोई गृहस्थ दे तो ले सकते है बिना दिये स्वय नहीं ले सकते। इस प्रकार के आचार पालन करते हुए वे उत्कृष्टतम पाँचवे देवलोक में उत्पन्न होते हक्त। वहाँ उनकी दस सागरोपम की उत्कृष्ट उम्र होती है। शुद्ध निष्पाप(निर्वद्य)धर्म से अनभिज्ञ अज्ञात होने के कारण ये भी धर्म के आराधक नहीं होते हक्त।

**प्रश्न–४ : प्रस्थक और आढ़क माप किसे कहते हक्त ?**

**उत्तर**– अनुयोगद्वार सूत्र में इस माप का खुलासा है, यथा–

| | | |
|---|---|---|
| ***२ असृति(चुल्लु)*** | = | ***१ प्रसृति(पसलि)*** |
| ***२ पसलि*** | = | ***१ सेतिका(धोबा)*** |
| ***४ सेतिका*** | = | ***१ कुड़व(आधा सेर)*** |
| ***४ कुड़व*** | = | ***१ प्रस्थक(२ सेर)*** |
| ***४ प्रस्थक*** | = | ***१ आढ़क(८ सेर)*** |
| ***४ आढ़क*** | = | ***१ द्रोण( ३२ सेर)*** |

अ बड़ स न्यासी को उत्कृष्ट आधा आढ़क(४ सेर) पानी पीने और बर्तन धोने के उपयोग में लेना कल्पता था। एक आढ़क(८ सेर)

पानी स्नान के उपयोग में लेना उसे कल्पता था। अ बड़ स न्यासी के शिष्यों को एक प्रस्थक(दो सेर) पानी पीने में और एक आढ़क(८ सेर) पानी बर्तन धोने एव स्नान के उपयोग में लेना कल्पता था। मूल पाठ में अ बड़ के स्नान के पानी का कथन है। अन्य स न्यासियों के आचार वर्णन में स्नान के पानी का पाठ नहीं है। किंतु इन परिव्राजकों के स्नान जरूरी होता है क्यों कि ये सुचिधर्मी और जलाभिषेक से ही पवित्र होकर स्वर्ग गमन मानने वाले होते हक्त। अतः परिव्राजकों के विधान वाले पाठ में पाठ सुधार कर स्नान का पाठ स्वीकार कर लेना चाहिये ।

**प्रश्न–५ : अन्य मत के स न्यास धर्म के साथ निर्ग्रंथ प्रवचन की आराधना पालना होती है क्या ? ऐसी आराधना किसने की ?**

**उत्तर–** अन्यमत के कितने ही स न्यासियों का वर्णन आगमों में आता है, वे प्रायः भगवान से प्रतिबुद्ध होकर अन्यमत की प्रव्रज्या का त्याग कर जिनमत की प्रव्रज्या का अ गीकार कर मोक्ष साधना करते हक्त, जिसमें स्क धक स न्यासी आदि है। किंतु अ बड़ स न्यासी एक ऐसे साधक हुए है कि जिन्होंने अपनी स न्यास अवस्था का त्याग किये बिना जिनमत का एव जिनमत के श्रावक व्रतों का स्वीकार, पालन एव आराधन अपने सातसो शिष्यों सहित किया था। वे गुरु शिष्य सभी परलोक के आराधक बने थे। ऐसी मिश्र आचार प्रवृत्ति में उन्होंने भगवान का शिष्यत्व स्वीकार किया था एव भगवान ने भी उनके इस प्रकार के व्यवहार एव द्विविध आचार का विरोध नहीं किया था। यह अनेका तिक सिद्धांत में उभय पक्ष की अर्थात् भगवान एव अ बड़ दोनों की उदार एव सुमेलभरी दृष्टि एव विचारणा रही थी ।

**अ बड़ परिवार के शिष्य :–** प्रश्न तीन में कहे गये परिव्राजकों में ब्राह्मण परिव्राजक में अ बड़ का कथन है उस अ बड़ परिव्राजक का जीवन वृत्ता त अ श इस प्रकार है– अ बड़ परिव्राजक के सात सौ शिष्य थे। विचरण करते हुए एक बार उसे श्रमण भगवान महावीर स्वामी की सेवा का अवसर प्राप्त हो गया। निर्ग्रंथ प्रवचन श्रवण कर उसे श्रावक के १२ व्रत





धारण करने की रुचि हुई। भगवान ने उसे श्रावक व्रत धारण करवाये। इस प्रकार अ बड़ परिव्राजक निर्ग्रंथ प्रवचन स्वीकार कर श्रावक धर्म का पालन करते हुए परिव्राजक पर्याय में विचरण करने लगा। उसने यथासमय अपने शिष्यों को भी प्रतिबोध देकर बारह व्रतधारी श्रावक बना दिया। गृहस्थ जीवन स्वीकार न करते हुए वे परिव्राजक चर्या से विचरण करते रहे। ऐसा करने में उनके श्रावक व्रतों की आराधना में भी रूकावट नहीं आई थी। अ बड़ परिव्राजक स्वय कई बार अकेले ही विचरण करते रहते थे ।

एक बार अ बड़ के सात सौ शिष्यों ने क पिलपुर से पुरिमताल नगर के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में पीने के लिये लिया हुआ जल समाप्त हो गया। जेठ महिने की भीषण गर्मी थी, सभी प्यास से स तप्त हो गये। खोज करने पर भी स योगवश वहाँ पानी देने वाला नहीं मिल सका। सभी का निर्णय एक ही था कि आपत्तिकाल में भी अदत्त जल ग्रहण नहीं करेंगे। ग गा नदी के पास में भी पहुँच गये किंतु वहाँ मनुष्य का आवागमन गर्मी के कारण ब द हो चुका था। अ त में सभी ने नदी की बालू रेत में पादपोपगमन स थारा ग्रहण करने का निर्णय कर लिया ।

अपने सभी प्रकार के विविध भ ड़ोपकरण, वस्त्र-पात्र आदि १४ उपकरणों का त्याग किया, फिर बालूरेत पर ही पल्य कासन से बैठ कर दोनों हाथ जोड़ कर सिद्ध भगव तों को णमोत्थुण के पाठ से व दन किया, फिर दूसरी बार णमोत्थुण के पाठ से श्रमण भगवान महावीर स्वामी को व दन किया, तदन तर अपने धर्मगुरु धर्माचार्य अ बड़ स न्यासी को भावपूर्वक नमस्कार किया। फिर इस प्रकार उच्चारण किया कि पहले हमने अ बड़ परिव्राजक के समीप जीवन भर के लिये स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह का त्याग किया था एव स पूर्ण कुशील का त्याग किया था। अब हम श्रमण भगवान महावीर के समीप(परोक्ष साक्षी से) स पूर्ण हिंसा, झूठ, चोरी आदि अठारह पापों का जीवनपर्यंत त्याग करते हैक्त चारों प्रकार के आहार का त्याग करते हैक्त और अति प्रिय इस शरीर का भी पूर्ण रूप से त्याग करते हैक्त। इस प्रकार विस्तृत विधिपूर्वक **बड़ी स लेखना** के पाठ से पादपोपगमन स थारा आजीवन अनशन धारण

कर समाधिपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। यथासमय आयु पूर्ण कर वे सभी ७०० शिष्य पाँचवें देवलोक में दस सागरोपम की स्थिति में उत्पन्न हुए। ये अ बड़ के शिष्य, धर्म के आराधक हुए, क्योंकि उन्होंने परिव्राजक पर्याय में रहते हुए भी निष्पाप निर्वद्य धर्म को समझा था एव यथाशक्ति श्रावक धर्म धारण भी किया था ।

अ बड़ स न्यासी, परिव्राजक पर्याय में अकेले ही विचरण करता था। साथ ही श्रावक के बारह व्रतों का पालन भी करता था। बेले-बेले निर तर तप करने से एव यथा समय आतापना लेना आदि साधनाओं के पालन करने से उसे वैक्रिय लब्धि एव अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया था। अपने बल, शक्ति से लोगों को विस्मित आकर्षित करने के लिये वह एक साथ सौ घरों में ठहर जाता, निवास करता एव सौ घरों में भोजन करता। इस बात के प्रचार से लोगों में चर्चा भी होने लगी। वैसी चर्चा गणधर गौतमस्वामी को भी भिक्षाचरी में सुनने को मिली थी।

इस प्रकार विचरण करता हुआ वह अ बड़, निर्ग्रंथ प्रवचन में अटूट श्रद्धा रखता हुआ, श्रावक पर्याय का पालन करता हुआ ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूपेण पालन करता था एव परिव्राजक पर्याय के उपरोक्त नियमों का भी पालन करता था। विशेषता यह है कि– वह आधाकर्मी, उद्देशिक, मिश्र, क्रीत, पूतिकर्म, अध्यवपूर्वक, उधार, अनिसृष्ट, अभिहड़, स्थापित, रचित दोषों से युक्त आहार ग्रहण नहीं करता था, क तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त, ग्लानभक्त, बादलिक भक्त, पाहुणकभक्त आदि दोष वाला आहार पाणी ग्रहण नहीं करता था। क द, मूल, पत्र, पुष्प, फल, बीज भी ग्रहण नहीं करता था। उसने चार प्रकार के अनर्थद ड़ का जीवन पर्यंत त्याग कर दिया था ।

पीने के लिये एव हाथ पैर पात्रादि धोने के लिये चार सेर (आधा आढ़क)पानी ग्रहण करता था तथा स्नान के लिये वह ८ सेर(१ आढ़क) से अधिक पानी ग्रहण नहीं करता था। पानी ग्रहण के स पूर्ण नियमों का भी वह पालन करता था। अ बड़ स न्यासी अरिहंत एव अरिहंत भगवान के श्रमणों के अतिरिक्त किसी को भी व दन नमस्कार(सविधि गुरुख दन)





नहीं करता था। इस प्रकार अ बड़ परिव्राजक अपने पूर्व वेश एव चर्या के साथ श्रावक व्रतों की आराधना कर मृत्यु के समय एक महिने के स थारे से आयु पूर्ण करके पाँचवे देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी उम्र दस सागरोपम की है। वह भी धर्म का आराधक हुआ। देव भव पूर्ण होने पर अ बड़ का जीव महाविदेह क्षेत्र में उत्तम कुल में जन्म लेगा। दृढ़प्रतिज्ञ नाम रखा जायेगा। ७२ कला में पार गत होगा। यौवन वय प्राप्त होने पर माता पिता उसे भोगों का निम त्रण करेंगे किंतु वह उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। श्रमण निर्ग्रंथों के पास दीक्षा अ गीकार करेगा। अनेक वर्ष स यम पर्याय का शुद्ध आराधन करेगा। जिससे उसे केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति होगी। फिर अनेक वर्ष केवली पर्याय में विचरण कर, सम्पूर्ण कर्म क्षय कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगा। सिद्ध बुद्ध मुक्त होने के लिये ही श्रमण स यम साधना के इन निम्न कठोरतम नियमों का पालन करता हक्त–

**(१)** नग्नभाव–शरीर स स्कार त्याग **(२)** मु ड़भाव–गृह एव ममत्व परिग्रह त्याग **(३)** स्नान नहीं करना **(४)** दा तौन आदि नहीं करना **(५)** केश लु चन–मस्तक दाढ़ी मू छ के समस्त बाल हाथ से खींच कर उखाड़ना **(६)** अख ड़ ब्रह्मचर्य पालन **(७)** छत्र त्याग **(८)** जूते आदि त्याग **(९)** भूमि पर सोना अथवा पाट या काष्ट ख ड़ पर सोना **(१०)** घर घर से भिक्षा लाना **(११)** लाभालाभ मेंस तुष्ट रहना **(१२)** दूसरों के द्वारा की गई हीलना, निंदा, खि सना, गर्हा, ताड़न, तर्जन, पराभव, तिरस्कार, व्यथा, परिताप इन सब स्थितियों में समभाव एव प्रसन्नता में स्थिर रहते हुए, अन्य ऊँचे-नीचे, राग-द्वेषात्मक कोई भी स कल्प-विकल्प नहीं करना, अन्य भी छोटी-बड़ी इन्द्रिय विरोधी कष्ट कर स्थितिएँ, २२ परिषह, देव, मनुष्य, तिर्यंचकृत उपसर्ग आदि को समभाव से स्वीकार कर शा त प्रसन्न रहना इत्यादि मन के एव तन के प्रतिकूल स्थितियों का प्रतिकार न करते हुए उस अवस्था में ज्ञाता दृष्टा रहकर समभाव रखना। ये सब मन के एव तन के कष्ट साध्य नियमों को साधक कर्मों से सर्वथा मुक्त होने के लिये ही धारण करता है ।

**प्रश्न–६ : निर्ग्रंथ धर्म में दीक्षित तथापि परलोक के विराधकों की गति किस प्रकार कही है ?**

**उत्तर– गुरु प्रत्यनीक श्रमणों की गति :–** जो श्रमण निर्ग्रंथ प्रवचन में प्रव्रजित होने के बाद काला तर से अह भाव में आकर आचार्य उपाध्याय कुल, गण, गुरु आदि का तिरस्कार अकीर्ति करते है; निर्ग्रंथ प्रवचन के विपरीत प्ररूपण कर खुद भ्रमित होते हक्त, अन्यों को भी भ्रमित करतेहैक्त। इस प्रकार अभिनिवेशिक मिथ्यात्व युक्त श्रमण पर्याय का पालन करते क्त। वे साधक मृत्यु समय उन दोषों का आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना आयु पूर्ण कर उत्कृष्ट छट्ठे देवलोक में किल्विषिक(घृणित) देवों के रूप में तेरह सागरोपम की उम्र में उत्पन्न होते हक्त । ये मिथ्या मति होने से बालभाव के कारण धर्म के आराधक नहीं होते। अतः उनका वह देव भव स सार भ्रमण में ही समझना चाहिये ।

**आजीविक(गौशालक)मतावल बी की गति :–** आजीविक श्रमण कोई दो घर के अ तर या तीन चार पाँच छः सात घर के अ तर से भिक्षा लेते, कोई केवल कमल ड़ठल लेवे, कोई प्रत्येक घर से भिक्षा लेने वाले, आकाश में बिजली चमके तब भिक्षा नहीं लेने वाले, मिट्टी के बहुत बड़े बर्तन में प्रविष्ट होकर तप करने वाले इत्यादि विविध विहारचर्या एव तप करने वाले गोशालक मतावल बी काल कर उत्कृष्ट १२वें देवलोक में उत्पन्न होते हक्त । वहाँ उनकी उत्कृष्ट २२ सागरोपम की उम्र होती है। ये भी मिथ्यात्वाभिभूत अज्ञानदशा में होने से धर्म के आराधक नहीं होते हक्त ।

**आत्मोत्कर्षक कुशील श्रमणों की गति :–** जो श्रमण, निर्ग्रंथ प्रवचन में प्रव्रजित होकर काला तर से महिमा पूजा, मानप्रतिष्ठा के अभिभूत होकर स्वय का गुणानुवाद एव दूसरों का अवगुण अपवाद करते करवाते हक्त एव ड़ोरा, धागा, रक्षापोटलिका, य त्र, म त्र, त त्र आदि चमत्कार पूर्ण वृत्तियों से लोगों को आकर्षित करते हक्त। इस प्रकार के कुशील आचरणों से युक्त होकर भी श्रमण पर्याय का पालन करते हक्त। ऐसे साधक मृत्यु पर्यंत इन दोषों का परित्याग, आलोचना प्रतिक्रमण आदि नहीं करके आयुष्य पूर्ण कर जाते हैं तब वे उत्कृष्ट १२वें देवलोक में आभियोगिक– नौकर





देवों के रूप में उत्पन्न होते हक्तवहाँ उनकी उत्कृष्ट २२ सागरोपम की उम्र होती है। ये साधक शुद्ध निरतिचार स यम की आराधना नहीं करने के कारण स यम धर्म के विराधक ही कहे गये हक्त ।

**निन्हवों की उत्पत्ति :–** जो श्रमण, निर्ग्रंथधर्म में प्रव्रजित होकर बाद में अह भाव में आकर, तीर्थंकर के ज्ञान एव सिद्धांत की उपेक्षा कर स्वय का मनमाना एव सिद्धांत विपरीत प्ररूपण करता है; कुत्तर्क एव बुद्धि बल से खुद के अभिनिवेशिक मिथ्यात्व को पुष्ट करता है। साथ ही दूसरों को भी असत् प्ररूपणा से भावित करता है, मिथ्या मत में जोड़ता है। तथापि लि ग एव बाह्याचार से श्रमण पर्याय में रहता है। ऐसा साधक विशुद्ध द्रव्य श्रमणाचार का पालन करने से, मिथ्यात्व भावों के होते हुए भी उत्कृष्ट नवग्रैवेयक देव में ३१ सागरोपम की उम्र में उत्पन्न हो सकता है ।

**प्रश्न–७ : निर्ग्रंथ प्रवचन स्वीकारने वाले आराधकों की गति किस प्रकार कही गई है ?**

**उत्तर– सन्नी प चेन्द्रिय श्रावक की गति :–** पाँचों जाति के सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय को यथा योग्य चि तन मनन गवेषण करने से जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होता है। उससे प्राप्त ज्ञान एव विवेक के द्वारा वे श्रावक व्रतों को स्वीकार करते है और अपनी योग्यता क्षमतानुसार पालन करतेहक्त। सामायिक पौषधोपवास आदि भी अनुकूलतानुसार करतेहक्त। वे श्रमणोपासक पर्याय का पालन करते हुए समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर उत्कृष्ट आठवें देवलोक में उत्पन्न होते हक्त। वे निर्ग्रंथ प्रवचन एव श्रावक धर्मके आराधक होते हक्त। देवलोक में उनकी उत्कृष्ट १८ सागरोपम की उम्र होती है। वे उत्कृष्ट १५ भव से अधिक स सार भ्रमण नहीं करते हक्त ।

**श्रमणोपासक मनुष्यों की गति :–** कई मनुष्य धर्म प्रेमी, धर्म श्रद्धा वाले, धर्मानुयायी, धार्मिक वृत्ति एव धर्म स स्कारों वाले, सदाचारी तथा स तोषी होते हक्त, अल्पार भ अल्प परिग्रह से जीवन चलाते हक्त, वे हिंसा आदि मिथ्यात्व पर्यंत १८ ही पापों के देशतः(कुछ)त्यागी होते

हक्त और कुछ अ शों में उनके १८ ही पाप खुले रहते हक्त अर्थात् उनकी मर्यादाएँ होती है ।

इसी प्रकार आर भ-समार भ, करण-करावण, भोजनादि पकाना-पकवाना, पदार्थों को कूटना-पीसना, किसी को मारना पीटना ताड़ना-तर्जना, वध-ब धन करना, किसी को परिताप देना आदि क्रिया के भी अ शतः त्यागी होते है एव कुछ मर्यादा युक्त आगार भी होते हक्तस्नान, अभ्य गन, विलेपन, उबटन, शृ गार, अल कार, माला एव मनोज्ञ शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श के सुखों के देशतः त्यागी एव मर्यादित आगार वाले होते हक्त वे श्रमणोपासक अन्य भी जीव हिंसाकारी सावद्य योगों के देशतः त्यागी और मर्यादित आगार वाले होते हक्त ।

ऐसे श्रमणोपासक जीव अजीव तत्त्व के ज्ञाता, पुण्य पाप को अनुभव पूर्वक समझे हुए, आश्रव स वर निर्जरा ब ध मोक्ष के विषय में कुशल, देव दानव आदि के द्वारा भी धर्म से नहीं ड़िगने वाले, निर्ग्रंथ प्रवचन में श का का क्षा आदि दोषों से रहित, निर्ग्रंथ प्रवचन सिद्धा तों के अर्थ परमार्थ के ज्ञाता होते हक्त । उनकी हाड़-हाड़ की मज्जा धर्म प्रेम के अनुराग से अनुरक्त होती है। निर्ग्रंथ प्रवचन को ही जीवन में वे अर्थ परमार्थ रूप समझते हक्त । शेष सभी कृत्य आत्मा के लिये निष्प्रयोजन रूप समझते हक्त । दान देने की पूर्ण मनोवृत्ति वाले होते हक्त । इस कारण उनके घर के दरवाजे खुले ही रहते अथवा अ दर से ब द नहीं होते। कोई भी उन श्रावकों के घर से खाली नहीं जाता है। विशेष प्रयोजन बिना वेअ तःपुर या किसी के घर में प्रवेश नहीं करते, महीने के छः प्रतिपूर्ण (स पूर्ण सावद्य त्याग रूप) पौषध करते हक्त, श्रमण निर्ग्रंथों को कल्पनीय आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, औषधभेषज एव मकान, पाट, घास आदि परम भक्ति भाव एव विवेक के साथ प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक पर्याय में विचरण करते हक्त । अ तिम समय में यथावसर स लेखना स थारा स्वीकार करते हक्त आलोचना प्रतिक्रमण से शुद्धि करके भावसमाधि युक्त प ड़ित मरण को प्राप्त कर उत्कृष्ट बारहवें देवलोक में उत्पन्न होते हक्त वहाँ उनकी २२ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है । वे श्रमणोपासक धर्म के





आराधक होते हक्त एव उत्कृष्ट १५ भव से अधिक स सार भ्रमण नहीं करते है अर्थात् मोक्षगामी हो जाते है ।

**निर्ग्रंथ सुश्रमणों की गति :-** श्रमण निर्ग्रंथ श्रेष्ठधर्मी, धर्मानुरागी, धार्मिक जीवन जीने वाले होते हक्त । १८ पापों के पूर्णतः त्यागी होते हक्त अर्थात् वे- (१) हिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) कुशील (५) परिग्रह के पूर्ण त्यागी होते हक्त (६) गुस्सा (७) घम ड़ (८) माया-कपट-प्रप च के त्यागी होते हक्त । (९) लोभ-लालच (१०) राग (११) द्वेष से परे रहते हक्त । (१२) झगड़े कलेश करना (१३) कल क आक्षेप लगाना (१४) चुगली करना (१५) दूसरों का अवगुण अपवाद नि दा तिरस्कार करना, उनके लिए सर्वथा त्याज्य होता है । (१६) हर्ष-शोक अर्थात् मनोज्ञ प्रस ग में फूले न समाना और अमनोज्ञ प्रस गों में म्लान उदास हो जाना, उन्हें योग्य नहीं होता है । सदा ग भीर एव प्रसन्न मुद्रा में रहना ही उनका आचार होता है । (१७) कपट सहित झूठ, ठगाई, धूर्ताई के वे स पूर्ण त्यागी होते हक्त । (१८) खोटी श्रद्धा प्ररूपणा अर्थात् जिनाज्ञा से हीनाधिक, विपरीत समझने मानने एव बोलने के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हक्त । इस प्रकार इन १८ पापों के साथ-साथ ही वे करण-करावण, आहार स्वय पकाने पकवाने, आर भ-समार भ, कूटना-पीसना, पर-परितापकारी कृत्यों के एव स्नान, शरीर की सुश्रूषा, माला, अल कार आदि प्रवृत्तियों के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हक्त । शब्द रूप आदि इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्त होने या विशेष प्रवृत्त होने के भी वे पूर्णतः त्यागी होते हक्त ।

ऐसे वे अणगार पाँच समिति से समित होते हक्त अर्थात् समितियों में प्रयत्नशील होते हक्त, तीन गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियों को वश में करने वाले, विषयों में अनाशक्त, नियमोपनियम युक्त ब्रह्मचर्य का परिपालन करने वाले, निर्ममत्वी, अकिंचन, भाव ग्र थियों से रहित एव आश्रव रहित होते हक्त । कर्म्म ब ध से रहित होते हक्त । वे सूत्रोक्त २२ उपमाओं के गुणों से स पन्न होते हक्त । निर्ग्रंथ प्रवचन को अर्थात् जिनाज्ञा एव शास्त्राज्ञा को ही प्रमुखता देकर जीवन की मानसिक, वाचिक तथा कायिक हर प्रवृत्ति करने वाले होते हक्त ।

इस प्रकार की विहारचर्या से विचरण करते हुए कई श्रमणों को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होता है और वे अनेक वर्षों तक केवल पर्याय में विचरण करते हक्त। फिर भक्त प्रत्याख्यान स लेखना स थारा ग्रहण कर स पूर्ण कर्मक्षय कर मोक्ष प्राप्त करते हक्त। कई श्रमण जीवन पर्यंत छद्मस्थ अवस्था में ही विचरण करते है और अ तिम जीवन में स लेखना स थारा करके उसी अवस्था में केवल ज्ञानदर्शन प्राप्त कर सिद्ध हो जाते हक्त ।

एव कई श्रमण स यम का आराधन कर जघन्य प्रथम देवलोक यावत् उत्कृष्ट सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान में उत्पन्न होते हक्त। एव जघन्य २ पल्योपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की उम्र प्राप्त करते हक्त। उसके बाद एक भव मनुष्य का प्राप्त कर वे सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जाते हक्त ।

धर्म के **आराधक श्रमण** श्रमणोपासक जघन्य पहले देवलोक में २ पल की उम्र में जाते है एव **धर्म के विराधक** यहाँ उपर वर्णित सभी जघन्य भवनपति या व्य तर में १० हजार वर्ष की उम्र में जाते हक्त अथवा अन्य तीन गतियों में भी जाते हक्त। उत्कृष्ट गति-स्थिति सभी की अपने अपने उक्त वर्णन में कही गई है ।

**केवली समुद्घात**– सभी केवली भगवान केवली समुद्घात नहीं करतेहक्त। जिन केवलियों के छः महिनों से अधिक उम्र शेष रहने पर केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया हो वे कोई भी केवली समुद्घात नहीं करतेहक्त। छः महिनों से अल्प उम्र शेष रही हो तब यावत् जीवन के अ तिम क्षणों में केवल ज्ञान होने वाले जिन केवलियों के आयु आदि कर्मों की अत्यधिक असमानता हो तो वे केवली उन कर्मों को सम अवस्था में करने के लिये केवली समुद्घात करते हक्त और जिनके स्वभावतः कर्मों की ऐसी असमानता न हो वे केवली समुद्घात नहीं करतेहक्त।

केवली समुद्घात में आत्मप्रदेश शरीर से बाहर निकल कर क्रमशः स पूर्ण लोक जितनी अवगाहना में फैल कर क्रमशः पुनः शरीरस्थ होजातेहक्त। इस समस्त प्रक्रिया में कुल आठ(सूक्ष्म) समय लगते हक्त।





यह केवली समुद्घात योग निरोध अवस्था के अधिकतम अ तर्मुहूर्त पहले हो जाती है। फिर केवली स पूर्ण योगों का निरोध करके शरीर के दो तिहाई अवगाहना में आत्मप्रदेशों को अवस्थित कर देते हक्त। उस अवस्थित अवस्था में पाँच लघु अक्षर उच्चारण जितना समय वे केवली रहतेहक्त, उसे चौदहवाँ गुणस्थान कहा गया है। इतने समय बाद वे अयोगी केवली आयुष्य सहित स पूर्ण कर्म क्षय कर एव औदारिक, तैजस एव कार्मण तीनों शरीरों का त्याग कर सदा के लिये शाश्वत सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते हक्त।

**प्रश्न–८ : सिद्धों का स्वरूप क्या है और उनके सुख को किस प्रकार समझना ?**

**उत्तर–** जिस प्रकार अग्नि से जले हुए बीजों की पुनः अ कुर रूप में उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार स पूर्ण कर्म बीज के जल जाने के कारण सिद्धों की पुनः स सार में उत्पत्ति रूप आवागमन नहीं होता है।

वज्रऋषभनाराच स हनन वाला एव सभी आकृतियों वाला मनुष्य सिद्ध बन सकता है। जघन्य दो हाथ, उत्कृष्ट ५०० धनुष वाला मनुष्य सिद्ध बन सकता है। जघन्य साधिक आठ वर्ष(गर्भ सहित नौ वर्ष) उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की उम्र वाला सिद्ध बन सकता है ।

सभी देवलोकों से उपर सिद्ध शिला है, जो पृथ्वीकायमय है। ४५ लाख योजन के विस्तार वाली गोलाकार है। किनारों पर मक्खी के पाँख जितनी जाड़ी है और बीच में आठ योजन जाड़ी है ऊपरी सतह समतल है नीचे की तरफ छत्राकार गोल है। वह सिद्ध शिला सर्वार्थ सिद्ध अणुत्तर विमान से १२ योजन ऊपर है। उस सिद्धशिला से ऊपर सर्वत्र उत्सेघागुल के एक योजन तक लोक है, उसके बाद अलोक है। इसलिये भी सिद्धशिला की ऊपरी सतह का समतल होना सिद्ध होता है। लोक के अ तिम किनारे से लोक के अ दर ३३३ धनुष ३२ अ गुल तक के जाड़े क्षेत्र में अन ता न त सिद्ध भगव त रहे हुए है। उन सभी की आत्म अवगाहना का ऊपरी किनारा अलोक से अड़ा हुआ (स्पर्श किया हुआ) है।

वे सिद्ध भगवान वहाँ सादि अन त काल तक अरूपी शुद्ध आत्म स्वभाव अवस्था में स्थिर रहते हक्त। सिद्धों की आत्मप्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अ गुल की है और उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अ गुल की होती है और मध्यम सभी अवगाहनाएँ होती है। ४५ लाख योजन क्षेत्र में कोई भी स्थान(प्रदेश) सिद्धों से खाली नहीं है किन्तु प्रत्येक प्रदेश पर अन त सिद्धों के आत्मप्रदेश रहे हुए हक्त।

एक दीपक के प्रकाश के साथ सेकड़ों दीपक का प्रकाश भी उन्हीं आकाशप्रदेशों में रह सकता है। जब इन रूपी पुद्गल प्रकाश को रहने में भी कोई बाधा नहीं आती है तो अरूपी आत्मप्रदेश अन त सिद्धों के एक में अनेक व्याप्त होकर रहे इसमें किसी भी प्रकार के स देह को स्थान नहीं रहता है अर्थात् इस तरह अन तान त सिद्ध भगवान निःस देह एक साथ रह सकते हैं ।

सभी सिद्धों की अवगाहना एक सरीखी नहीं होती है। अ तिम भव में मनुष्य देह की जो अवगाहना और स स्थान होता है उसी के दो तिहाई अ श जितनी प्रत्येक सिद्ध की अपनी अलग-अलग अवगाहना होती है। वे वहाँ स्थित रहे हुए लोक अलोक के सभी भावों को; द्रव्य, गुण, पर्यायों को केवल ज्ञान से जानते हक्त एव केवल दर्शन से देखते क्त। ये ज्ञान और दर्शन दो ही आत्मगुण सिद्धों में रहते हक्त। इनका उपयोग साकारोपयोग और अनाकारोपयोग कहा जाता है ।

**सिद्धों के सुख का ज्ञान :–** सिद्धों के सुख को प्रत्यक्ष से जाना नहीं जा सकता, क्यों कि वह अरूपी होने से परोक्ष का विषय है। अतः उसे उपमा के द्वारा जानना चाहिए। सिद्धों को जो अव्याबाध सुख प्राप्त है वह न मनुष्यों को है और न देवों को। क्यों कि मनुष्य देवों का सुख बाधाओं से एव विनाश से युक्त होता है ।

कल्पना से सभी देवों के जीवनभर के सभी सुख को इकट्ठा किया जाय और उसको अन तबार वर्गावर्गित गुणन किया जाय तो भी वह मोक्ष सुख के समान नहीं हो सकता। अन्य कल्पना से एक सिद्ध के स पूर्ण सुख को अन तवर्ग से भाजित किया जाय जो सुख राशि भागफल के रूप में





आवे वह भी इतनी अधिक होती है कि स पूर्ण आकाश में समाहित नहीं हो सकती ।

जैसे कोई असभ्य वनवासी पुरुष नगर के अनेक विध गुणों को, सुखों को जानते समझते हुए भी अपने साथी अन्य वनवासियों को नगर की उन सुख सुविधाओं को, सामग्रियों को ज गल की किसी वस्तु से उपमा देकर या किसी सुख की उपमा देकर भी वास्तविक रूप में नहीं समझा सकता। क्यों कि वहाँ ज गल में वैसी उपमा देने की कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगव त भी छद्मस्थों को स सारिक पदार्थों की उपमा देकर भी सिद्धों के पूर्ण वास्तविक सुख को स्वय जानते हुए भी नहीं समझा सकते। केवल श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए अपेक्षा मात्र से अ शतः समझा सक्तेहक्त। वास्तव में सिद्धों का सुख अनुपम है, उसकी स सार में कोई सच्ची परिपूर्ण उपमा नहीं है। यहाँ भी अपेक्षा से उपमा द्वारा श्रद्धागम्य कराने का प्रयत्न किया जाता है– जैसे कोई पुरुष अपनी इच्छानुसार सर्व गुणों विशेषताओं से युक्त स्वादिष्ट भोजन करके भूख प्यास से मुक्त होकर, अपरिमित तृप्ति, इच्छित आन द का अनुभव करता है। उसी प्रकार सर्व समयों में परम तृप्ति युक्त, अनुपम शा ति युक्त, सिद्ध प्रभु शाश्वत विघ्न रहित, परमसुख में निमग्न रहते हक्त ।

वे सर्व दुःखों को पार कर चुके हक्त अर्थात् उन्होंने स पूर्ण दुःख एव उनकी पर परा को मूलतः नष्ट कर दिया है। जन्म बुढ़ापा एव मृत्यु के ब धन से सर्वथा मुक्त है। अतः वे सिद्ध प्रभु अनुपम सुख सागर में ही सदा काल के लिए अवस्थित रहते हक्त ।

# ॥ औपपातिक सूत्र स पूर्ण ॥

***मूर्ति मृतक की होती है, देवलोक अनादि शास्वत पदार्थ है। वहाँ की वस्तुएँ भी शाश्वत है। अतः किसी भी मृतमानव की या तीर्थंकर की मूर्ति देवलोक में नहीं होती है। बुद्धिमानों को इस पर तटस्थ गूढ़ चि तन करना चाहिये।***

# राजप्रश्नीय सूत्र

**प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ? इसके नाम की सार्थकता एव विषय वस्तु किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** प्रस्तुत आगम एक कथा प्रधान शास्त्र है। अन्य कथाशास्त्रों की अपेक्षा इसमें एक विलक्षणता है कि इसमें मुख्यतः केवल एक ही आत्मा का कथानक है ।

इसमें राजा प्रदेशी द्वारा की गई आत्मा के अस्तित्त्व नास्तित्व स ब धी प्रश्नचर्चा का विषद् वर्णन है। जिसमें केशीस्वामी द्वारा दिये गये उत्तर अनेक भव्यात्माओं के स शयों का उन्मूलन करने में बड़े ही सक्षम है। आध्यात्म की अपेक्षा उन प्रश्नोत्तरों की प्रधानता वाले इस शास्त्र का **सार्थक नाम** राजप्रश्नीय सूत्र रखा गया हक्त।

औपपातिक सूत्र के समान यह भी १२ उपा गसूत्रों में से **दूसरा उपा गसूत्र** है। न दीसूत्र की सूत्र सूचि में उत्कालिक अ ग बाह्य आगमों में इसका नाम स्पष्ट उपलब्ध होता है। इस सूत्र के रचनाकार या रचना समय औपपातिक सूत्र के समान ही अज्ञात है। तथापि न दी सूत्र में इसका नाम होने से यह शास्त्र समस्त श्वेता बर जैन समाज में आगम स ख्या ३२ या ४५ में स्वीकारा गया है। रचनाकार के अज्ञात होने से परिशेष न्याय से देवर्धिगणि के आगम लेखन के समय में ही स पादित करवाया गया यह शास्त्र है, ऐसा समझना ही समुचित रहता है ।

यह एक श्रुतस्क ध रूप शास्त्र है, इसमें अध्ययन उद्देशक कोई विभाग नहीं है। विषय की अपेक्षा मात्र दो विभागों की कल्पना की जाती है। यथा (१) सूर्याभदेव वर्णन (२) प्रदेशी राजा का वर्णन। इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या स स्कृत भाषा में मलयगिरि आचार्य की टीका रूप में है। अर्वाचीन स स्कृत हिन्दी गुजराती में अनेक आचार्यों की व्याख्याएँ उपलब्ध है।इस प्रकार यह शास्त्र श्वेताम्बर जैन समाज में अनेक जगह से प्रकाशित प्रचलित है। इस शास्त्र के मूलपाठ का परिमाण २०७८ श्लोक प्रमाण माना गया है ।





इस सूत्र के प्रथम विभाग में सूर्याभदेव का, उसकी स पूर्ण ऋद्धि स पदा का, देव विमान का, भगवान के दर्शन करने आने का, नाटक दिखाने का एव ऋद्धिवान देवके जन्म समय में किये जाने वाले महोत्सव का विस्तार से वर्णन है। साथ ही सूर्याभ विमान का सा गोपा ग वर्णन है। द्वितीय विभाग में सूर्याभदेव के पूर्वभव रूप प्रदेशीराजा के सा सारिक एव अधार्मिक जीवन का तथा चित्तसारथी के प्रयत्नों से केशी श्रमण के सत्स ग से उद्भूत धार्मिक जीवन का और अ तिम आराधना का सु दर वर्णन है। इस प्रकार कथा शास्त्र होते हुए भी आत्म विकास के लिये परिपूर्ण एव सचोट प्रेरणा वाला यह शास्त्र आबाल वृद्ध सभी के लिये रुचिकर शास्त्र है। **प्रस्तुत प्रावधान में** प्रदेशी राजा के मानव भव स ब धी प्रश्नोत्तर देकर फिर सूर्याभ देवभव स ब धी प्रश्नोत्तर किये गये है, पूरा प्रकरण एक ही विभाग रूप में रखा गया है ।

**प्रश्न–२ : प्रदेशीराजा का क्या परिचय है, उसका जीवन कैसा था ?**

**उत्तर–** सार्ध पच्चीस आर्य देश में केकयार्ध देश में श्वेता बिका नगरी थी। वहाँ प्रदेशीराजा राज्य करता था। वह अधार्मिक, अधर्मिष्ठ, अधर्म आचरण वाला एव अधर्म से ही आजीविका करने वाला था।

वह राजा, आत्मा, धर्म आदि कुछ भी नहीं मानता। सदा हिंसा में आशक्त, क्रूर, पापकारी, च ड़, रुद्र, क्षूद्र बना रहता था। कूड़-कपट बहुल, निर्गुण, मर्यादाहीन, व्रतपच्चक्खाण आदि से रहित यावत् अधर्म का ही सरदार बना रहता था। अपनी प्रजा का भी अच्छी तरह स रक्षण पालन नहीं करता था। एव धर्मगुरुओं महात्माओं का आदर सत्कार विनय भक्ति कुछ भी नहीं करता था।

उसके सूरिक ता नाम की राणी थी एव सूर्यक तकुमार नाम का पुत्र युवराज था। जो राज्य की देखरेख स भाल लेता रहता था। उस राजा के भ्रातृकुल में चित नामक सारथी(प्रधान) था। जो चारों प्रकार की बुद्धियों का स्वामी, कार्यकुशल, दक्ष(चतुर)सलाहकार, राजा के प्रमाणभूत, अवल बनभूत, चक्षूभूत, मेढ़ीभूत था। राज्यकार्य की चि ता में सक्रिय भाग लेता था। ऐसे अच्छे सहयोग के होते हुए भी प्रदेशीराजा

महा अधर्मी पापिष्ट था, यहाँ तक कि उसके हाथ खून से र गे रहते थे। ऐसा यहाँ मुहावरे की भाषा में कहा गया है ।

**प्रश्न-३ : प्रदेशीराजा ने पापिष्ट जीवन से धर्मिष्ठ जीवन कैसे बनाया था ?**

**उत्तर-** राजा का अपना जीवन अधर्मिष्ठ था सो था ही किंतु विशेष में वह धर्मगुरुओं महात्माओं का विद्वेषी भी था एव समय-समय पर स त महात्माओं के लिये दुःखदाई पीड़ाकारी भी बनता था। यह उसका आचरण चित्तसारथी(प्रधान) को खटकता था। किंतु राजा के दुराग्रही मानस के आगे वह कुछ कर नहीं सकता था। फिर भी राजा की वृत्ति को सुधारने का हित चि तन उसके मस्तिक में सदा बना रहता था। एक बार उसके ही सूझ बूझ और प्रयत्न से राजा, केशीश्रमण की धर्मसभा (प्रवचनसभा) में पहुँच गया। केशीश्रमण चार ज्ञान के धारी एव तीर्थंकर पार्श्वनाथ के शासन में विचरण करने वाले महान स त थे। एक ही दिन, एक ही बैठक की स गति में केशीश्रमण के ज्ञान एव विवेक तथा समझाने की कला से प्रदेशी राजा का मिथ्यात्व अज्ञान का नशा समाप्त हो गया। जिससे वह धर्मप्रेमी, धर्मिष्ठ, बारह व्रतधारी श्रमणोपासक बन गया। पौषध व्रत भी यथासमय करने लगा। राज्य से उसका विरक्त मन अब उदासीन रहने लगा एव स सार के सुखभोगों में भी उसे अब रस नहीं रहने लगा। जिससे उसका अधिकतम समय धर्माराधना में बीतने लगा। चित्तसारथी(प्रधान) एव युवराज सूर्यक तकुमार राज्य स चालन में रस लेते थे। इसलिये व्यवस्था बराबर चलती थी ।

राजा का यह धर्ममय जीवन राणी सूरिक ता को अच्छा नहीं लगा। उसे ऐसा आभास होने लगा कि राजा धर्म के पीछे दीवाना (पागल)हो गया है। उसने सूर्यक तकुमार को बुलाकर प्रस्ताव रखा कि राजा धर्मांध हो गया है, राजकाज और सुखभोग में भी उनका ध्यान नहीं है, तो ऐसे में राजा को शस्त्र प्रयोग आदि किसी भी तरह से मार कर तुम्हारा राज्याभिषेक करना उचित रहेगा। कुमार को ऐसा पितृहत्या का प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा ।





राणी को भय लगा कि कुमार को यह बात अच्छी नहीं लगी है तो कभी भी राजा को कह देगा। उसने शीघ्र ही कार्य पूर्ण करने का उपाय सोच लिया। राजा के भोजन को विष मिश्रित कर दिया। यहाँ तक कि आसन आदि भी विष स युक्त कर दिये। यथासमय राजा भोजन करने बैठे। सभी प्रकार के जहर का असर राजा को होने लगा। राजा को समझ में भी आ गया कि आज महाराणी ने सारा जहरमय स योग बनाया है। धर्ममति से ओतप्रोत राजा ने अपना कर्मोदय और धर्म कर्तव्य सोचा। राणी के प्रति विचारों को उपेक्षित कर दिया। अपनी सावधानी के साथ राजा पौषधशाला में पहुँच गया। विधियुक्त भक्त प्रत्याख्यान स थारा ग्रहण कर लिया अर्थात् १८ पापों का तीन करण, तीन योग से सर्वथा त्याग किया, आहार-पानी का त्याग किया एव शरीर के प्रति ममत्वभाव हटाकर उसे भी वोसिरा दिया। जहर के प्रकोप से वेदना तीव्र-तीव्रतम होने लगी। राजा आत्मभाव में समभावों में लीन बन गया। राणी के प्रति मन में भी अशुभ विचार नही आने दिये । आयुष्य की डोरी टूटने का समय आ चुका था। श्रावकधर्म की एव समभावों की अनुपम आराधना कर प्रथम देवलोक में राजा का जीव सूर्याभविमान में सूर्याभदेव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ वह शक्रेन्द्र का सामानिक देव बना अर्थात् इन्द्र के समान ही लगभग ऋद्धि एव उम्र उसने प्राप्त की। वहाँ से भी आयुष्य पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम तप की आराधना से स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त होकर सिद्ध बनेगा। इस प्रकार एक ही बार की केशीस्वामी की सत्स गति से अधर्मी जीवन वाले राजाने अपने जीवन को ऐसा परिवर्तित किया कि नरक तिर्यंचगति भ्रमण के तो ताले ही लगा दिये एव एक भव करके मोक्षगामी बन गया ।

**प्रश्न-४ : राजा के जीवन सुधार में चित्तसारथी को श्रेय कैसे जाता है ?**

**उत्तर-** कुणाल देश की श्रावस्ति नगरी में जितशत्रु राजा रहता था । जो राजा प्रदेशी का अधीनस्थ राजा था। एक बार आवश्यक राज्य कार्यवश चित्तसारथी का राजा की आज्ञा से श्रावस्ति में जाना हुआ। वहाँ पर स योगवश केशीश्रमण का सत्स ग मिला। चित्त सारथी ने केशी

श्रमण से श्रावक के १२ व्रत अ गीकार किये। क्रमशः विकास करते हुए वह श्रमणोपासक योग्य अनेक गुणों से स पन्न बन गया। राज्य कार्य पूर्ण कर पुनः श्वेता बिका नगरी आना था। चित्त सारथी श्रमणोपासक ने केशीश्रमण को आग्रहभरी विन ती करी कि आप श्वेता बिका नगरी में अवश्य पधारना। केशीश्रमण ने प्रदेशीराजा के पापिष्ट व्यवहारों को स्पष्ट करते हुए श्वेता बिका नगरी में आने में प्रश्नचिन्ह रख दिया अर्थात् नाम जूरी के भाव व्यक्त किये ।

चित्त सारथी ने सारी स्थिति को स्वीकारते हुए पुनः निवेदन किया कि भ ते ! अन्य भी अनेक लोग धर्मप्रेमी वहाँ रहते हक्त, अकेले राजा के कारण उन लोगों को धर्म व चित नहीं रखा जा सकता। वे लोग आपका आदर सत्कार करके दर्शन लाभ, प्रवचन लाभ अवश्य लेंगे और आहार पानी आदि से आप की पूर्ण भक्ति करेंगे। इस प्रकार तीव्र हार्दिक भावना से युक्त निवेदन ने केशीश्रमण के भावों में परिवर्तन ला दिया। उन्होंने आश्वासन वचन कहे कि जैसा अवसर होगा ध्यान में रखेंगे ।

यथासमय श्वेता बिका में केशी श्रमण का पधारना हुआ। चित्त सारथी एव अनेक नागरिकों ने दर्शन प्रवचन आदि का लाभ लिया। चित्त ने राजा को प्रतिबोधित करने का भी निवेदन किया। मुनि ने बताया कि जो सत्स ग में आवे ही नहीं, दूर-दूर रहे, उसे प्रतिबोध कैसे दिया जा सकता ? तब चित्त ने राजा को सत्स ग में उपायपूर्वक लाने का निर्णय किया। क बोज देश के घोड़े आये हुए थे एव शिक्षित किये गये थे। राजा को उनके परीक्षण के लिये निवेदन किया। रथ में चारों घोड़े जोत कर राजा और प्रधान घूमने निकले। शीघ्रगति वाले घोड़े अल्प समय में ही अति दूर निकल गये। राजा गर्मी और प्यास से घबराने लगा। सारथी को निवेदन किया। उसने अवसर देखकर रथ घुमाया और शीघ्रगति से उद्यान में जहाँ केशीश्रमण का प्रवचन चल रहा था। उसी के निकट वृक्ष की छाया में रथ रोका और राजा के विश्राम की एव जलपान वगैरह की सारी व्यवस्था कर दी। राजा सुख पूर्वक विश्राम ले रहा था कि केशीश्रमण के प्रवचन की आवाज सुनाई देने लगी और ध्यान देने पर विशाल परिषद भी राजा को नजर आई। धर्मद्वेषी राजा





की विरा ति भ ग हुई। उसे विचार हुआ कि अपने ही बगीचे में मैं शा ति पूर्वक विश्राम नहीं कर पा रहा हूँ । यहाँ पर जड़ मु ड़ एव मूर्ख लोग ही इकट्ठे होकर जड़मु ड़ और मूर्ख की उपासना कर रहे हैं और वह इतना जोर जोर से बोल रहा है । राजा ने अपने मनोभाव चित्तसारथी के सामने प्रकट किये। चित्त तो राजा का ध्यान उधर खींचना ही चाहता था। चित्त ने धीरे से कहा कि ये ४ ज्ञान के धारी पार्श्वनाथ भगवान के शासन के श्रमण हक्त। उन्हें आधोवधि ज्ञान है एव मनःपर्यवज्ञान है, ये आप की हमारी मन की बात भी जानने वाले महान् स त है।

राजा प्रभावित हुआ। चित्त का दाव चल गया। राजा ने मुनि के पास चलने का प्रस्ताव रख दिया। इस प्रकार दोनों धर्मसभा में मुनि के नजदीक पहुँच गये। चित्त सारथी ने अपनी सूझबूझ के साथ राजा को केशीश्रमण के पास पहुँचा दिया। इसी कारण से चित्तसारथी को अधर्मी राजा के धर्मिष्ठ बनने का पूरा श्रेय जाता है। मुनि की सेवा में पहुँचने से ही राजा का जीवन अमावस से पूर्णिमा जैसा बन गया और अल्प समय में ही आत्म कल्याण साध लिया ।

**प्रश्न–५ : हठीले एव अधर्मी विद्वेशी राजा को मुनि ने किस तरह सन्मार्ग में लगाया ?**

**उत्तर–** केशीश्रमण तो महाज्ञानी थे। उन्होंने ज्ञान के बल से बुद्धिमत्ता, विचक्षणता एव निर्भीकता से काम लिया। राजा भी बहुत बुद्धिमान और अपने विचारों का पक्का था। उसने सभा में पहुँचते ही व दन किये बिना खड़े-खड़े ही केशीश्रमण से पूछना प्रार भ कर दिया– आप आधोवधिज्ञानी हक्त क्या, आप प्रासुक अन्न भोजी हक्त क्या ?

**केशीश्रमण–** हे राजन् ! जिस प्रकार वणिक लोग दाण(कर) की चोरी करने के विचार से सीधा मार्ग नहीं पूछते। उसी तरह तुम भी विनय व्यवहार नहीं करने की भावना से अयोग्य रीति से प्रश्न कर रहे हो। हे राजन् ! मुझे देखकर तुम्हारे मन में ये स कल्प उत्पन्न हुए कि जड़ मु ड़ मूर्ख लोग जड़मु ड़ मूर्ख की उपासना करते हक्त, इत्यादि ?

**राजा प्रदेशी–** हाँ ऐसे विचार आए पर आपने कैसे जान लिए ?

**केशीश्रमण–** शास्त्र में पाँच ज्ञान कहे हक्त। उसमें से चार ज्ञान मुझे हक्त जिसमें मनःपर्यवज्ञान द्वारा मक्त जानता हूँ कि तुमने ये स कल्प किये।

**राजा–** मक्त यहाँ बैठ सकता हूँ ?

**केशीश्रमण–** यह तुम्हारा बगीचा है तुम ही जानो। तब प्रदेशी राजा चित्त सारथी के साथ बैठ गया ।

**राजा–** भ ते! आत्मा शरीर से अलग है या शरीर ही आत्मा है ?

**केशीश्रमण–** राजन् ! शरीर ही आत्मा नहीं है किन्तु आत्मद्रव्य शरीर से भिन्न है। आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान एव श्रद्धा स्वस वेदन से हो सकता है। स सार में जितने भी प्राणी है उन्हें सुख और दुःख का, धनवान और निर्धन होने का, मान और अपमान का, जो स वेदन होता है या अनुभूति होती है, वह आत्मा को ही होती है शरीर को नहीं। शरीर तो जड़ है।

**चेतन की श का करे, चेतन पोते आप।**
**श का का करण हार, जड़ नहीं है यह साफ ॥**

आत्मा है या नहीं यह स शय भी जड़(शरीर) को नहीं होता है ऐसा स शय भी चेतन तत्त्व को होता है। यह मेरा शरीर है। इस कथन में जो मेरा शब्द है वह सिद्ध करता है कि मक्त कोई शरीर से अलग वस्तु है और वही आत्म तत्त्व है, आत्मा है, जीव है, चैतन्य है। शरीर के नष्ट होने के बाद भी रहता है, परलोक में जाता है, गमनागमन एव जन्म मरण करता रहता है। अतः स शय करने वाला, दुःख सुख का अनुभव करने वाला, आत्मा का निषेध करने वाला और **मक्त** मेरा शरीर यह सब अनुभव करने वाला **आत्मा** ही है और वह शरीर से भिन्न तत्त्व है ।

आँख देखने का काम करती है, कान सुनता है पर उसका अनुभव करके भविष्य में याद कौन रखता है वह याद रखने वाला तत्त्व इन्द्रियों और शरीर से भिन्न है और वह आत्म तत्त्व है उसे किसी भी नाम से कहो पर तु है वह शरीर से भिन्न दूसरा तत्त्व ।

इस प्रकार प्रथम उत्तर में ही राजा प्रभावित हुआ क्यों कि मुनि





का उत्तर युक्तिपूर्ण था। किंतु राजा के दिमाग में भी अनेक तर्क घर कर रखे थे। अतः वह जमकर चर्चा करने लगा।

**प्रश्न–६ : प्रदेशी राजा के मुख्य तर्क क्या क्या थे और उनका केशीश्रमण ने किस प्रकार समाधान किया ?**

**उत्तर–** राजा– भ ते ! मेरा दादा मुझ पर अत्य त स्नेह रखता था, मैं उसे बहुत प्रिय था। वह मेरे समान ही अधर्मिष्ठ था एव आत्मा को शरीर से अलग नहीं मानता था। इसलिए वह निःस कोच पापकर्म करता हुआ जीवन यापन करता था। आपकी मान्यतानुसार वह नरक में गया होगा। वहाँ उसे भय कर दारूण दुःख ही दुःख मिलता होगा। तो मेरे उपर अपार स्नेह के कारण मुझे सावधान करने आना चाहिये था कि हे प्रिय पौत्र ! मक्त पापकार्यों के फल स्वरूप नरक में गया हूँ, महान दुःखों में पड़ गया हूँ। अतः तूँ ऐसे पापकार्य मत कर, धर्माचरण कर, प्रजा का अच्छी तरह स रक्षण, पालन कर। किंतु उसके आज तक भी कभी आने का प्रश्न ही नहीं है । अतः हे भ ते! आत्मा कोई अलग चीज नहीं है, शरीर ही आत्मा है और शरीर के नष्ट होने के बाद कोई भी अलग चीज रूप आत्मा की कल्पना करना गलत है ।

**केशी–** राजन् ! तुम्हारा दादा नरक में गया होगा फिर भी नहीं आ सकता है। इसका कारण यह है कि– यदि तुम्हारी राणी सूर्यका ता के साथ कोई पुरुष इच्छित कामभोगों का सेवन करे और उसे तुम देख लो तो क्या द ड़ दोगे ?

**राजा–** उस दुष्ट पापी को मक्त तत्काल द ड़ देकर अर्थात् तलवार से टुकड़े टुकड़े करके परलोक पहुँचा दूँगा ?

**केशी–** यदि वह कहे कि राजन् ! मुझे एक दो घ टा का समय दो, ताकि मक्त घर वालों से मिलकर तो आ जाऊँ, उन्हें अच्छी शिक्षा तो दे दूँ, तो तुम उसे छोड़ोगे ?

**राजा–** नहीं ! उसे इतना बोलने का समय भी नहीं दूँगा अथवा वह ऐसा बोलने की हिम्मत भी नहीं कर सकेगा और कह भी देगा तो मक्त उस दुष्ट को एक क्षण मात्र की भी छुट्टी नहीं दूँगा ।

**केशी–** राजन् ! यही अवस्था नरक के जीवों की एव तुम्हारे दादा की होगी कि वे अपने दुःख के आगे यहाँ आने का सोच भी नहीं सकते और यदि आना चाहे तो भी नहीं आ सकते। इसलिये तुम्हारा दादा तुम्हें कहने नहीं आ सकता। अतः तुम्हारी आशा रखना और उसी के बल पर जीव शरीर को एक मानना ठीक नहीं है ।

**राजा–** भ ते ! मेरी दादी तो बहुत ही धर्मात्मा थी। वह आपके हिसाब से अवश्य स्वर्ग में गई होगी। उसे तो पाप फल का कोई प्रतिब ध नहीं है। वह तो आकर मुझे कह सकती कि हे पौत्र ! देख मैं धर्म करके स्वर्ग में गई हूँ। तूँ पाप कार्य मत कर, आत्मा और शरीर अलग-अलग है ऐसा मान कर धर्म कार्य कर, प्रजा का सही विधि से पालन कर, इत्यादि। किन्तु उसके द्वारा भी कभी सावधान करने का प्रस ग नहीं आया, जब कि मुझ पर तो उसका भी अत्य त स्नेह था। अतः परलोक देवलोक और आत्मा कुछ भी नहीं है, ऐसी मेरी मान्यता है ।

**केशी–** राजन् ! जब तुम स्नान आदि कर पूजा की सामग्री एव झारी आदि लेकर म दिर में जा रहे हो और मार्ग में कोई पुरुष अशुचि(मल)से भरे शौचगृह के पास बैठ कर तुम्हें बुलावे कि इधर आओ, थोड़ी देर बैठो, तो तुम वहाँ क्षण मात्र के लिए भी नहीं जाओगे। उसी प्रकार हे राजन् ! मनुष्य लोक में ५०० योजन उपर तक अशुचि आदि की दुर्गंध जाती रहती है। इस कारण देव-देवी यहाँ नहीं आ सकते। इसलिये तुम्हारी दादी भी तुम्हें स बोधन करने नहीं आ सकती।

देवलोक से नहीं आने में अशुचि एव दुर्गंध के अतिरिक्त भी कई कारण है, यथा– वहाँ जाने के बाद यहाँ का प्रेम समाप्त हो जाता है, देवलोक के प्रेम में लग जाते हक्त। अथवा अभी जाऊँ, अभी जाऊँ, ऐसा सोचकर किसी नाटक, ऐशो-आराम में लग जाय तो इतने समय में तो यहाँ कई पीढ़ियाँ बीत जाती है। अतः दादी के आने के भरोसे तुम्हारा ऐसा मानना उपयुक्त नहीं है ।

**राजा–** भ ते! इसके अतिरिक्त भी मेरा अनुभव है कि शरीर से भिन्न कोई जीव तत्त्व नहीं है। एक बार मैने एक अपराधी पुरुष को लोहे की कु भी में ब द करवा कर ढ़क्कन ब द करके उसके उपर गर्म लोहे,





ताँबे से लेप करवा कर विश्वस्त व्यक्ति को वहाँ पहरेदार नियुक्त कर दिया। कुछ दिनों बाद उस कु भी को खोला तो वह व्यक्ति मर गया था। किन्तु उस कु भी के कहीं भी सूई की नोक जितना भी छिद्र नहीं हुआ था। यदि आत्मा कोई अलग वस्तु होती और उसमें से निकल कर कहीं जाती तो उस कु भी में कहीं बारीक छिद्र भी होना चाहिए था किन्तु बहुत ध्यान से देखने पर भी उसमें किसी प्रकार का छिद्र नहीं मिला। अतः मेरी मान्यता पुष्ट हुई कि शरीर से अलग जीव कोई तत्त्व नहीं है ।

**केशी–** राजन्! कोई चौतरफ से ब द एक दरवाजे वाला कमरा है। दिवाले उसकी ठोस बनी हो, उसमें कुछ व्यक्ति बेंड़ बाजा ढ़ोल आदि लेकर अ दर घुस जावे। फिर दरवाजा ब द करके उस पर लेप आदि लगाकर पूर्ण रूप से निश्छिद्र कर दे। फिर अ दर रहे वे पुरुष जोर से ढ़ोल, भेरी, बाजे आदि बजावे तो बाहर आवाज आएगी ? उसकी दिवालों आदि के कोई छिद्र होंगे ?

**राजा–** उसके कोई छिद्र नहीं होगा तो भी आवाज तो बाहर आयेगी ।

**केशी–** राजन् ! जैसे बिना छिद्र किये भी आवाज बाहर आ जाती है, तो आवाज से भी आत्मतत्त्व अतिसूक्ष्म है, उसकी अप्रतिहत गति है अर्थात् दिवाल या लोहे आदि की चट्टानों से जीव की गति नहीं रूकती ह। अतः तुम यह श्रद्धा करो कि जीव शरीर से भिन्न तत्त्व है। (यहाँ पर का च की पेक ब द शीशी में से क कर की आवाज बाहर आने के दृष्टा त से भी समझा जा सकता है।)

**राजा–** भ ते ! एक बार मैंने एक अपराधी को मार कर तत्काल लोह-कु भी में ब द कर ढ़क्कन के लेप लगवा कर निश्छिद्र कर दिया। कुछ दिन बाद देखा तो उसमें हजारों जीव(कीड़े)पैदा हो गये। एक ब द कु भी में उन जीवों ने प्रवेश कहा से किया ? अ दर तो कोई भी जीव था ही नहीं ।

**केशी–** राजन् ! कोई सघन लोहे का गोला है। उसे अग्नि में रख दिया जाय तो थोड़ी देर बाद वह पूर्ण तपकर लाल हो जाय तो यह समझना कि उसमें अग्नि ने प्रवेश किया। फिर उस लोहे को देखा जाय तो उसमें

कोई भी छिद्र नहीं दिखेगा तो भी अग्नि ने उसमें प्रवेश किया ही है। उसी प्रकार जीव भी ब द कु भी में प्रवेश कर सकते हक्त। उनका अस्तित्व स्वरूप अग्नि से भी अत्य त सूक्ष्म है। उसके लिए लोहे आदि से बाहर निकलने या भीतर प्रवेश करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती है। अतः हे राजन् ! तुम श्रद्धा करो कि शरीर से भिन्न आत्म तत्त्व है, अतः जन्म-मरण और परलोक भी है ।

**राजा–** एक सशक्त व्यक्ति पाँच मण वजन उठाकर रख सकता है और दूसरा अशक्त व्यक्ति उस वजन को नहीं उठा सकता, इसलिए मक्त यह मानता हूँ कि शरीर है वही आत्मा है यदि आत्मा अलग होता तो एक आत्मा वह वजन उठा सकता है तो दूसरा भी उठा लेता। क्यों कि शरीर से अशक्त सशक्त कैसा भी हो आत्मा तो सब का एक सरीखा और अलग-अलग है। किन्तु सभी आत्मा सरीखी होते हुए भी एक सरीखा वजन नहीं उठा सकते। अतः मेरा मानना सही है कि शरीर है वही आत्मा है जैसा शरीर है वैसा ही कार्य होता है। अतः अलग से आत्मा को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

**केशी–** समान शक्ति वाले पुरुषों के भी साधन के अ तर के कारण कार्य में अ तर होना स्वाभाविक है। यथा– एक सरीखी शक्ति वाले दो पुरुषों को लकड़ी काटने का कार्य दिया गया किन्तु एक को तीक्ष्ण धार वाला कुल्हाड़ा दिया गया, दूसरे को खराब हुई धार वाला कुल्हाड़ा दिया गया। अच्छे कुल्हाड़े वाला व्यक्ति लकड़ियों को शीघ्र काटकर रख देगा और खराब कुल्हाड़े वाला नहीं काट सकेगा। इसका यह अर्थ तो नहीं होगा कि जैसा शस्त्र है वैसा कार्य होता है तो व्यक्ति कुछ भी है ही नहीं। किन्तु व्यक्ति का अस्तित्व होते हुए भी जिस प्रकार साधन के कारण कार्य में अ तर होता है। उसी प्रकार आत्मतत्त्व सभी के होते हुए भी साधन रूप शरीर की अपेक्षा तो कार्य में रहती ही है। भार वहन के लिये भी नयी पुरानी जैसी कावड़ या रस्सी मजबूत होगी उसी के अनुपात से व्यक्ति भार वहन कर सकता है। साधन की मुख्यता से ऐसा होता है। इसलिये हे राजन्! इस तर्क से भी तुम्हारा आत्मा को भिन्न नहीं मानना अस गत है ।





**राजा–** एक बार मक्तने एक व्यक्ति को जीवित तोल कर, तत्काल प्राण रहित कर फिर तोला तो र च मात्र भी उसके वजन में अ तर नहीं आया। आपकी मान्यतानुसार तो शरीर से भिन्न आत्म तत्त्व वहाँ से निकला ही होगा तो उसके वजन में कुछ भी अ तर आना चाहिये था।

**केशी–** राजन् ! कोई मसक में हवा भर कर तोल किया जाय और फिर उसकी हवा निकाल कर वजन किया जाय तो उसमें कोई अ तर नहीं आता। आत्मा उस हवा से भी अत्य त सूक्ष्म(अरूपी) तत्त्व है। अतः उसके निमित्त से वजन में कोई अ तर नहीं आ सकता। इसलिए हे राजन् ! तुम्हें यह श्रद्धा करनी चाहिए कि शरीर से आत्मा भिन्न तत्त्व है ।

**राजा–** एक बार मक्तेएक अपराधी को लेकर ऊपर, नीचे, अन्दर, बारीक टुकड़े टुकड़े करके देखा, तो भी कहीं जीव नहीं दिखा। अतः मक्तयह मानता हूँ कि शरीर के अतिरिक्त जीव कोई चीज है नहीं ।

**केशी–** राजन्! तुम मूर्ख कठियारे से भी अधिक मूढ़ और विवेकहीन हो। एक बार कुछ लकड़ी काटने वाले साथी मिलकर ज गल में गये। एक नया व्यक्ति भी उस दिन साथ में हो गया। ज गल बहुत दूर था अतः खाना बनाना और भोजन करना, वे वहीं किया करते थे। साथ में थोड़ी अग्नि(अ गारे) ले जाते थे। आज उन्होंने नये व्यक्ति कठियारे से कहा कि तुम यही ज गल में बैठो, हम लकड़ियें काटकर लातेहक्त। तुम यथासमय खाना बनाकर रखना। कदाच अपने पास की अग्नि बुझ जाय तो यह **अरणि काष्ट** है उससे अग्नि जलाकर खाना तैयार करके रखना। लकड़ियाँ लेकर आते ही खाना खाकर हम सभी घर चलेंगे ।

उनके जाने के बाद यथासमय उस कठियारे ने खाना बनाने की तैयारी की। किन्तु देखा कि आग तो बुझ चुकी है। उसने काष्ट को उठा कर देखा तो उसमें कहीं अग्नि दिखी नहीं। आखिर उसने अरणि काष्ट के ख ड़ ख ड़ करके देखा तो भी कहीं अग्नि देखने में नहीं आई। अग्नि बिना वह खाना नहीं बना सका और हताश होकर बैठ गया ।

जब वन में से कठियारे लकड़ियाँ लेकर आये तब उन्होंने दूसरी अरणि काष्ठ लेकर उन्हे आपस में घिस कर अग्नि पैदा की और

खाना बनाकर खाया। उन्होंने उस नये कठियारे को कहा– रे मूर्ख ! तूँ इस लकड़ी के टुकड़े टुकड़े करके इसमें अग्नि खोजना चाहता है ऐसे खोजने से अग्नि मिलती है क्या ? इस प्रकार हे राजन्! तुम्हारी प्रवृत्ति भी उस मूर्ख कठियारे के समान हुई ।

**राजा**– भ ते! आप सरीखे ज्ञानी बुद्धिमान विवेकशील व्यक्ति इस विशाल सभा में मुझे ऐसे तुच्छ हल्के एव निष्ठुर शब्दों से अनादर पूर्ण व्यवहार करो क्या यह उचित है ?

**केशी**– राजन्! तुम यह जानते हो कि परिषद कितने प्रकार की होती है ? उसमें किसके साथ क्या व्यवहार किया जाता है ? किसको क्या द ड़ दिया जाता है ? फिर भी तुम मुझ श्रमण के साथ श्रमणोचित व्यवहार न करते हुए विपरीत तरीके से पेश आ रहे हो। तो तुम्हारे साथ ऐसी ही वाक्यावलि से मेरा उत्तर देना उपयुक्त है, यह तुम नहीं समझ सकते हो ?

**राजा**– अपना आशय स्पष्ट करते हुए राजा ने कहा कि मक्त प्रार भ के वार्तालाप से ही समझ गया था कि इस व्यक्ति(अर्थात् केशी श्रमण) के साथ जितना जितना विपरीत तरीके से व्यवहार करूँगा उतना ही अधिक से अधिक तत्त्वज्ञान प्राप्त होगा। इसमें लाभ होगा किन्तु नुकशान नहीं होगा। मक्त तत्त्वज्ञान, सम्यग् श्रद्धान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त करूँगा, जीव और जीव के स्वरूप को समझूँगा। इसी कारण मैंने ऐसा विपरीत व्यवहार किया ।

**राजा**– हे भ ते ! आप तो समर्थ है मुझे हथेली में रखे आँवले की तरह एक बार आत्मा को बाहर रख कर बता दो ।

**केशी**– हे राजन्! जो ये वृक्ष के पत्ते आदि हिल रहे है, वे हवा से हिलते हक्त, तो हे राजन् ! तुम इस हवा को आँखों से देख नहीं सकते हो, किसी को हाथ में रखकर दिखा भी नहीं सकते हो, फिर भी हवा को स्वीकार तो करते ही हो। उसी प्रकार हे राजन् ! आत्मा हवा से भी सूक्ष्म है अर्थात् हवा तो रूपी पदार्थ है किन्तु आत्मा अरूपी पदार्थ है, उसे हाथ में कैसे दिखाया जा सकता है ? अतः तुम श्रद्धा करो कि हवा के समान आत्मा भी स्वत त्र अचक्षु ग्राह्य तत्त्व है । (कोई व्यक्ति,





वकालात पास है इसे प्रत्यक्ष जानने के लिए कोई ड़ॉक्टर उसके शरीर एव मस्तक को काट छा ट कर देखना चाहे कि मैं प्रत्यक्ष देखू तो वह सफल नहीं हो सकता है। जब ज्ञान को ऐसे नहीं देखा जा सकता तो ज्ञानी को(आत्मा) ऐसे प्रत्यक्ष देखने का स कल्प करना भी अयोग्य ही है ।)

कोई व्यक्ति, भूमि मे आम, अ गूर, गन्ना, मिर्ची आदि सभी पदार्थों के परमाणु रहे हुए है, यह श्रद्धा कर बीज बोवे तो फल प्राप्त कर सकता है। किन्तु यदि कोई उसी भूमि को खोदकर कण कण मक्त उन आम, अ गूर, गन्ना, मिर्च के परमाणु को प्रत्यक्ष देखने का प्रयत्न करे तो उसे कुछ भी इच्छित फल प्राप्त नहीं होगा ।

ये रूपी पदार्थ भी सूक्ष्म एव विरल होने से सामान्य ज्ञान वालों को प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर नहीं हो सकते तो आत्मा जैसे अरूपी अतिसूक्ष्म पदार्थों के प्रत्यक्ष देखने की कल्पना करना नादानता एव बालदशा है ।

अतः आत्मा, परलोक पुद्गल परमाणु, सूक्ष्म समय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीव की आदि, तैजस-कार्मण शरीर, कर्म आदि कितने ही तत्त्व सामान्य ज्ञानियों के लिये श्रद्धागम्य एव बुद्धिगम्य हो सकते हक्त, प्रत्यक्ष गम्य नहीं हो सकते ।

**राजा**– भ ते ! जीव को अलग तत्त्व मानने पर उसका एक परिमाण (माप) मानना होगा । तब फिर वह आत्मा कभी हाथी जैसे विशाल काय में, कभी कीड़ी जैसे छोटे शरीर में किस तरह रहेगी ? यदि छोटी मानेंगे तो हाथी के शरीर में(भव में) कैसे रहेगी ? हाथी जैसी मानेंगे तो कीड़ी आदि में किस तरह रहेगी ? अर्थात् नहीं रह सकेगी। अतः शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व नहीं मानना चाहिए अन्यथा यह दुविधा खड़ी रहेगी ।

**केशी**– राजन्! जिस प्रकार एक दीपक(या बल्ब अथवा ट्यूबलाइट) बड़े होल में है तो उसका प्रकाश उतने में समाविष्ट हो जाता है और उससे छोटे छोटे कमरे में रखा जाय तो उसका प्रकाश उस कमरे में समाविष्ट हो जाता है उसी बल्ब को एक कोठी में रख दिया जाय

तो उसका प्रकाश कोठी में भी समाविष्ट हो जाता है । इसका कारण यह है कि रूपी प्रकाश में यह स कोच विस्तार का गुण है। वैसे ही आत्मा के प्रदेश निश्चित परिमाण वाले एव स कोच विस्तार हो सकने वाले है। वे जिस कर्म के उदय से जैसा और जितना शरीर प्राप्त करते हक्त, बनातेहक्त, उस शरीर मेंही व्याप्त होकर केरहतेहक्त। इसमें कोई दिक्कत नहीं आती है। अतः हे राजन्! तुम यह श्रद्धा करो की जीव अन्य है और शरीर अन्य है। जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है ।

**राजा–** भ ते ! आपने जो कुछ भी समझाया वह सब ठीक है किन्तु मेरे पूर्वज बापदादों से चला आया मेरा यह धर्म है कि जीव और शरीर एक ही है अलग से जीव कोई वस्तु नहीं है। तो अपने बापदादों का पीढ़ियों से मिला यह धर्म अब कैसे छोड़ दूँ ।

**केशी–** हे राजन्! तुम उस लोहवणिक के समान मूर्ख एव हठी मत बनो, अन्यथा उसके समान तुम्हे भी पश्चाताप करना पड़ेगा ।

कुछ वणिक धन कमाने की इच्छा से यात्रार्थ निकले। मार्ग में बड़ी अटवी रूप ज गल में पहुँचे। वहाँ किसी स्थान पर उन्होंने लोहे की विशाल खान देखी। जिसमें बहुत सारा लोहा बिखरा हुआ पड़ा था। उन लोगों ने विचार विमर्श किया और लोहे का भारा सभी ने बांध लिया। आगे चले तो शीशे की खान आई। सब ने विचार कर लोहा छोड़ दिया और शीशा भर लिया। एक वणिक ने अनेक विध समझाने पर भी कहा कि इतनी दूर से बड़ी महेनत से जिसे उठाकर लाया हूँ मक्त इसे यूँ ही नहीं छोड़ सकता ।

आगे चलने पर ता बे की, फिर चाँदी की और फिर सोने की खान आई। सभी वणिक पूर्व की वस्तु को हानि लाभ का विचार कर छोड़ते गये, अगली वस्तु लेते गये। किन्तु लोहवणिक उसी बात पर अड़ा रहा कि यह बार बार छोड़ना-लेना, अस्थिर चित्त का काम मैं नहीं कर सकता। अ त में रत्नों एव हीरों की खान आई। सारे वणिक एक सलाह से हीरे भर कर आन दित हुए और पुनः अपने देश के लिये लौटने का निर्णय कर लिया। उस लोह वणिक को फिर समझाने के





लिये प्रयत्न किया किन्तु वह अपने जिद्द एव व्यर्थ के अभिमान में अड़ा रहा और हीरे भी नहीं लिये ।

नगरी में आने पर सभी साथी वणिकों ने हीरे रत्नों के मूल्य से अखूट धन सामग्री प्राप्त की और विशाल स पत्ति के मालिक बन कर अपार आन द सुखचेन में अपना समय व्यतीत करने लगे। किन्तु लोह-वणिक केवल लोहे के मूल्य जितना धन प्राप्त कर मकान स पत्ति आदि से पूर्ववत् बना रहा एव उन साथियों के विशाल ब गले और ऋद्धि देख देख कर पश्चात्ताप के दुःख से स तप्त रहने लगा। वणिक होकर भी उस लोहवणिक ने हानि लाभ सत्यासत्य का विचार नहीं किया, पूर्वाग्रह में रहकर उसने पश्चात्ताप को प्राप्त किया। वैसे ही हे राजन्! तूं बुद्धिमान होकर एव सब कुछ समझ लेने के बाद भी सत्यासत्य के निर्णय पूर्वक सत्य स्वीकार करना नहीं चाहता है तो उस लोह वणिक के समान होगा। (कई लोग सामान्य बुद्धि भेड़ चाल प्रकृति के होते है जो रूढ़ियों को अपने पूर्वजों के नाम से चलाते रहते हक्त, उसी में वे अपना दिखावावृत्ति एव अह भाव का पोषण करते है। किन्तु वास्तव में वे अत्य त निम्न दर्जे की बुद्धि वाले एव प्रतिष्ठा हीन व्यक्ति होते हक्त।)

**राजा का परिवर्तन–** केशीकुमार श्रमण के निर्भीक एव सचोट वाक्यों ने तथा तर्कस गत दृष्टा तों ने उसके आग्रहपूर्ण विचारों में परिवर्तन ला दिया। चित्त सारथी का प्रयत्न एव सूझ-बूझ सफल रही। राजा ने व दना नमस्कार करके मुनि से निवेदन किया कि भ ते! मक्त ऐसा नहीं करूँगा कि लोह वणिक की तरह मुझे पश्चात्ताप करना पड़े। ~~अ~~मक्त आप से धर्म श्रवण करना चाहता हूँ ।

केशीश्रमण ने समयोचित धर्मोपदेश दिया। जिससे प्रदेशी राजा व्रतधारी श्रमणोपासक बन गया। दूसरे दिन अपने परिवार एव स पूर्ण ऐश्वर्य सहित केशीश्रमण के दर्शनार्थ आया। पाँच प्रकार के अभिगम सहित उनके अवग्रह में प्रवेश किया, विधि युक्त व दन नमस्कार किया और पूर्व दिन में अपने द्वारा किए गये अविनय आशातना के लिए पूर्ण भक्तिभाव पूर्वक हार्दिक क्षमायाचना की। एव उपदेश सुनने के लिए विशाल परिषद के साथ वहाँ केशी श्रमण के समक्ष बैठ गया।

केशीश्रमण ने प्रदेशीराजा को एव उसकी सूर्यका ता प्रमुख राणियों को एव विशाल परिषद को लक्ष्य कर उपदेश दिया। उपदेश सुनकर आई हुई परिषद् विसर्जित हुई। केशीश्रमण ने प्रदेशीराजा को स बोधित कर कुछ भलावण रूप शिक्षा वचन कहे ।

**शिक्षा स केत–** हे प्रदेशी ! जिस प्रकार उद्यान, इक्षु खेत, खलिहान और नृत्यशाला आदि कभी रमणीय होती है और कभी अरमणीय भी हो जाते हक्त वैसे तुम धर्म की अपेक्षा रमणीय बनकर पुनः अरमणीय मत बन जाना। केशीश्रमण के इस स केत शिक्षा को स्वीकार करते हुए प्रदेशीराजा ने कहा– भ ते ! मक्त श्वेता बिका प्रमुख सात हजार ग्राम नगरों की आवक को चार विभागों में विभक्त कर दूँगा । १. राज्य व्यवस्था में २. भ ड़ार में ३. अतःपुर के लिए ४. दानशाला के लिए। दानशाला की व्यवस्था के लिए सु दर कूटाकार मकान एव नौकर नियुक्त कर दूँगा। जिसमें सदा गरीबों को या अन्य याचकों भिक्षाचरों को भोजन आदि की सुन्दर व्यवस्था रहेगी। इसके अतिरिक्त मक्त स्वय भी व्रत पच्चक्खाण पौषध एव धर्म जागरण करते हुए उत्तरोत्तर धर्माराधन में वृद्धि करूँगा। इस प्रकार प्रदेशी ने द्रव्य भाव से पूर्ण रूपेण जीवन परिवर्तित कर दिया।

इस प्रकार अमावस से पूनम जैसे जीवन में आकर अर्थात् महान अधर्मी जीवन को आदर्शधर्मी जीवन में बदलकर ही प्रदेशी राजा ने ऐसे दिव्य देवानुभाव और महान ऐश्वर्य को प्राप्त किया ।

देव भव की चार पल्योपम की उम्र पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर, राज्य ऋद्धि का त्याग कर के बाल ब्रह्मचारी दृढ़ प्रतिज्ञ नामक श्रमण बनेगा। बहुत वर्ष केवली अवस्था में विचरण करेगा एव अ तिम समय अनेक दिनों के स थारे से निर्वाण को प्राप्त करेगा, सदा सदा के लिए जन्म मरण के भवचक्र से मुक्त हो जायेगा ।

**प्रश्न–७ : सूर्याभदेव के सूर्याभ विमान की विशालता दिव्यता कैसी है ?**

**उत्तर–** सौधर्म नामक प्रथम देवलोक हमारी समभूमि से अस ख्य योजन ऊपर है। उस देवलोक में ३२ लाख विमान है उनके बीच में पाँच





अवत सक(मुख्य)विमान है। (१) अशोक अवत सक (२) सप्तपर्ण अवत सक (३) च पक अवत सक (४) आम्रअवत सक ये चारों दिशाओं में है और इनके मध्य में प्रथम देवलोक के इन्द्र का (५) सौधर्मावत सक विमान है। इस सौधर्मावत सक विमान के पूर्व में अस ख्य योजन दूर सूर्याभ नामक विमान है। जो साढ़े बारह लाख योजन का ल बा एव चौड़ा तथा ३९ लाख ५२ हजार ८ सौ ४८ योजन की परिधि में गोलाकार है एव परकोटे से घिरा हुआ है ।

**द्वारों का वर्णन :–** इस विमान के चार दिशाओं में चार हजार दरवाजे (द्वार) है। जो ५०० योजन ऊँचे और २५० योजन चौड़े हक्त। इन दरवाजों के दोनों तरफ निशीधिका–बैठकें है जिसके सोलह सोलह विभाग हक्त, जिनमें च दन कलश है, मालाओं और घँटियों युक्त खू टियाँ, खूँटियों पर १६–१६ लघु खूँटियाँ है । उनमें चा दी के छींके लटक रहे हक्त जिनमें धूप घटिकायें है। उन निशीधिकाओं में पुतलिया , जालघर, घ टा एव वनमालाओं की प क्तिएँ है। उन दोनों निशीधिकाओं में सोलह सोलह प्रासादावत सक(श्रेष्ठ महल) है। जो २५० योजन ऊँचे १२५ योजन विस्तार वाले गोलाकार है। वे २५० योजन लम्बे चौड़े एव १२५ योजन ऊँचे चबूतरे पर स्थित हक्त ।

**तोरणों का वर्णन :–** उन सोलह सोलह विभागों के सामने तोरण–म ड़प हैं जो मणियों से निर्मित स्त भों पर अच्छी तरह ब धे हुए हक्त । प्रत्येक तोरणों के आगे दो दो पुतलिया , नागद त, हस्ती युगल, अश्व-युगल, नर-किन्नर-किंपुरुष युगल, महोरग, ग धर्व एव वृषभ(बैल) युगल है। इसी प्रकार अनेक म गल रूप दर्शनीय रूप दो दो पदार्थ है। दो दो सि हासन, छत्र, चामर आदि हक्त ।

**द्वार पर ध्वजाएँ एव भवन :–** एक एक दरवाजे पर दस प्रकार की १०८ ध्वजाएँ अर्थात् १०८० एक हजार अस्सी ध्वजाएँ हक्त। प्रत्येक दरवाजे के उपर ६५–६५ भवन हक्त ।

**वनख ड़ :–** सूर्याभ विमान से ५०० योजन दूर चारों दिशाओं में एक-एक वनख ड़(बगीचा) है। जो ५०० योजन चौड़े एव सूर्याभ विमान जितने ल बे है। उनके नाम– अशोक वन, सप्तपर्णवन, च पकवन एव

आम्रवन है। वनख ड़ में जगह-जगह बावड़िया पुष्करणिया , दीर्घिकाएँ, कुएँ, तालाब आदि हक्त। जो वेदिका एव वनख ड़ से घिरे हुए हक्त। उनमें उतरने के लिये सीढ़िया (पगथिये) चारों दिशाओं में बने हुए हक्त। इनके बीच में जगह-जगह छोटे बड़े पर्वत एव म ड़प है जहाँ पर बैठने सोने आदि के आसन भद्रासन है। वनख ड़ोंमें जगह-जगह, कदलिगृह, लतागृह, विश्रामगृह, प्रेक्षागृह, स्नानगृह, श्रृ गारगृह, मोहनगृह, जलगृह, चित्रगृह, आदर्श(दर्पण) गृह आदि सुशोभित हो रहे हक्त। एव जगह जगह विविध लताओं के म ड़प हक्त जिनमें अनेक प्रकार के आसन शयन के आकार की पृथ्वी शिलाएँ है। चारों वनख ड़ में बीचोबीच एक-एक प्रासादावत सक(श्रेष्ठ महल) है। जिसमें पल्योपम की स्थिति वाले एक-एक देव रहते हक्त उनके नाम–(१) अशोकदेव (२) सप्तपर्णदेव (३) च पकदेव (४) आम्रदेव।

वनख ड़ का अवशेष भूमिभाग समतल, सु दर एव सुखद स्पर्श वाला है। अनेक प्रकार की प चर गी मणी तृणों एव उनकी मधुर ध्वनियों से रमणीय है। पुण्य फल के उपभोग करने वाले देव देवियाँ यहाँ आमोद-प्रमोद करते हक्त ।

**उपकारिकालयन :–** सुधर्मा सभा एव अन्य प्रमुख स्थानों से युक्त राजधानी के समान प्रासादमय घिरे हुए क्षेत्र को यहाँ उपकारिकालयन कहा है।

यह क्षेत्र ज बूद्वीप जितना है। इसके मध्य में एक मुख्य प्रासाद है जो पाँच सौ योजन ऊँचा २५० योजन विस्तार वाला है। उसके चौतरफ चार भवन आधे प्रमाण के हक्तये चारों भी अन्य अर्द्धपरिमाण के चार चार भवनों से घिरे हुए हक्तवे भवन भी अन्य अर्द्ध परिमाण के चार भवनों से घिरे हुए हक्त अर्थात् १+४+१६+६४=८५ प्रासाद है। यह उपकारिकालयन सूर्याभ विमान के बीच मध्य में है। समभूमि से कुछ ऊँचा है। इसमें प्रवेश करने के लिये चारों दिशाओं में पगथिये सोपान है। उसके चौतरफ पद्मवर वेदिका रूप परकोटा है और उसके चौतरफ कुछ कम दो योजन चौड़ा वनख ड़ है ।

**सुधर्मासभा का बाह्य वर्णन :–** मुख्य प्रासादावत सक के ईशानकोण में अनेक स्त भों पर बनी हुई सुधर्मासभा है। उसके तीन दिशा में तीन





द्वार एव तीन दिशाओं में सोपान पगथिये हक्त, पश्चिम में नहीं है। ये द्वार सौलह योजन ऊँचे आठ योजन चौड़े हक्त। द्वार के सामने म ड़प है, म ड़प के आगे प्रेक्षागृह है, प्रेक्षागृह के बीच में म च है, म च के बीच चबूतरा (मणि पीठीका) है, उस पर एक एक सि हासन है उसके आसपास में अनेक भद्रासन है। प्रेक्षागृह के सामने आगे भी मणिपीठिका(चबूतरा) है उन पर स्तूप है। स्तूप के सामने चबूतरे पर चैत्य वृक्ष है, चैत्य वृक्ष के सामने चबूतरे पर माहेन्द्र ध्वज है और उसके सामने न दा नामक पुष्करिणी है।

**सुधर्मासभा का आभ्य तर वर्णन :–** सुधर्मा सभा में चौतरफ किनारों में ४८ हजार कमरे सरीखे खुले विभाग है। उनमें ४८ हजार ल बी कुर्सियों के समान आसन है। सुधर्मा सभा के बीच में ६० योजन ऊँचा माणवक चैत्य स्त भ है जिसके ४८ तल एव ४८ कोरे हक्त अर्थात् वह ४८ मोड़ में गोलाकार है। इसके मध्य भाग में अनेक खू टिया है जिनमें छींके लटक रहे हक्त और छीकों में गोल ड़िब्बिया है, ड़िब्बियों में **जिनदाढ़ाएँ** है । जो देव-देवियों के लिए अर्चनीय एव पूजनीय है। माणक चैत्य स्त भ के पूर्व में सि हासन और पश्चिम में देवशय्या है । देवशय्या के ईशानकोण में माहेन्द्रध्वज है। माहेन्द्र ध्वज के पश्चिम में आयुधशाला है।

आयुधशाला के [*ईशान कोण में सिद्धायतन है। सिद्धायतन का बाह्य वर्णन सुधर्मासभा के बाह्य वर्णन के समान है। सिद्धायतन के अ दर १०८जिन प्रतिमाएँ है। उसके पीछे एक छत्र धारक और बाजू में दो चामर धारक की प्रतिमा है। आगे दो दो यक्ष भूत नाग आदि की प्रतिमाएँ है। वहाँ पर १०८ घ टिकाएँ, च दन कलश, थाल, पुष्प च गेरी, धूप कडुच्छक आदि हक्त।* [१] *सिद्धायतन के*] ईशान कोण में उपपात सभा है, इसके ईशान कोण में सरोवर है। उसके ईशानकोण में अभिषेक सभा है। इसके ईशानकोण में अल कार सभा है इसके उत्तरपूर्व(ईशान कोण) में व्यवसाय सभा है। उसमें पुस्तकरल है, जिसमें देवों के जीताचार, कर्तव्य कलापों का वर्णन है एव धार्मिक लेख है। व्यवसाय सभा के ईशान कोण में न दा नामक पुष्करणी है एव उसके ईशानकोण में विशाल बलिपीठ चबूतरा है।

१. ***टिप्पण–*** *सूत्र में यह प्रक्षिप्ता श है । इसकी जानकारी के लिये आगे शिक्षा एव ज्ञातव्य का ११वाँ क्रमा क पढ़े ।*

**प्रश्न–८ : सूर्याभदेव का जन्म महोत्सव अर्थात् जन्माभिषेक किस प्रकार किया गया ?**

**उत्तर–** सूर्याभदेव उपपात सभा में जन्म लेता है। सामानिक देवों के निवेदन अनुसार प्रवृत्ति करने के लिए पूर्वी दरवाजे से निकलकर सरोवर पर आता है। वहाँ स्नान क्रिया से निवृत्त होकर अभिषेक सभा में आकर सि हासन पर पूर्व दिशा में मुख करके बैठ जाता है। वहाँ उसका सभी देव मिल कर जन्माभिषेक एव इन्द्राभिषेक करते हक्त। कलशों से स्नान कराते हक्त, अभिषेक करते हक्त एव विविध प्रकार से हर्ष मनातेहक्त। मगल शब्दोच्चारण करतेहक्त। फिर पूर्वी दरवाजे से निकलकर सूर्याभदेव अल कार शाला में आकर सि हासन पर बैठता है। शरीर को पोंछ कर गोशीर्ष च दन का लेप करता है। वस्त्र युगल धारण करता है एव अनेक आभूषण पाँव से मस्तक पर्यंत धारण करता है। कल्पवृक्ष के समान सुसज्जित हो जाता है।

फिर वहाँ से उठ कर व्यवसाय सभा में आकर सि हासन पर बैठ कर पुस्तक रत्न का अध्ययन करता है। वहाँ से उठकर न दा पुष्करणी में आता है। हाथ पाँव का प्रक्षालन कर पानी की झारी एव कमल फूल लेकर वहाँ से निकलता है। [*फिर सिद्धायतन में आता है। विनयभक्ति एव पूजा विधि करके एक सौ आठ म गल श्लोको से स्तुति गुण कीर्तन करता है।*]

**सभी स्थानों की पूजा अर्चना :–** फिर व दन नमस्कार करके मोरपिच्छी से अनेक स्थानों का प्रमार्जन, पानी से प्रक्षालन एव च दन के हाथ से छापे लगाता है तथा धूप करता है, फूल चढ़ाता है। वे स्थान इस प्रकार है– सिद्धायतन का मध्य भाग, दक्षिण द्वार, द्वारशाखा, पुतलियाँ, व्यालरूप मुख म ड़प का मध्य भाग, मुख म ड़प का पश्चिमी द्वार, द्वारशाखा, पुतलियाँ आदि, यों मुख म ड़प के चारों दिशाओं में, फिर इसी प्रकार के प्रेक्षागृह म ड़प के सभी उक्त स्थान, चैत्य स्तूप के सभी स्थान, चैत्यवृक्ष के सभी स्थान।

फिर इसी प्रकार उत्तरी द्वार के सभी स्थान एव पूर्वी द्वार के सभी स्थान की पूजा विधि करता है। उसके बाद सुधर्मा सभा में प्रवेश करता है। वहाँ भी जिन दाढ़ाओं, सि हासन, देवशय्या, महेन्द्रध्वज,





आयुध शाला, उपपात सभा, अभिषेक सभा, अल कार सभा, व्यवसाय सभा, पुस्तक रत्न, चबूतरा, सि हासन, न दापुष्करणी, सरोवर आदि इन सभी स्थानों का जगह जगह मोरपिच्छी से प्रमार्जन, पानी से सि चन एव फूल धूप आदि क्रियाएँ करता है। अ त में बलि पीठ के पास आकर बलि विसर्जन करता है। फिर नौकर देवों से सूर्याभ विमान के सभी मार्ग, द्वार, वन, उपवन में, इसी प्रकार सर्वत्र अर्चापूजा विधि करवाता है। फिर न दा पुष्करिणी में पाँव प्रक्षालन कर सुधर्मा सभा में पूर्वी दरवाजे से प्रवेश करता है और पूर्व दिशा में मुख करके सि हासन पर बैठ जाता है।

**प्रश्न–९ : सूर्याभदेव की ऋद्धि–समृद्धि एव उम्र क्या है ?**

**उत्तर–** सूर्याभदेव के सि हासन से पूर्व दिशा में चार अग्रमहिषियाँ, उत्तरपूर्व और उत्तरपश्चिम में चार हजार सामानिक देव, दक्षिणपूर्व में आभ्य तर परिषद के आठ हजार देव, दक्षिण में मध्यम परिषद के दस हजार देव, दक्षिणपश्चिम में बाह्य परिषद के बारह हजार देव, पश्चिम दिशा में सात अनिकाधिपति देव, इसके अन तर पीछे चारों दिशा में १६ हजार आत्मरक्षक देव, ये सभी अपने अपने नियुक्त भद्रासनों पर बैठतेहक्त। सूर्याभदेव की चार पल्योपम की उम्र है। उसके सामानिक देवों की भी चार चार पल्योपम की उम्र है। इस प्रकार सूर्याभदेव महाऋद्धि, महाद्युति महाबल महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है।

**प्रश्न–१० : जन्म महोत्सव के लिये सूर्याभ के आभियोगिक देव तिर्छालोक से क्या-क्या वस्तु लाये और कहाँ कहाँ से लाये ?**

**उत्तर–** प्रश्नोत्तर–८ में कहे अनुसार जलाभिषेक से और देवो की शक्ति से जन्माभिषेक पूर्ण हो सकता है। जल तो देवलोक की बावड़ियों में होता ही है। फिर भी सूत्र के मूलपाठ में तिर्च्छालोक के स्थानों का महत्त्व दर्शाने के लिये देवलोक के अयोग्य एव अनावश्यक पदार्थों का वर्णन विस्तार से कब कैसे आ गया है या मौलिक रचनाकार का है; यह विचारणीय है। तथापि उस वर्णन का स क्षिप्तावलोकन कराया जाना आवश्यक हो जाता है। यथा–

सूर्याभदेव की सामानिक परिषद के देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा– देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही सूर्याभदेव का अभिषेक करने हेतु महान अर्थ वाले महर्घ्य(बहुमूल्य) एव महापुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित करो, तैयार करो ।

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवो ने सामानिक देवों की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित यावत् विकसित हृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़ कर आवर्तन पूर्वक मस्तक पर अ जलि करके देव ! बहुत अच्छा, ऐसा करेंगे, कहकर विनयपूर्वक आज्ञावचनों को स्वीकार किया । स्वीकार करके वे उत्तरपूर्व दिग्भाग में गये और उस उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण)में जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया ।

वैक्रिय समुद्घात करके स ख्यात योजन का द ड़ बनाया। फिर दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ स्वर्णकलशों की, एक हजार आठ रुप्यकलशों की, एक हजार आठ मणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-रजतमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-मणिमय कलशों की, एकहजार आठ रजत-मणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-रुप्य-मणिमय कलशों की, एक हजार आठ भोमेय (मिट्टी के) कलशों की एव इसी प्रकार एक हजार आठ-एक हजार आठ भृ गारों, दर्पणों, थालों, पात्रियों, सुप्रतिष्ठानों वातकरकों, रत्नकर ड़कों, पुष्पच गेरिकाओं ***यावत्*** मयूरपिच्छच गेरिकाओ, पुष्पपटलकों ***यावत्*** मयूर-पिच्छपटलकों, सि हासनों, छत्रों, चामरों, तेलसमुद्गकों यावत् अ जन-समुद्गकों, ध्वजाओं, धूपकडुच्छकों(धूपदानों) की विकुर्वणा(रचना) की।

विकुर्वणा करके उन स्वाभाविक और विक्रियाजन्य कलशों यावत् धूपकडुच्छकों को अपने-अपने हाथों में लिया और लेकर सूर्याभ-विमान से बाहर निकले। निकलकर अपनी उत्कृष्ट, चपल, दिव्यगति से यावत् तिरछालोक में अस ख्यात योजनप्रमाण क्षेत्र को उल घते हुए जहाँ क्षीरोदधि समुद्र था, वहाँ आये। वहाँ आकर कलशों में क्षीरसमुद्र के जल को भरा तथा वहाँ से उत्पल यावत् (पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौग धिक, पु ड़रीक,महापु ड़रीक)शतपत्र, सहस्त्रपत्र कमलों को लिया।





कमलों आदि को लेकर जहाँ पुष्करोदक समुद्र था वहाँ आये, आकर पुष्करोदक को कलशों में भरा तथा वहाँ के उत्पल आदि कमलों को लिया। तत्पश्चात् जहाँ मनुष्यक्षेत्र था और उसमें भी जहाँ भरत-ऐरवत क्षेत्र थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे वहाँ आये और आकर उन-उन तीर्थों के जल को भरा और वहाँ की मिट्टी ग्रहण की। इस प्रकार तीर्थोदक और मृत्तिका को लेकर जहाँ ग गा, सि धु, रक्ता, रक्तवती महानदिया थी वहाँ आये। आकर नदियों के जल और उनके तटों की मिट्टी को लिया ।

नदियों के जल और मिट्टी को लेकर चुल्लहिमव त और शिखरी वर्षधर पर्वत पर आये।वहाँ आकर कलशों में जल भरा तथा सर्व ऋतुओं के श्रेष्ठ-उत्तम पुष्पों, समस्त ग धद्रव्यों, समस्त पुष्पसमूहों और सर्व प्रकार की औषधियों एव सिद्धार्थकों(सरसों) को लिया और फिर पद्मद्रह एव पु ड़रीकद्रह पर आये।यहाँ आकर भी पूर्ववत् कलशों में द्रह–जल भरा तथा सु दर श्रेष्ठ उत्पल आदि कमलों को लिया ।

इसके पश्चात् फिर वहाँ हेमवत और हेरण्यवत क्षेत्र थे, जहाँ उन दोनों क्षेत्रों की रोहिता, रोहिता सा तथा स्वर्णकूला और रुप्यकूला महानदिया थी वहाँ आये और कलशों में उन नदियों का जल भरा तथा नदियों के दोनों तटों की मिट्टी ली।जल और मिट्टी को लेने के पश्चात् जहाँ शब्दापाति विकटापाति वृत्त वैताढ़्य पर्वत थे, वहाँ आये।आकर समस्त ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों आदि को लिया ।

वहाँ से वे महाहिमव त और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आये और वहाँ से जल एव पुष्प आदि लिये, फिर जहाँ महापद्म और महापु ड़रीक द्रह थे वहाँ आये।आकर द्रह जल एव कमल आदि लिये। उसके बाद जहाँ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्र थे, हरिका ता और नारिका ता महानदिया थी, ग धापाति और माल्यव त वृत्त वैताढ़्य पर्वत थे, वहाँ आये और इन सभी स्थानों से जल, मिट्टी, औषधिया एव पुष्प लिये ।

इसके बाद जहाँ निषध, नील नामक वर्षधर पर्वत थे, जहाँ तिगि छ और केसरीद्रह थे, वहाँ आये, वहाँ आकर उसी प्रकार से जल आदि लिया। तत्पश्चात् जहाँ महाविदेह क्षेत्र था जहाँ सीता, सीतोदा

महानदिया थी वहाँ आये और उसी प्रकार से उनका जल, मिट्टी, पुष्प आदि लिये। फिर जहाँ सभी चक्रवर्ती विजय थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे, वहाँ आये, वहाँ आकर तीर्थोदक लिया और तीर्थोदक लेकर सभी अ तरनदियों के जल एव मिट्टी को लिया फिर जहाँ वक्षस्कार पर्वत थे वहाँ आये और वहाँ से सर्व ऋतुओं के पुष्पों आदि को लिया ।

तत्पश्चात् जहाँ म दर पर्वत का भद्रशाल वन था वहाँ आये, वहाँ आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पों, समस्त औषधियों और सिद्धार्थकों को लिया। लेकर वहाँ से न दनवन में आये, आकर सर्व ऋतुओं के पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों(सरसों)और सरस गोशीर्ष च दन को लिया और जहाँ सौमनस वन था वहाँ आये। आकर वहाँ से सर्व ऋतुओं के उत्तमोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष च दन और दिव्य पुष्पमालाओं को लिया, लेकर प ड़कवन में आये और वहाँ सर्व ऋतुओं के सर्वोत्तम पुष्पों यावत् सर्व औषधियों, सिद्धार्थकों, सरस गोशीर्ष च दन, दिव्य पुष्पमालाओं, दर्दरमलय च दन की सुरभि ग ध से सुग धित ग धद्रव्यों को लिया ।

इन सब उत्तमोत्तम पदार्थों को लेकर वे सब आभियोगिक देव एक स्थान पर इकट्ठे हुए और फिर उत्कृष्ट दिव्यगति से यावत् जहाँ सौधर्म कल्प था और जहाँ सूर्याभविमान था, जहाँ उसकी अभिषेक सभा थी और उसमें भी जहाँ सि हासन पर सूर्याभदेव बैठा था, वहाँ आये। आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तनपूर्वक मस्तक पर अ जलि करके सूर्याभदेव को "जय हो विजय हो" शब्दों से बधाया और बधाई देकर उसके आगे महान अर्थ वाली, महा मूल्यवान, महान पुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित की–रखी ।

तत्पश्चात्–अभिषेक की सामग्री आ जाने के बाद चार हजार सामानिक देवों, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधिपतियों यावत् अन्य दूसरे बहुत से देवों-देवियों ने उन स्वाभाविक एव विक्रिया शक्ति से निष्पादित–बनाये गये, श्रेष्ठ कमलपुष्पों पर स स्थापित, सुग धित शुद्ध श्रेष्ठ जल से भरे हुए, च दन के लेप से चर्चित, प चर गेसूत्र–कलावे से आविद्ध ब धे-लिपटे हुए क ठ वाले, पद्म (सूर्यविकासी





कमलों) एव उत्पल(च द्रविकासी कमलों) के ढ़क्कनों से ढ़ँके हुए, सुकुमाल कोमल हाथों से लिये गये और सभी पवित्र स्थानों के जल से भरे हुए एक हजार आठ स्वर्ण कलशों यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशों, सब प्रकार की मृत्तिका एव ऋतुओं के पुष्पों, सभी काषायिक सुग धित द्रव्यों यावत् औषधियों और सिद्धार्थकों–सरसों से महान ऋद्धि यावत् वाद्यघोषों पूर्वक सूर्याभदेव को अतीव गौरवशाली उच्च कोटि के इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया ।

**विचारणा :–**देवलोक में जल तो पुनः वावड़ियों में चला जा सकता है पर तु मिट्टी, वनस्पति, औषधी, फूल सरसों आदि जो तिर्च्छे लोक से लाये हक्त उस कचरे का वहाँ क्या होगा। जब कि देवता वैक्रिय शक्ति से फूलमाला आदि विकुर्वित कर सकते हक्त और वे पुद्गल वैक्रिय के होने से अल्प समय में ही वहीं पर विशीर्ण हो जाते हक्तफिर भी मूलपाठ में इतना विशाल वर्णन है वह अवश्य ऊहापोह के योग्य है। हु ड़ावसर्पिणी एव २००० वर्ष के भस्मगृह के कारण ही उस मध्यकाल में शास्त्रों के साथ कहीं कहीं कुछ छेड़छाड़ जरूर हुई है, ऐसी पूरी स भावना है।

**प्रश्न–११ : सूर्याभदेव भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने आमलकप्पा नगरी में किस प्रकार आया था ?**

**उत्तर–** श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए आमलकप्पा नामक नगरी में पधारे। वहाँ आम्रशाल वन नामक चैत्य में अधिष्ठायक व्यक्ति की आज्ञा लेकर शिष्य म ड़ली सहित ठहरे ।

वहाँ का श्वेत राजा, अपनी धारणी राणी सहित विशाल जनमेदनी के साथ श्रमण भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने एव धर्मोपदेश सुनने के लिये उपस्थित हुआ। भगवान की सेवा में पहुँचने पर उस राजा ने सर्व प्रथम पाँच अभिगम किये अर्थात् श्रावक के योग्य आवश्यक नियमों का आचरण किया एव भगवान को विधियुक्त व दन नमस्कार करके बैठ गया। उसके साथ आई हुई जनमेदनी भी धर्मसभा के रूप में परिवर्तित हो गई। अलग अलग समूहों से आने वाले लोग भी परिषद में एकत्रित हो गये।

**सूर्याभदेव की धार्मिकता :–** प्रथम देवलोक के सूर्याभ नामक विमान

**सीतेन्द्र का आगमन** :- सीतेन्द्र की आज्ञा से सेनापति देव ने सिंहनाद नामक घंटे को बार बार बजा कर सभी देवों को सावधान किया। फिर सभी को ये कहा कि सीतेन्द्र भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने जा रहा है, आप लोग भी अपने अपने विमानों से शीघ्र यहाँ पहुँच जावें। तत्काल सभी देव सिंहासन छोड़कर गगनगमन वहाँ सीतेन्द्र सभा में पहुँच गये। सीतेन्द्र की आज्ञा से एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा पालक नामक विमान विक्रिया किया गया। जिसके मध्य में ही सिंहासन पर सीतेन्द्र देव आसीन हुआ। फिर सामानिक से सभी देव चढ़कर अपने अपने महलों पर चढ़ गये। शीघ्र यान से विमान तैयार देवलोक के ऊपर विमान नाना प्रकार से हजारों (असंख्य) जाते को ज्योति से ऊँचाई छू न सके ऐसे मार्ग से चलकर समवसरण पर पहुँचा। आमलकल्पा नगरी के उस विमान को ले कर गया जहाँ आमलकल्पा नगरी में आकर विमान से भगवान को तीन बार प्रदक्षिणा दी एवं सीतेन्द्र ने पूर्व उस रूप से उतर कर अपना देव परिवार के साथ सहित भगवान को सभा में पहुँचा एवं वंदना नमस्कार करके अपने योग्य कोठे में बैठ गया। फिर भगवान ने सीतेन्द्र को प्रत्यक्ष कर उपदेश दिया। एक सीतेन्द्र देव ने उनको वन्दना नमस्कार करके फिर कहा कि यह दिव्यध्वनि का प्रवचन सुनकर मैं भगवान के वचनों को सुनकर आज मैं कृतार्थ हुआ। अहो भाग्य है, धन्य है, आनन्द है, आचार्य है, करुणा है प्रभो! सीतेन्द्र जब मनुष्य पर्याय में था तब भगवान के वचनों को सुनकर आज भी वन्दन करता हूँ। भगवान ने उस प्रकार दिव्यध्वनि में देवों को उस समय सम्बोधित कर दिया। सम्यग्दृष्टि देव परम आनन्दित होकर नृत्य गान करने लगे। सम्यग्दृष्टि सीतेन्द्र ने अपनी ऋद्धि का वर्णन करना प्रारम्भ किया।

राम को अविचल पाया।

**प्रश्न-६१ : सीतेन्द्र ने अपनी ऋद्धि और माया का प्रदर्शन भगवान के समवसरण में किस प्रकार किया ?**

उत्तर- सम्यग्दृष्टि सीतेन्द्र ने अपनी माया से अनेक रूप धारण कर बाद में सीतेन्द्र बहुत देर तक भगवान से प्रेम किया कि हे भगवान ! आप धन्य हैं। अनन्त चतुष्टय के धारी हैं आप। सकल ज्ञेयों के ज्ञाता हैं आप। हे प्रभो ! मैं आपका भक्त हूँ, आपका सेवक हूँ। उत्तर में भगवान ने कहा





का मालिक सीतेन्द्र देव अपने चार हजार सामानिक देव, सात प्रकार की सेना 'धन प्रकार की पालकी' सोलह हजार आत्मरक्षक देव आदि परिवार सहित अपने विमान रूपी भवन में बैठकर सम्पूर्ण ऋद्धि के साथ देवलोक से चलकर भगवान के दर्शन करने को निकला। उसी समय से वहाँ उत्तम अवधिज्ञान से उसने जाना कि अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी को आमलकल्पा नगरी में विराजमान देख कर पूज्य भाव से हर्ष मनाया। मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होकर ध्यान में लीन रहकर सीता ने पूर्व में तप किया था उसी तप के प्रभाव से मैं सीतेन्द्र बना हूँ। इस प्रकार विचार कर सीतेन्द्र ने भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया एवं प्रदक्षिणा दिया। प्रथम तीर्थंकर के पास से लेकर भरत पर्यन्त ऋषभदेव पुत्र से लेकर महावीर पर्यन्त धर्म तीर्थ प्रवर्तन का उपदेश सुनने का लाभ लेने की भावना उत्पन्न हुई। अपने आत्मानन्द फिर से प्राप्त कर आनन्दित हो गया। उसे मानो ऐसा लगा कि आत्मस्वरूप देवों को समवसरण के आसपास के हर गोपुर प्रथम क्षेत्र की तृप्ति करने का आदेश दिया।

**आत्मस्वरूप देवों का आहार** :- आशीर्वाद आत्मस्वरूप देवों ने आमलकल्पा नगरी में आकर प्रथम तीर्थंकर महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया, अपना नाम पुत्र आदि बताकर परिचय दिया। भगवान ने सम्यक्त्व शब्दों के उच्चारण के साथ उनको वंदन स्वीकार किया एवं कहा कि देवानुप्रियो ! यह आप लोगों का सौभाग्य है - आचार के तत्त्व को जान कर जो आप लोग यहाँ देव दर्शन को आये हैं वह आत्महित का कारण है। वे आत्मस्वरूप देव इस प्रकार भगवान के पास से आहार पूर्ण कर तृप्त होकर लौट गये, फिर उनके समीप सीतेन्द्र ने बताया कि हे देवानुप्रियो ! जाओ और उस क्षेत्र की रक्षा करो। सीतेन्द्र देव ने उस क्षेत्र को सुरक्षित कर दिया। फिर वे स्वयं भगवान को वंदन कर देवलोक में चले गये। सीतेन्द्र देव को प्रबोधन कर दिया कि आपको आशीर्वाद काल से मुक्त कर दिया है।

कि तुम भवी हो, सम्यग् दृष्टि हो और एक भव करके मोक्ष जाने वाले हो ।

सूर्याभदेव अत्य त आन दित हुआ और भगवान से निवेदन किया कि हे भ ते ! आप तो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हक्त, सब कुछ जानते देखते हक्त। मेरी दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य देव प्रभाव भी जानते देखते हक्त । किन्तु भक्तिवश होकर मक्त गौतमादि अणगारों को अपनी ऋद्धि एव बत्तीस प्रकार के नाटक दिखाना चाहता हूँ। इस प्रकार तीन बार निवेदन करने पर भी भगवान ने उसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया, मौन अवस्था में रहे। फिर सूर्याभ देव ने भगवान को तीन बार विधियुक्त व दन नमस्कार किया और मौन स्वीकृति मान कर भगवान के सामने अपनी इच्छानुसार वैक्रिय शक्ति से सु दर नाट्य म ड़प की रचना की एव स्वतः भगवान की आज्ञा लेकर प्रणाम करके अपने सि हासन पर भगवान के सामने मुख रखकर बैठ गया ।

**नाट्यविधि :–** फिर नाट्यविधि का प्रार भ करते हुए अपनी एक भुजा में से १०८ देवकुमार और दूसरी भुजा से १०८ देवकुमारियाँ निकाली जो वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थी। ४९ प्रकार के १०८ वादकों की विकुर्वणा की। फिर उन देवकुमारों को आदेश दिया कि तुम भगवान को व दन नमस्कार करके गौतमादि अणगारों को ३२ प्रकार के नाटक दिखाओ। देवकुमारों ने आज्ञानुसार नृत्यगान युक्त नाट्य विधियों का क्रमशः प्रदर्शन किया ।

**नाट्य विषय :–** उन नाट्य विधियों के मुख्य विषय इस प्रकार थे– (१) आठ प्रकार के म गल द्रव्यों स ब धी (२) पत्र, पुष्प, लता स ब धी (३) विविध चित्रों स ब धी (४) प क्तियों आवलिकाओ स ब धी (५) च द्रोदय सूर्योदय की रचना स ब धी (६) उनके आगमन स ब धी (७) उनके अस्त होने स ब धी (८) इनके म ड़ल या विमान स ब धी (९) हाथी, घोड़ा आदि के गति स ब धी (१०) समुद्र और नगर स ब धी (११) पुष्करणी स ब धी (१२) ककार खकार गकार इत्यादि आद्य अक्षर स ब धी (१३) उछलने, कूदने, हर्ष, भय, स भ्रा त, स कोच, विस्तारमय होने स ब धी । अ त में भगवान महावीर स्वामी के भव से पूर्व का देव भव, वहाँ से च्यवन, स हरण, जन्म, बाल्यकाल, यौवन काल, भोगमय जीवन, वैराग्य, दीक्षा, तप स यममय छद्मस्थ जीवन, केवल्य–प्राप्ति, तीर्थ प्रवर्तन और





निर्वाणप्राप्ति स ब धी समस्त वर्णन युक्त नाट्यविधि का प्रदर्शन किया ।

नाट्यविधि का उपस हार करते हुए मौलिक चार प्रकार के वादिंत्र बजाये, चार प्रकार के गीत गाये, चार प्रकार के नृत्य दिखाये और चार प्रकार के अभिनय–नाटक दिखाये। फिर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को विधियुक्त व दन नमस्कार करके सूर्याभदेव के पास में आये सूर्याभदेव ने अपनी समस्त विकुर्वणा को समेट लिया एव भगवान को व दन नमस्कार करते हुए अपने विमान में आरूढ़ होकर देवलोक में चला गया ।

**प्रश्न–१३ : इस शास्त्र के समस्त वर्णन से शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञातव्य तत्त्व क्या क्या प्राप्त होते हक्त ?**

**उत्तर–** (१) चित्त सारथी एव केशी श्रमण के अनुपम आदर्श ने एक दुराग्रही पापिष्ट मानव को, जिसके कि हाथ खून से सने रहने की उपमा इस सूत्र में लगाई गई है उसे, एक बार की स गति एव स वाद रूप विशद चर्चा ने महान् दृढ़धर्मी प्रियधर्मी बना दिया ।

(२) केशी श्रमण का उपदेश सूर्यका ता महारानी ने भी सुना था और वह राजा जितनी पापिष्ठ भी नहीं थी, राजा को भी अत्य त प्रिय ईष्ट थी। इसी कारण पुत्र का नाम भी राणी के नाम पर सूर्यका तकुमार रखा था। फिर भी राजा के किसी भव के निकाचित घोर कर्मों का उदय आ पहुँचने से रानी को ऐसी कुमति हुई। जीव अज्ञानदशा में उतावलपन में ऐसे कई अकार्य कर जाते हक्त जिससे उनको लाभ कुछ भी नहीं होता है। फिर भी वे केवल अपने उठे हुए स कल्पों को पूर्ण करने में दत्तचित्त बन जाते हक्त। यह भी जीव की एक अज्ञानदशा का पागलपन है। ऐसे कर्तव्य करने वाले यहाँ भी अपयश पाकर हानि में रहते हक्त और आगे के भवों को बिगाड़ कर के दुःख की पर परा बढ़ाते हक्त ।

(३) धर्म की सही समझ हृदय में उतर जाने के बाद राजा हो या प्रधान, श्रावक के बारह व्रत धारण करने में कहीं भी बाधा नहीं आती है। अतः धर्मप्रेमी जो भी आत्माएँ स यम स्वीकार नहीं कर सकती है उन्हें श्रावक व्रत धारण करने में किंचित् भी आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, उपेक्षावृत्ति नहीं करनी चाहिए। हमारे सामने चित्तसारथी और राजा प्रदेशी का

महान आदर्श उपस्थित है। एक (चित्त) तो अन्य राज्य में राज्य व्यवस्था के लिये गया था, वहीं बारह व्रतधारी बना और दूसरा(राजा) अश्व परीक्षार्थ निकला हुआ भी मुनि सत्स ग से उसी दिन बारह व्रतधारी श्रावक बना। आज के हमारे वर्षों के धर्मिष्ठ लोग जो बारह व्रतधारी नहीं बन रहे हक्त, उन्हें इस सूत्र की स्वाध्याय से प्रेरणा पाकर अवश्य बारह व्रत धारण करने चाहिये। श्रावकव्रत धारण करने में बाधा ड़ालने वाली मानसिक जिज्ञासाओं के समाधान के लिये पढ़ें- आगम सारा श का पुष्प १५, उपासक दशा सूत्र ।

(४) आध्यात्म धर्म के साथ साथ गृहस्थ जीवन में अनुकम्पादान एव मानवसेवा का अनुपम स्थान है, यह भी इस सूत्र के अ तिम शिक्षावचन प्रकरण में देखने को मिलता है। प्रदेशी श्रमणोपासक ने अपने धर्मगुरू धर्माचार्य श्री केशीश्रमण के रमणिक रहने की प्रेरणा के फल स्वरूप जो स कल्प प्रकट किया था, कथनी और करणी को एक साकार रूप दिया था, वह था आध्यात्मजीवन के साथ श्रमणोपासक की अनुकम्पा और मानव सेवा या जन सेवा भावना ।

अनेका तवादमय यह निर्ग्रंथ प्रवचन एक चक्षु से नहीं चलता है, किन्तु यह उभय चक्षु प्रवर्तक है। कई लोग धर्म का रूप केवल मानव सेवा ही लेते हक्त, व्रत नियम, बारह व्रत, पौषध आदि की उपेक्षा करते हक्त, वे भी एक चक्षु की कोटि में आकर निर्ग्रंथ धर्म से दूर होते हक्त एव कई श्रावक आध्यात्म धर्म में अग्रसर होकर स पन्न होते हुए भी स कीर्ण दिल या स कीर्ण दायरे के बने रहते हक्त, श्रमण या श्रमणभूत नहीं होते हुए भी एव गृहस्थ धर्म में या स सार व्यवहार में रहते हुए भी दया, दान, मानव सेवा, जन सेवा, उदारता के भावों से उपेक्षित रहते हक्त, उनकी गृहस्थ जीवन की साधना एक चक्षु भूत रहती है। इस कारण से कि वे छती शक्ति(प्राप्त स पत्ति से) धर्म की प्रभावना में सहायभूत नहीं बन सकते हक्त ।

इस प्रकार इस सूत्र के अ तिम प्रकरण से श्रावकों को उभय चक्षु बनने की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। अर्थात् आध्यात्म धर्म की साधना के साथ छती शक्ति अनुकम्पादान आदि की उपेक्षा नहीं





करनी चाहिये। अपितु अपनी स्टेज के अनुसार दानधर्म में प्रवृत्त होना चाहिये। जैसे कि- प्रदेशीराजा ने राज्य की आवक का चौथा भाग दया, दान, धर्म में सुनियोजित किया था ।

(५) श्रमण वर्ग को केशी श्रमण के इस चर्चा व्यवहार और दक्षता से अनुपम प्रेरणा लेनी चाहिए कि किस तरह दुराग्रही प्रश्नकर्ताओं को भी स तुष्ट किया जा सकता है। हृदय की एव भावों की पवित्रता रखना ही इसमें अमोघ शक्ति रूप है। ऐसे प्रकरणों के बार बार स्वाध्याय मनन करने से बुद्धि कौशल एव तर्क शक्ति का विकास होता है ।

(६) केवलज्ञानी भगव त भी अ तिम समय में बहुत दिनों का स थारा **पचक्खाण सहित** करते हक्त यह भी प्रदेशी के भावी भव दृढ़प्रतिज्ञ के वर्णन से स्पष्ट होता है ।

(७) कथाग्रथों एव व्याख्याग्र थों में प्रदेशी श्रमणोपासक के बेले-बेले पारणा करके ४० दिन की श्रमणोपासक पर्याय में आराधक होने का वर्णन मिलता है। यह स्पष्टीकरण सूत्र में उपलब्ध नहीं है ।

(८) पापकर्म का उदय आने पर अपना गिना जाने वाला व्यक्ति भी वैरी बन जाता है। अतः स सार में किसी के साथ मोह प्रतिब ध करना योग्य नहीं है। बिना अपराध के प्राणघात कर देने वाले के प्रति भी द्वेष भाव लाने से स्वय के तो कर्मो का ब ध ही होता है और समभाव रख लेने पर अपना कुछ भी अहित नहीं होता है। इसी आभ्य तर प्रेरणा वाक्यों से प्रदेशी ने अपना धर्म आराधन कर देव भव पाया एव साथ ही सदा के लिए स सार भ्रमण से मुक्त होने का सर्टीफीकेट प्राप्त कर लिया। एक कवि के शब्दों में-

**जहर दिया महाराणी, राजा परदेशी पी गया ।**
**विघटन पाप का कर किया, रोष को निवारा है ॥**
**विपदाओं के माध्यम से, कर्मों का किनारा है ।**
**ड़रना भी क्या कष्टों से, महापुरुषों का नारा है ॥**

(९) आत्मा जैसी अरूपी तत्त्वों को श्रद्धा से समझना एव स्वीकार करना चाहिए। प्रत्यक्ष का आग्रह सूक्ष्मतम तत्त्वों के लिए नहीं करना चाहिए। वैसे ही तर्क अगोचर अर्थात् तर्क के अविषय भूत कई अन्य

तत्त्वों को भी श्रद्धा से ही स्वीकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही पर परा से प्राप्त कोई भी सिद्धा त या रूढ़िया हो, उसके विषय में वास्तविकता का बोध होने के बाद पूर्वजों की दुहाई देकर अपनी हेय वृत्तियों का पोषण नहीं करना चाहिये। चाहे वह कोई भी पर परा हो, सिद्धा त का रूप ले चुका हो, आचार का विषय हो या किसी भी प्रकार का इतिहास का विषय हो, तो भी यदि असत्य, कल्पित, अनागमिक, अस गत है; तो वैसी किसी भ्रम से चली बातों, तत्त्वों, आचारों या पर पराओ का दुराग्रह नहीं रखना चाहिए और उसे रखने के लिए स बल रूप में पूर्वजों की दुहाई नहीं देकर सत्य बुद्धि से निर्णय एव परिवर्तन करने में नहीं हिचकना चाहिये। यह प्रेरणा केशीस्वामी ने प्रदेशीराजा को लोहवणिक का दृष्य त देकर दी थी और प्रदेशी ने स्वीकार किया कि अब मक्त ऐसा करूँगा जिससे मुझे लोहवणिक के समान पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा ।

(१०) प्रदेशीराजा और चित्त सारथी के धार्मिक श्रमणोपासक जीवन के वर्णन में मुनि दर्शन, सेवाभक्ति, व्याख्यान श्रवण, पाँच अभिगम, व दन विधि (तिक्खुत्तोके पाठ मय), क्षेत्र स्पर्शने की आग्रह युक्त विन ती, साधु भाषा में स्वीकृति, श्रावक के बारह व्रत धारण, पौषध स्वीकार, श्रमण निर्ग्रंथों के साथ व्यवहार, दूर क्षेत्रवर्ती श्रमणों को व दन विधि, बगीचे में पधारने पर भी चित्त के द्वारा पहले तत्काल घर में व दन विधि, प्रदेशी का स थारा ग्रहण एव उस समय भी सिद्धो को एव गुरु को व दन, स्वय ही स थारा ग्रहण करना आदि धार्मिक कृत्यों का वर्णन किया गया है। यह श्रावक जीवन के श्रेष्ठ आचारों का स कलन है। साथ ही जन सेवा की भावनामय राज्य आवक का चौथा भाग दानशाला के लिए लगाने रूप आचार विधि का वर्णन भी धार्मिक जीवन के अ ग रूप में किया गया है ।

(११) ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस श्रावक जीवन के त्याग तपोमय वर्णन में कहीं भी म दिर मूर्ति बनाने या पूजा विधि करने अथवा अनेक म गल मनाने स ब धी किंचित् भी वर्णन नहीं है। ऐसे विषयों को श्रावक जीवन से नहीं जोड़कर सूत्र के पूर्व विभाग में देव भव से जोड़ा गया है। मनुष्य लोक एव राजधानी या नगरी में ऐसे श्रावकों





के परिग्रह उपकरण एव आधिपत्य की सामग्री में एव जीवन चर्या में म दिर आदि के विस्तृत विषयों को नहीं जोड़ कर देवलोक के विमानों से जोड़ा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मूर्ति पूजा श्रावकाचार एव श्रमणाचार नहीं है ।

देवलोक के सभी स्थान शाश्वत है उसे किसी ने कभी बनाया नहीं है अतः वहाँ किसी की भी व्यक्तिगत मूर्ति होना स भव नहीं है। क्योंकि अनादि वस्तु में किसी वर्तमान व्यक्ति के नाम की कल्पना करना अस गत होता है। इसलिए कि व्यक्ति कोई अनादि नहीं होता है। अतः अनादि स्थानों में देव अपने जन्म समय में लोक व्यवहार आचार के पालन करने हेतु ये पूजा आदि कृत्य करते हक्त। क्यों कि एक ही सूत्र के दो प्रकरणों में श्रावकाचार युक्त वर्णन में म दिर मूर्ति एव मूर्ति पूजा को निर्ग्रंथ धर्म के आचार में किंचित् भी स्थान नहीं दिया जाकर, जीताचार से देवलोक के सभी छोटे बड़े स्थानों को एव यक्ष भूत आदि सभी अपने से निम्नस्तरीय सामान्य देवों के बिम्बों की अर्चा पानी फूल आदि से की है, च दन के छापे आदि लगाये हक्त। मूर्तियों के अतिरिक्त भी सूर्याभ देव के द्वारा पूजा किये एव पूजा कराये गये उन स्थानों के नाम प्रश्न-८ में स कलित है। इन सब स्थानों की पूजा अर्चा करने से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि देव अपने म गल एव जीताचार से ही वे सब कृत्य जन्म समय में करते हक्त। मनुष्यलोक में वे देव धर्म दृष्टि से तीर्थंकरों श्रमणों के दर्शन सेवा आदि के लिये आते है किन्तु किसी म दिर या तीर्थस्थान का दर्शन करने सेवा भक्ति पूजा करने नहीं आते हक्त और धर्मदृष्टि से आते वक्त कभी वहाँ देवलोक में रही उन मूर्तियों के दर्शन पूजा करके नहीं आते। केवल जन्म समय में ही यह सब उनके जीताचार की, म गल कर्तव्यों की विधि होती है, इसीलिये वे इस सूत्र में वर्णित सभी कुछ कृत्य करते हक्त। अतः देव के इन मात्र जन्म समय के जीताचारमय कृत्यों को श्रावकाचार या साध्वाचार से जोड़ना कदापि उपयुक्त नहीं है ।

(१२) युगप्रधान, चार ज्ञान से स पन्न केशी श्रमण ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की पर परा के होते हुए भी प्रदेशीराजा को किसी भी तीर्थ स्थल

के पार्श्वनाथ भगवान की पूजा करने का या लाखों करोड़ों की लागत के म दिर बनवाने का स केत नहीं दिया। श खेश्वर आदि किसी भी पार्श्वनाथ भगवान के किसी भी तीर्थों पर जाने का स कल्प भी नहीं कराया, न स्वय प्रदेशी ने ही ऐसा स कल्प किया। इससे स्पष्ट है कि उस काल में स्थावर तीर्थ, म दिर एव मूर्तिपूजा का प्रचलन तथा उसकी प्रेरणा जैन साधु एव श्रावक समाज में नहीं थी। इन्हीं आगम वर्णित कथानकों के राजाओं एव श्रावकों के साथ अर्वाचीन ग्र थों में मूर्ति म दिर के ढ़ेर सारे वर्णन जोड़ दिये गये हक्त। जो सूत्र से अतिरिक्त प्ररूपण के दोष से दूषित एव मनःकल्पित है।

(१३) सूर्याभ विमान की सुधर्मा सभा के वर्णन में सिद्धायतन का वर्णन है। उसमें १०८ जिन प्रतिमाओं का वर्णन है। उन प्रतिमाओं की सूर्याभ देव ने जन्म समय के जीताचार में विधिवत् पूजा भक्ति की है। किन्तु सुधर्मासभा के बाहर स्तूप के वर्णन के साथ जो जिन प्रतिमाओं का कथन मूलपाठ में उपलब्ध है, वह स्थानीय नहीं है। क्योंकि अ दर के विभाग में १०८ प्रतिमाओं को जो सन्मान है वह यहाँ स भव नहीं है तथा यहाँ जैसा पाठ है उसमें कल्पितता और प्रक्षिप्तता के लक्षण भी स्पष्ट दिख रहे है। क्योंकि शाश्वत देवलोकों के स्थानों में जब १०८ बिना नाम की प्रतिमाएँ भीतरी भाग में मौजूद है। वहाँ गेट(दरवाजा)के बाहर के विभाग में अस गत स्थान में, वह भी स्तूप की तरफ ही चारों प्रतिमाओं का मुख होना बताया गया है, साथ ही वर्तमान चौवीसी के ऋषभ और वर्धमान का नाम उनके लिये लगाया गया है तथा ऐरवत क्षेत्र के प्रथम और अ तिम तीर्थंकर का नाम भी जोड़ा गया है। शाश्वत प्रतिमाओं में चौथे आरे के चार तीर्थंकरों का नाम लगाना भी इस पाठ की काल्पनिकता और प्रक्षिप्तता को प्रगट करता है। इन चारों प्रतिमाओं का माप भी जिन शब्दों में कहा गया है वह वर्धमान और ऋषभ तीर्थंकरों से अघटित होता है। क्योंकि शाश्वत स्थानों की प्रतिमाएँ भिन्न भिन्न अवगाहना की नहीं हो सकती और एक सरीखी हो तो ऋषभ और वर्धमान की अवगाहना का सुमेल कैसे हो सकेगा ? क्योंकि ऋषभदेव की ५०० धनुष की अवगाहना थी एव वर्धमान स्वामी की सात हाथ की अवगाहना थी। इस प्रकार स्पष्ट रूप से यह ध्वनित होता है कि स्तूप के पास चार प्रतिमाओं का वर्णन अस्थानीय, काल्पनिक और प्रक्षिप्त है ।





(१४) तीर्थंकर भगव तों को एव श्रमणों को परोक्ष व दन णमोत्थुण के पाठ से किया जाता है, चाहे श्रावक करे या देव करे, चाहे देव सभा में करे, राज सभा में करे, पोषधशाला या घर में करे। इन्हें ही प्रत्यक्ष मेंव दन तिक्खुत्तो के पाठ की विधि से किया जाता है, चाहे श्रावक हो या देव। सिद्धों को व दन सदा णमोत्थुण के पाठ से किया जाता है। ये निर्णय प्रस्तुत सूत्र के प्रस गों से एव अन्य सूत्रों में आये प्रस गों से प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्त तीर्थंकरों को सिद्ध पद में व दन किया जाता है। इस विषय में जो भी रूढ़ पर पराएँ है उनका सूत्राधार से पुनः चि तन कर अवश्य सुधार करना चाहिए। इच्छामि खमासमणो के पाठ से उत्कृष्ट व दन केवल प्रतिक्रमण वेला में किया जाता है, अन्य समय में या अन्यत्र कहीं भी इस उत्कृष्ट विधि से व दन नहीं किया जाता है। किंतु तिक्खुत्तो के पाठ की विधि अथवा णमोत्थुण पाठ की विधि से व दन किया जाता है। अतः सर्वत्र सर्वदा तिक्खुत्तो के पाठ से व दन करना या सर्वत्र सर्वदा इच्छामि खमासमणो के अधूरे या पूरे पाठ से व दन करना, एका तिक आग्रह वाली रूढ़ पर परा है ।

श्रमणों के लिये जो णमोत्थुण का पाठ उच्चारण किया जाता है उसमें तीर्थंकरों के स पूर्ण गुणों का उच्चारण न करते हुए स क्षिप्त में बोला जाता है, यथा– ***णमोत्थुण केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स*** एव विशिष्ट ज्ञानी गुरु हो तो ***व दामि ण भ ते तत्थगए इहगय , पासउ मे भगव तत्थगए इहगय त्ति कट्टु व दइ णम सइ*** इतना और अधिक बोला जाता है। उपकारी श्रमणोपासक को भी परोक्ष में णमोत्थुण से व दन किया जा सकता है, यथा औपपातिक सूत्र में– ***णमोत्थुण अ बड़स्स परिव्वायगस्स(समणोवासगस्स)अम्ह धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स ।***

औपपातिक सूत्र में तीन बार णमोत्थुण देने के प्रस ग का कथन है। प्रस्तुत सूत्र में एव ज्ञाता सूत्र में दो बार णमोत्थुण देने के प्रस गो का कथन है। दो बार देने वाले सूर्याभ ने सिद्ध और अरिह त भगवान महावीर स्वामी को, चित्त एव प्रदेशी तथा धर्मरूचि अणगार ने सिद्ध एव गुरु को णमोत्थुण से परोक्ष व दन किया। तीन बार देने वाले अ बड़ के शिष्यों ने सिद्धों को, भगवान महावीर को एव गुरु अ बड़ परिव्राजक श्रमणोपासक को णमोत्थुण से परोक्ष व दन किया। तात्पर्य यह है कि शासनपति तीर्थंकर

मौजूद हो तो गुरु को परोक्ष व दन में णमोत्थुण देने पर तीन बार होता है। शासनपति तीर्थंकर निर्वाण प्राप्त हो गये हों तो सिद्ध और गुरु को यों दो बार णमोत्थुण दिया जाता है। उस समय अरिह तो को या महाविदेहस्थ विहरमानों को नहीं दिया जाता है। जब किसी उपकारी गुरु को णमोत्थुण नहीं देना हो तो सिद्ध एव शासनपति तीर्थंकर दो को णमोत्थुण दिया जाता है और जब गुरु को णमोत्थुण नहीं देना हो और शासनपति तीर्थंकर निर्वाण प्राप्त हो चुके हों तो केवल एक सिद्धों को णमोत्थुण दिया जाता है अर्थात् जब उपकारी गुरु समक्ष है और शासन पति तीर्थंकर मोक्षप्राप्त हो चुके हक्त तो सिद्ध भगवान को केवल एक णमोत्थुण दिया जाता है। तदनुसार वर्तमान में कई समुदाय एक णमोत्थुण भी देते है जो आगमोचित ही प्रतीत होता है ।

(१५) कथा रूप अध्ययनों का स्वाध्याय करने में यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि उनमें ग्रहण करने योग्य, छोड़ने योग्य, जानने योग्य और समभाव, मध्यस्थभाव रखने योग्य, यों कई तरह के विषय होते है। अतः अत्य त सचेत सतर्क सावधान बुद्धि एव विवेकबुद्धि से काम लेना चाहिए। राजाओं की ऋद्धि का एव देवताओं की ऋद्धि का वर्णन भी होता है, राणियों का, अन्य स्त्रियों का एव भोग सामग्रियों का वर्णन भी होता है, धर्माचरणों श्रावकाचारों, श्रमणचर्याओं का वर्णन भी होता है, तो कई जीताचारों, लोकाचारों, लोकव्यवहारों का भी वर्णन होता है एव कुसिद्धा तों कुतर्कों का एव महाअधर्मी आत्माओं का, क्रूर प्रवृत्तियों का वर्णन भी होता है, निरर्थक ही खोटे कर्तव्य और विष देने रूप दूसरों का अहित करने की प्रवृत्तियों का वर्णन भी आता है। ऐसे वर्णनों से चि तनपूर्वक एव आचार शास्त्रों भगवदाज्ञाओं को आगे रखते हुए समन्वयपूर्वक ही आचरणीय तत्त्वों का निर्णय लेना चाहिए। किंतु हेय ज्ञेय तत्त्वों से खोटे निर्णय नहीं लेने चाहिये ।

इसके अतिरिक्त कथा में वर्णित व्यक्तियों में से किसी पर भी रागभाव या द्वेषभाव या पक्ष-विपक्ष के विचारों के भाव, निंदा एव कर्मब ध के परिणाम नहीं आने चाहिए। तटस्थ ज्ञेय दृष्टि से ही उन कथानकों का परिशीलन करना चाहिए। उन प्रस गों के भावावेश में नहीं बह जाना चाहिए । क्योंकि कथानकों के वर्णन में कई प्रकार के उतार-





चढ़ाव होने वाले वर्णनों का गु थन होता है। उससे अपने समभाव, तटस्थ भाव, माध्यस्थ भाव को सदा सुरक्षित एव पुष्ट रखना चाहिये। अन्यथा निरर्थक के कर्मब ध से भारी होना हो जाता है। कथानक तो घटित हो चुकेहोतेहक्त। चाहे प्रस्तुत सूत्रगत प्रदेशीराजा और सूर्यका ता राणी हो अथवा अन्य रामायण महाभारत के कोई भी चारित्रनायक राम-रावण एव कौरव पाँड़व आदि हो। इनके विषय में अब अपना कोई स कल्प-विकल्प करना निरर्थक होता है। इसलिये ही यह कहा गया है कि ऐसे कथा वर्णनों के अध्ययन में अत्य त सावधान एव विवेक बुद्धि रखनी चाहिये।

(१६) जीताचार या लोक व्यवहाराचार एव धार्मिक आचार इन का अपना अलग अलग स्थान एव क्षेत्र है ।

गृहस्थ श्रमणोपासक के जीवन में या दैविक जीवन में ऐसे कई जीताचार लोक व्यवहाराचार होते हक्त वे अपने स्थान पर, अपनी सीमा तक, उनके लिये उपयुक्त होते हक्त। किन्तु उनके जो धार्मिक आचार होते हक्त वे बिलकुल स्वत त्र स वर-निर्जरा एव व्रत प्रत्याख्यान, दया-दान, शील, स तोष अनुकम्पा भाव रूप होते है। इन धर्माचारों में भी अनुकम्पा-दान और जनसेवा रूप दान **पुण्यधर्म** रूप होता है । अभयदान एव सुपात्रदान **स वर निर्जरा धर्म** रूप होता है। शेष सभी व्रत प्रत्याख्यान शील स तोष धर्माचरण स वर निर्जरा धर्म रूप होते हक्त। किसी भी धर्माचरण में जीताचार या लोक व्यवहाराचार को प्रविष्ट कर देना, घुसा देना, उसकी पर परा बना देना भी अनुचित है, किसी भी जीताचार को धर्माचरण का वाना पहना देना या उसे धर्माचरण मान लेना भी उचित नहीं है तथा गृहस्थावस्था में, व्यवहारिक जीवन में, अनिवृत्त जीवन में अथवा माता, पिता, राजा, समाज आदि किसी के भी अधीनस्थ जीवन में रहते हुए भी जीताचार या लोक व्यवहाराचार की एका त रूप से विवेक रहित (अविवेकीपन से) हानि लाभ का विचार किये बिना उपेक्षा करना भी उपयुक्त नहीं होता है। जो सामाजिक गृहस्थ जीवन से ऊपर उठकर, निवृत्त साधनामय जीवन में रहता हो तो उसके द्वारा जीताचार आदि का पूर्ण त्याग कर देना अनुपयुक्त नहीं होता है, उपयुक्त ही है।

इसी कारण से अनिवृत्त गृहस्थ जीवन में ६ प्रमुख आगार होते है और निवृत साधना जीवन में श्रावक के उन ६ आगारों का भी त्याग

हो जाता है। फिर भी कोई विशिष्ट साधक विवेक बुद्धि रखते हुए किसी भी जीताचार व्यवहाराचार से अलग रह सकता है। किन्तु अनिवृत श्रावक जीवन में जीताचारों की एका त रूप से उपेक्षा नहीं की जा सकती। ज्ञाता सूत्र वर्णित आदर्श श्रावक अरणक जो धर्म श्रद्धा में पिशाच रूप देव से भी विचलित नहीं किया जा सका, उसने भी यात्रा के प्रार भ में कई म गल एव नावा की अर्चा पूजा नमस्कार प्रवृत्ति की थी ।

सम्यग् दृष्टि एक भवावतारी देवेन्द्र भी तीर्थंकरों के दाह स स्कार, भस्म, अस्थि, आदि स ब धी कई क्रिया कलाप करते हक्त। उत्कृष्ट धर्म आराधना से देव बने सूर्याभ ने सम्यग् दृष्टि होते हुए भी अपने विमान के छोटे बड़े अनेक स्थानों की अर्चा पूजा की, यह प्रस्तुत सूत्र में स्पष्ट वर्णित है ।

तात्पर्य यह है कि जीताचार को जीताचार रूप में मान्य करते हुए उसे धर्माचरण न मानते हुए यथाप्रस ग आवश्यकतानुसार स्वीकार करना गृहस्थ जीवन में अनुचित नहीं है किन्तु उसकी अविवेकपूर्ण एका त उपेक्षा करना अनावश्यक एव अयोग्य है। गृहस्थ जीवन की साधना में आगे बढ़ते निवृतिमय साधना में जीताचार आदि का त्याग करना भी आवश्यक और योग्य हो जाता है। अतः जीताचार, लोक- व्यवहाराचार एव धर्माचरण का विवेक पूर्वक निर्णय एव समाचरण करना चाहिए। गृहस्थ जीवन को किसी भी अविवेक पूर्ण एका त में नहीं ड़ालना चाहिये। वहाँ स सार व्यवहार एव धर्म कर्तव्यों का विवेकपूर्वक समन्वय किया जाना ही उपयुक्त एव समाधिकारक होता है। इसी कारण प्रथम व्रतधारी, प्रस ग आने पर स ग्राम आदि में प चेन्द्रिय मानव की जीवन लीला समाप्त करते हुए भी अपनी समकित एव श्रमणोपासक पर्याय में जीवित-सुरक्षित रह सकता है ।

(१७) श्रमणों की यह आचार विधि है कि वे किसी प्रकार का नृत्य नाटक वा दित्र तथा अन्य दर्शनीय दृश्यों एव स्थलों को देखने का या देखने जाने का स कल्प भी नहीं करे। ऐसा निषेध आचारा ग सूत्र में है एव प्रायश्चित्त विधान निशीथ सूत्र में है ।

साधु का स्वय अपनी भावना एव सावधानी तथा विवेक से अपना आचार पालन करना कर्तव्य है। किन्तु अन्य कोई अपनी आग्रह





पूर्ण इच्छा या स कल्प या रूचि से कुछ करना चाहे, साधु की इच्छा या निर्देश को स्वीकारने का विकल्प उसके मन में न हो ऐसे आग्रही भावों वाले व्यक्ति के साथ तिरस्कार वृत्ति या हठाग्रह या द ड़नीति स्वीकार न करते हुए, साधु को उपेक्षा भाव तटस्थ भाव रखना ही पर्याप्त होता है। सूर्याभदेव ने गौतमादि अणगारों को अपनी ऋद्धि और नाटक दिखाने का निवेदन किया। प्रभू ने तीन बार कहने पर भी उसे स्वीकृति नहीं दी और उसकी मनोवृत्ति को जानकर निषेध या तिरस्कार भी नहीं किया। न ही कोई अन्य श्रमण ने बीच में बोलकर उससे कोई असद्व्यवहार किया। बिना स्वीकृति के ही सूर्याभ ने अपने निर्णयानुसार कृत्य किया। अतः ऐसे ही कोई प्रस गों के उपस्थित होने पर श्रमण को उचित लगे तो उपदेश स केत या अपने आचार एव श्रावक के कर्तव्य का कथन कर देना चाहिए एव कहना निरर्थक लगे तो उपेक्षा ही रखनी चाहिये। किन्तु हुकुमत, तिरस्कर, बहिष्कार, दुर्व्यवहार या बलात्कार आदि के कर्तव्य कदापि नहीं करना एव नहीं करवाना चाहिए और ऐसे दुर्व्यवहारों का प्रेरक या अनुमोदन भी नहीं बनना चाहिए। किन्तु शालीनता एव शिष्टता के व्यवहारों तक ही सीमित रहना चाहिए। क्योंकि धर्म आत्म परिणामों की प्रमुखता पर निर्भर रहता है, दूसरों पर बलात्कार करके स्वय का धर्मी धर्माचारी कहलाना योग्य नहीं होता है ।

**उपस हार :-** इस प्रकार अनेक शिक्षाओं, प्रेरणाओं से एव ज्ञातव्य तत्त्वों से परिपूर्ण यह सूत्र, साधको के अनुभव ज्ञान एव श्रद्धान को पुष्ट करने वाला है। अतः इसके अध्ययन मनन से यथोचित आत्म विकास को प्राप्त करना चाहिये ।

# ॥ राजप्रश्नीय सूत्र स पूर्ण ॥

***कर्मों के घोर विपाक के समय यह शरीर एव प्रेमीजन भी वैरी बन जाते हक्त। ज्ञानीजन फरमाते है कि मोह को हटाओ एव विरक्त बन कर आत्म कल्याण करो।***

# जीवाभिगम सूत्र

**प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ?**

**उत्तर–** यह तीसरा उपा ग सूत्र है। यह भी अज्ञात बहुश्रुत रचित ए न दी सूत्र की सूचि में निर्दिष्ट सर्व श्वेताम्बर मान्य आगम है। उववाई, राजप्रश्नीय सूत्र के समान इसका भी स कलन स पादन देवर्द्धिगणि के आगम लेखन समय में ही करवाया गया है ऐसा स्वीकार करना सभी अपेक्षाओं से समुचित होता है। ४७५० श्लोक प्रमाण जितना इस शास्त्र का गद्यपद्यमय मूलपाठ स्वीकारा गया है।

**विषय :–** इस सूत्र में जीव-अजीव दोनों तत्त्वों का विस्तार से वर्णन है जिसमें जीव तत्त्व स ब धी वर्णन ही अधिक है। इसके सिवाय लोक, तीनों लोक एव दीप-समुद्र तथा ज्योतिषी विमान एव वैमानिक देवलोकों का क्षेत्रीय वर्णन भी है ।

**विभाग :–** इस सूत्र में मुख्य दो विभाग है– (१) स सारी जीवों के मुख्य भेद २ से १० तक एव (२) समस्त जीवों (स सारी एव सिद्ध) के मुख्य भेद २ से १० तक। अर्थात् प्रथम विभाग के भेदों में सिद्धों का समावेश नहीं है। द्वितीय विभाग के सभी भेदों में सिद्धों को अवश्य रखा गया है। दोनों विभागों के ९–९ अध्यायों का पड़िवत्ति=प्रतिपत्ति ऐसा नाम रखा गया। यों कुल मिलाकर इस शास्त्र में ९+९=१८ प्रतिपत्तियाँ(अध्यायरूप) है। प्रथम विभाग विशाल है दूसरा विभाग लघु है ।

**नाम–** शास्त्रगत प्रथम प्रश्न के आधार से इसका नाम जीवाजीवाभिगम रखा गया है। मुख्य विषय की अपेक्षा एव स क्षिप्त रुचि से इसका प्रचलित नाम **जीवाभिगम सूत्र** है क्योंकि इसमें प्रार भ के कुछ ही सूत्रों में अजीव का स्वरूप, उसके भेद-प्रभेद के द्वारा बताया गया है। उसके बाद जीव अभिगम परिज्ञान एव क्षेत्रीय वर्णन का सा गोपा ग परिज्ञान है ।

**उपलब्ध साहित्य– इ**स सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य मलयगिरिजी म.सा. की स स्कृत भाषा में है। अन्य अनेक अर्वाचीन व्याख्या, विवेचन





या भावार्थ युक्त मूलपाठ का प्रकाशन अनेक स स्थाओं से समय-समय पर हुआ है। जो हिंदी गुजराती एव स स्कृत भाषाओं में उपलब्ध होता है। हमारे प्रावधान में भी इस शास्त्र का गुजराती एव हिंदी भाषा में सारा श तथा प्रश्नोत्तर दोनों रूप में प्रकाशन हुआ है, हो रहा है ।

## प्रतिपत्ति–१ : द्विविधा जीव

**प्रश्न–१ : इस प्रतिपत्ति के प्रार भ में अजीव तत्त्व का वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** सर्व प्रथम **जीवाजीवाभिगम** के दो भेद किये गये है– (१) अजीवाभिगम (२) जीवाभिगम। जिसमें से अजीवाभिगम में अजीव के दो भेद किये है– रूपी अजीव एव अरूपी अजीव। पुनः अरूपी अजीव के ३० और रूपी अजीव के ५३० भेद समझाये गये है । वर्तमान में यहाँ स क्षिप्त मूलपाठ उपलब्ध है और प्रज्ञापना सूत्र का निर्देश कर दिया गया है। अर्थात् जीवाभिगम सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र इन दोनों सूत्रों के प्रार भ में अजीव के ५६० भेद दर्शाये गये है। जिसका बहुश्रुतों ने जीवाभिगम में स क्षिप्त और प्रज्ञापन में विस्तृत पाठ रखा है ।

**अरूपी अजीव के ३० भेद–** (१–३) धर्मास्तिकाय का स्क ध, देश और प्रदेश। (४–६) अधर्मास्तिकाय का स्क ध, देश और प्रदेश। (७–९) आकाशास्तिकाय का स्क ध, देश और प्रदेश। (१०) कालद्रव्य। (११–१५) धर्मास्तिकाय के ५ बोल–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण । इसी तरह (१६–२०) अधर्मास्तिकाय के ५ बोल। (२१–२५) आकाशास्तिकाय के ५ बोल और (२६–३०) कालद्रव्य के भी ५ बोल– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण।

**रुपी अजीव के ५३० भेद :–** रुपी अजीव केवल एक पुद्गलास्तिकाय है। जिसके रुपी होने से वर्ण–५, ग ध–२, रस–५, स्पर्श–८ एव स स्थान–५ ये कुल २५ मूल भेद है। जिनके उत्तर भेद ५३० होते हक्त वे इस प्रकार है– (१) काला वर्ण का पुद्गल २ ग ध में से कोई भी ग ध वाला हो सकता है, ५ रस में से कोई भी रस

वाला एव ८ स्पर्श में से कोई भी स्पर्शवाला तथा ५ स स्थान में से कोई भी स स्थान वाला हो सकता है । इस प्रकार **काला** पुद्गल २ ग ध, ५ रस, ८ स्पर्श एव ५ स स्थान रूप २० भेद वाला अर्थात् २० प्रकार का हो सकता है ।

**(२-५)** इसी प्रकार नीला वर्ण वाला, लाल वर्ण वाला, पीला वर्ण वाला एव सफेद वर्ण वाला पुद्गल भी २०-२० प्रकार का हो सकता है। यों ५ वर्ण के ५२०=१०० प्रकार(भेद) होते हक्त ।

**(६-७)** इसी विधि से सुग ध और दुर्गंध के २३-२३ प्रकार होते है अर्थात् सुग धी पदार्थ ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श, ५ स स्थान इन २३ में से किसी भी प्रकार का हो सकता है। अतः दोनों ग ध के २३+२३= ४६ प्रकार होते हक्त।

**(८-१२)** इसी विधि से ५ रस के २०-२० प्रकार होने से ५२०=१०० प्रकार होते हक्त । अर्थात् एक-एक रस वाला पुद्गल ५ वर्ण, २ ग ध, ८ स्पर्श और ५ स स्थान वाला हो सकता है ।

**(१३-२०)** इसी विधि से खरदरा, सुहाला आदि आठ स्पर्श में से प्रत्येक स्पर्श के २३-२३ प्रकार हो सकते है अर्थात् एक खरदरा स्पर्श वाला पुद्गल ५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस और खरदरा-सुहाला दो छोड़कर शेष ६ में से कोई भी स्पर्श वाला एव ५ स स्थान वाला हो सकता है। यों ५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस, ६ स्पर्श, ५ स स्थान ये २३-२३ प्रकार आठों स्पर्श के हो जाने से आठ स्पर्श के ८२३=१८४ प्रकार होते हैं ।

**(२१-२५)** इसी विधि से परिम ड़ल आदि पाँचों स स्थान के २०-२० प्रकार हो सकते है अर्थात् प्रत्येक स स्थान वाले पुद्गल ५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस और ८ स्पर्श वाले हो सकते है जिससे ५२०=१०० प्रकार स स्थानों के होते है ।

**कुल योग :-** यों वर्ण के-१००+ग ध के-४६ + रस के-१०० +स्पर्श के-१८४ + स स्थान के-१००=५३० भेद होते है। इस प्रकार मूल २५ वर्ण आदि के ५३० उत्तर भेद होते हक्त ।

**प्रश्न-२ : धर्मास्तिकाय आदि के द्रव्य, क्षेत्र, काल वगेरे ५-५ बोलों**





**का क्या अर्थ है ? एव वर्णादि मूल २५ भेद किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** द्रव्य क्षेत्र आदि पाँच बोलों के माध्यम से धर्मास्तिकाय आदि का परिचय प्राप्त होता है जिससे अरूपी तत्त्वों का स्वरूप समझ में आ जाता है । यथा-

**(१) धर्मास्तिकाय :-** १. द्रव्य से- धर्मास्तिकाय एक स ख्या वाला द्रव्य है। दो-तीन आदि स ख्या धर्मास्तिकाय की नहीं होती है। २. क्षेत्र से- यह एक धर्मास्तिकाय भी स पूर्ण लोक प्रमाण है अर्थात् पूरे लोक में व्याप्त है। ३. काल से- यह सदा शाश्वत है। ४. भाव से यह अरूपी अजीव है इसमें वर्ण ग ध रस स्पर्श नहीं है। अस ख्यात प्रदेशी है। ५. गुण से- चलन सहाय गुण धर्मास्तिकाय का है। यथा- पानी में मछली को और पटरी पर रेलगाडी को चलने में सहायता मिलती है वैसे ही जीव और पुद्गल को स पूर्ण लोक में गति करने में धर्मास्तिकाय सहाय रूप बनता है ।

**(२) अधर्मास्तिकाय :-** १. द्रव्य से एक द्रव्य है। २. क्षेत्र से स पूर्ण लोकप्रमाण है। ३. काल से सदा शाश्वत है। ४. भाव से वर्णादि नहीं है, अरूपी द्रव्य है। अस ख्य प्रदेशी है। ५. गुण से स्थिर सहाय गुण है अर्थात् पथिक को छाया के समान अधर्मास्तिकाय जीव और पुद्गल को स्थित रहने में सहायक-मददरूप होता है ।

**(३) आकाशास्तिकाय :-** १. द्रव्य से एक द्रव्य है । २. क्षेत्र से लोक एव अलोक दोनों में होने से आकाशास्तिकाय लोकालोक प्रमाण है। ३. काल से सदा शाश्वत है। ४. भाव से वर्णादि नहीं है। लोकालोक में होने से अनन्त प्रदेशी है। ५. गुण से- अवगाह गुण अर्थात् जगह देने का गुण। जीव, पुद्गल आदि द्रव्य आकाश में अवगाहन प्राप्त करते हक्त, रह सक्ते हक्त ।

**(४) कालद्रव्य :-** काल को अस्तिकाय नहीं कहा गया है। क्यों कि वास्तव में वर्तमान काल ही कालद्रव्य होता है अतः यह अप्रदेशी द्रव्य है । १. द्रव्य से काल अनन्त जीव-पुद्गलों पर बीतता है। २. क्षेत्र से काल द्रव्य अढ़ाई द्वीप में ही है। ३. काल से काल द्रव्य शाश्वत है। ४. भाव से काल द्रव्य वर्णादि रहित है, अरूपी है। अप्रदेशी है। ५.

गुण से वर्तन गुण। काल का बीतने का गुण है ।

**वर्णादि के मूल २५ भेद :-** वर्ण-५ : काला, नीला, लाल, पीला, श्वेत। ग ध-२ : सुग ध और दुर्गंध। रस-५ : तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा, मीठा। स्पर्श-८ : खुरदरा, चिकाना, हल्का, भारी, ठ ड़ा, गर्म, रूक्ष, स्निग्ध । स स्थान-५ : परिम ड़ल(चूड़ी आकार), वृत्त(गोल), त्रिकोण, चोकोन, आयत(लम्बा) ।

**प्रश्न-३ : सिद्ध भगवान तो निर जन निराकार रूप में सभी समान होते हक्त तो उनके भेद-प्रभेद कैसे ?**

**उत्तर-** प्रस्तुत प्रथम प्रतिपत्ति में जीवो के दो भेद किये है- (१) स सारी अवस्थाओं से रहित अर्थात् सिद्ध। (२) स सारी अवस्था को प्राप्त अर्थात् समस्त स सारी जीव ।

स सारी जीवों के पुनः त्रस और स्थावर दो भेद है। उन दोनों के पुनः तीन-तीन भेद है, यथा- **स्थावर-३ :** पृथ्वी, पानी, वनस्पति एव **त्रस-३ :** अग्नि, वायु और त्रस। पुनः त्रस के ४ भेद- बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और प चेन्द्रिय। पुनः प चेन्द्रिय के ४ भेद- नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव। इन चारों के भी अनेक भेद प्रभेद होते हक्त । इसी भेद प्रभेद शैली का अनुसरण करते हुए भूतपूर्व मानव पर्याय की अपेक्षा या सिद्ध होने के स्थलों की अपेक्षा १४ प्रकारे, १५ भेदे सिद्ध कहे जाते हक्त। एव सिद्ध अवस्था को प्राप्त जीवों के भी स्थिति की अपेक्षा औपचारिक भेद रूप कथन किया जाता है। जो ज्ञानाराधक साधकों के अनुभव एव क्षयोपशम विकास आदि में साधकतम सिद्ध होतेहक्त। अतः विभिन्नता रहित सर्व समान सिद्धों के भी आगमों में भेदों का कथन किया जाता है। वह सापेक्ष है ऐसा समझना चाहिये ।

**चौदह प्रकारे सिद्ध-** उत्तराध्ययन सूत्र के ३६वें अध्ययन की गाथा ५० से ५५ तक के वर्णन से १४ सिद्धों के प्रकार का स कलन किया गया है- (१) एक समय में नपु सक १० सिद्ध हो सकते है। यों ही (२) स्त्री एक समय में २० सिद्ध हो सकती है (३) पुरुष एक समय में १०८ सिद्ध हो सकते है (४) गृहस्थ-४ (५) अन्यलि ग में-१० (६) स्वलि ग में-१०८ सिद्ध हो सकते हक्त। (७) उत्कृष्ट अवगाहना (५०० धनुष)





में-२। (८) जघन्य अवगाहना(२ हाथ)में-४ (९) मध्यम अवगाहना में-१०८ सिद्ध हो सकते हक्त। (१०) ऊँचे लोक में-४ (११) समुद्र में-२ (१२) अन्य जलीय स्थानों में-३ (१३) नीचे लोक में-२० (सलिलावती विजय की अपेक्षा) (१४) तिरछे लोक में-१०८ जीव एक समय में सिद्ध हो सकते हक्त ।

**प द्रह भेदे सिद्ध-** प्रस्तुत प्रथम प्रतिपत्ति में अन तर सिद्ध के ये १५ भेद कहे है जो मनुष्य भव स ब धी विशेषताओं को सूचित करते हक्त। पर पर सिद्ध के १ समय, २ समय, ३,४,५ आदि अन त समय वाले सिद्ध गिने हक्त । कहे गये १५ भेद इस प्रकार है- (१) तीर्थसिद्ध- तीर्थंकर द्वारा शासन प्रवर्ताने के बाद सिद्ध होने वाले। (२) अतीर्थसिद्ध कोई भी तीर्थंकर का शासन प्रार भ न हुआ हो या शासन विच्छेदकाल हो तब सिद्ध होने वाले। (३) तीर्थंकर सिद्ध (४) अतीर्थंकरसिद्ध (अन्य सभी) (५) स्वय बुद्ध सिद्ध(किसी अन्य के बोध बिना स्वय के ज्ञान से (६) प्रत्येकबुद्ध सिद्ध (किसी वस्तु के निमित्त से स्वतः बोध पाने वाले) (७) बुद्धबोधित सिद्ध (८) स्त्रीलि ग सिद्धा(स्त्री शरीर) (९) पुरुष लि ग सिद्धा (पुरुष शरीर) (१०) नपु सकलि ग सिद्धा(नपु सक शरीर) (११) स्वलि ग सिद्धा (जिनमतानुयायी श्रमण) (१२) अन्यलि गसिद्धा (अन्य मतवाले स न्यासी) (१३) गृहस्थलि ग सिद्धा(श्रावक या सामान्य कोई भी) (१४) एक सिद्धा(अकेले ही मोक्ष जावे) (१५) अनेकसिद्धा (एक समय में एक साथ अनेक मोक्ष जावे ।

**प्रश्न-४ : अन तरसिद्धा और प्रथम समयसिद्ध में क्या भिन्नता है ?**

**उत्तर-** शास्त्रकार ने अन तरसिद्ध में मानव भव स ब धी विशेषताओं का समावेश किया और पर परसिद्ध के भेद में प्रथम समय सिद्ध आदि प्रकार बताये है। इसके कारण इन दोनों की भिन्नता को दो अपेक्षा से समझ सकते है- (१) शरीर छूटने के बाद का प्रथम समय वाले अन तर है और द्वितीयादि समय वाले पर पर है अर्थात् द्वितीय समय वाले सिद्ध पर परसिद्ध के प्रथम समय वाले है। तृतीय समय वाले सिद्ध पर पर सिद्ध के दो समय वाले सिद्ध है ऐसी भिन्नता समझना।

(२) दूसरी अपेक्षा यह है- मनुष्य भव के अ तिम समय की अवस्था

रूप पूर्वभाव को **अन तर** समझना, जिसके १५ भेद मनुष्य भावापेक्षित बनते है और सिद्ध अवस्था को प्राप्त जीव **पर पर** समझना। इन दोनों अपेक्षा में प्रथम अपेक्षा सुबोध्य लगती है। विशेष ज्ञानी कहे वही प्रमाण्य है। ***तमेव सच्च णिस क ज (भाव )जिणेहिं पवेइय ।*** जो अपेक्षा जिनेश्वर के भावों की अनुगामी लगे उसे प्रमाण्य स्वीकार्य समझना चाहिये ।

**प्रश्न-५ : स सारी जीवों के भेद किस प्रकार किये गये है और उनका परिचय परिज्ञान कितने प्रकार से कराया गया है?**

**उत्तर**- प्रस्तुत में स सारी जीवों के, अपेक्षा से २,३,४ यावत् ९,१० भेद तक दर्शायेगयेहक्त। जिसमें इस प्रथम प्रतिपत्ति में जीव के **मूल २ भेद**- त्रस और स्थावर कहकर उनका विस्तार किया गया है। विस्तार का क्रम पृथ्वी, पानी, वनस्पति रूप तीन स्थावर का, फिर तेउ, वायु, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव का २३ द्वारों से परिचय परिज्ञान कराया है, वे द्वार इस प्रकार है-

**(१) शरीर**- स सारी जीव जिसमें रहते हक्त, वे शरीर पाँच हक्त- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। औदारिक शरीर स्थूल पुद्गलों से बनता है। वैक्रिय आदि क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्मतर पुद्गलों से बनते हक्त।

**(२) अवगाहना**- जीवों के अपने स्थूल शरीर की ल बाई या ऊँचाई अथवा उत्कृष्ट अवगाहन क्षेत्र ।

**(३) स घयण**- शरीर की शक्ति विशेष एव हड्डियों की मजबूती । इसके ६ प्रकार है ।

**(४) स स्थान**- शरीर का बाह्य देखाव, आकृति, स रचना का प्रमाणोपेत या बेड़ोल वगैरह होना। इसके भी ६ प्रकार है ।

**(५) कषाय**- मोहकर्म के उदयजन्य जीव के क्रोधादि चारों परिणाम।

**(६) स ज्ञा**-कर्मजन्य जीव की आहारादि स ब धी आका क्षा, चाहना या च चलता। इसके चार प्रकार है ।

**(७) लेश्या**- जीव के स्वाभाविक या अन्य प्रेरित परिणाम; भाव लेश्या है। उस भाव लेश्या निमित्तक लेश्या वर्गणा के पुद्गलों का जीव में आकर्षण होता है वे द्रव्यलेश्या। द्रव्यलेश्या के पुद्गल आत्मा द्वारा





ग्रहण किये कर्मवर्गणा के पुद्गलों को आत्मा के साथ स बद्ध करने में श्लेश(सुलेशन) का काम करते हक्त। जीव के परिणाम या भावलेश्या एव अध्यवसाय ये तीनों अभिन्न भी है और शब्दप्रयोग की अपेक्षा तथा अन्य क्वचित सूक्ष्म अपेक्षा इनमें फर्क भी माना जा सकता है। खास आगम प्रमाण को स्वीकार्य समझना। लेश्या के कृष्ण आदि ६ प्रकार द्रव्य और भाव दोनों लेश्या में कहे गये हक्त ।

**(८) इन्द्रिय**- स सारी जीव को अपने शरीर में प्राप्त विशिष्ठ जीवन साधन रूप द्रव्य इन्द्रिया है और उस साधन को उपयोग में लेने का जीव का कर्मस ब धी क्षयोपशम वह भाव इन्द्रियाँ है। दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ ५-५ है, श्रोत्रेन्द्रियादि । प्रस्तुत में द्रव्यभाव के भेद बिना साामान्य रूप से पाँच इन्द्रियाँ कही है ।

**(९) समुद्घात**- किसी भी कारण से स्थूल शरीर में स्थित आत्मप्रदेशों का शरीर की मर्यादा से कुछ क्षणों के लिये बाहर निकलना, क पित होना। कषाय के उद्वेग से, वेदना के उद्वेग से, मरण समय में अथवा वैक्रिय आदि विशिष्ट प्राप्त शक्ति(लब्धि) का उपयोग करने से आत्म प्रदेश शरीर से बाहर हो जाते है, इसे ही समुद्घात कहा गया है। इसके ७ प्रकार है। कर्मों की विषमता को सम करने हेतु भी समुद्घात होती है, यथा- केवली समुद्घात ।

**(१०) सन्नी**- मन रूप आत्मसाधन से युक्त जीवों को सन्नी और उससे रहित को असन्नि कहा गया है ।

**(११) वेद**- मोहकर्म के उदय से जीव के स्त्री, पुरुष आदि के सहवास स ब धी स्थूल या सूक्ष्म विकारी परिणाम अथवा कुशील के भाव स्त्री, पुरुष, नपु सक ये तीन वेद कहे गये हक्त। स्थूल अपेक्षा से स्त्री आदि के शरीर वालों को उस वेद वाला कह दिया जाता है ।

**(१२) पर्याप्ति**- प्राप्त शरीर में कार्य क्षमता की उपलब्धि हो जाना। जन्म के प्रार भ में जीव को आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा एव मन रूप क्षमताओं की प्राप्ति क्रमशः अ तर्मुहूर्त में होती है उन्हें आहार पर्याप्ति यावत् मनपर्याप्ति कहा गया है, ये ६ हक्त ।

**(१३) दृष्टि-** आत्मा के स ब ध में या अनादि सिद्धा तों के स ब ध में अथवा सर्वज्ञानी भाषित तत्त्वों के स ब ध में जीव की जो शुद्धाशुद्ध समझ होती है उसे दृष्टि कहा गया है। यह सम्यक् असम्यक्(मिथ्या) और मिश्र तीन तरह की होती है ।

**(१४) दर्शन-** दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम या क्षय से प्राप्त जीव की प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष देखने स ब धी क्षमता। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल ये ४ दर्शन है ।

**(१५) ज्ञानाज्ञान-** ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम या क्षय से प्राप्त-उद्घाटित जीव का आत्म प्रकाश। मतिज्ञान आदि इसके ५ प्रकार है। जिसकी दृष्टि समझ सम्यक् होती है उसको ये ५ ज्ञान होते है और जिसकी समझ असम्यक् या मिश्र होती है उसको इन पाँच में से मति आदि तीन ज्ञान होते है और मिथ्या समझ से भावित होने के कारण ये ज्ञान कुछ विकृति प्राप्त होने से अज्ञान कहलाते है। इस तरह ५ ज्ञान और ३ अज्ञान होते हक्त ।

**(१६) योग-** मन, वचन और शरीर स ब धी जीव की प्रवृत्ति, आत्म स्फुरणा। इसके मुख्य ३ प्रकार है और विस्तार की अपेक्षा १५ प्रकार भी है ।

**(१७) उपयोग-** ज्ञान और दर्शन ये जीव के निज गुण है । इनमें जीव का उपयुक्त होना-प्रवृत्त होना। इसके दो प्रकार है- (१) साकारोपयोग (ज्ञान में उपयुक्त)(२) अनाकारोपयोग(दर्शन में उपयुक्त)। छद्मस्थ जीवों के इन दोनों उपयोगों का अ तर्मुहूर्त में परिवर्तन होता रहता है और केवलज्ञानी के १-१ समय में क्रमशः परिवर्तन होता है अर्थात् दोनों उपयोग साथ में नहीं होते। ज्ञान और दर्शन उपलब्ध या सत्ता की अपेक्षा जीव में साथ में रहते है किंतु उनका प्रयोग उपयोग क्रमिक होता रहता है ।

**(१८) आहार-** जीव अपने शरीर के अवगाहित छहों दिशाओं में रहे आहार वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है। यह आहार रोमाहार और शरीर में परिणमित आहार की अपेक्षा है। जो मुख में कवल ड़ाला जाता है वह मात्र पुद्गल प्रक्षेप है ।खास आहार उसे नहीं कहा गया





है। उस प्रक्षिप्त कवल का परिणमन होकर समस्त शरीर विभागों को प्राप्त होने रूप वह आहार कहलाता है। तत्स ब धी अनेक ज्ञातव्य सूक्ष्म सूक्ष्मतम प्रश्नोत्तर शास्त्र में है, उसे स कलित करके ''२८८ प्रकार का आहार'' ऐसा कथन शैली में प्रचलित है। उनका खुलासा प्रस्तुत प्रथम प्रतिपत्ति के सूत्र ३३ से ४७ तक, प्रश्नोत्तर रूप मूलपाठ में है ।

**(१९) उपपात-** कहाँ कहाँ से जीव आकर उत्पन्न होता है ?

**(२०) स्थिति-** जीव के पूरे भव की छोटी या बड़ी उम्र ।

**(२१) मरण-** मारणा तिक समुद्घात करके मरने वाले और समुद्घात किये बिना मरने वाले, समवहत और असमवहत मरण रूप से दो प्रकार केहोतेहक्त। आगम की कथनशैली के आशय को ठीक से नहीं समझने के कारण दो बार मरण समुद्घात करने का भ्रम होता है। किंतु मरण समुद्घात जीव एक बार ही आयुष्य कर्म पुद्गलों की विशेष निर्जरार्थ करता है। कभी वह उसी अवस्था में मर जाता है, कभी वापिस शरीरस्थ होने के बाद मरता है। इस मरने के लिये भी समुद्घात शब्दप्रयोग प्रवाह से लगा है। जैसे केवली के मरण के कथन में समुद्घात शब्दप्रयोग आगम में देखा जाता है, वह भी मरने मात्र के लिये प्रवाह प्रयुक्त है, वास्तव में केवली के मरण समुद्घात होती ही नहीं है ।

**(२२) उद्वर्तन-** वह जीव मरकर कहाँ कहाँ उत्पन्न होता है ?

**(२३) गति आगति-** ४ गति में से वह जीव कितनी गति में से आ सकता है और कितनी गति में जा सकता है ।

**प्रश्न-६ : पृथ्वीकाय स ब धी २३ द्वारों का परिचय-परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** प्रस्तुत प्रतिपत्ति में पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर दो भेद करके दोनों का २३ द्वार से परिज्ञान कराया गया है ।

**सूक्ष्म पृथ्वीकाय का २३ द्वार से परिज्ञान :- स्वरूप-** सूक्ष्म पृथ्वी आदि ५ स्थावर लोक के समस्त आकाशप्रदेशों पर रहे हुए हक्त और वे एक ही प्रकार के होते हक्त ।

**(१) शरीर-** तीन है-औदारिक, तैजस, कार्मण ।

**(२) अवगाहना–** जघन्य-उत्कृष्ट अ गुल के(आधा इन्च के) अस ख्यातवें भाग की होती है जिसमें जघन्य से उत्कृष्ट अस ख्यगुणी होती है ।

**(३) स घयण–** एक अ तिम छट्ठा सेवार्त स हनन होता है ।

**(४) स स्थान–** एक अ तिम छट्ठा हु ड़क स स्थान होता है। उसमें भी मसूरदाल का जैसा चपटा आधा गोलाकार होता है। यहाँ मूलपाठ में आधा मसूर को च द्रमसूर कहा गया है अर्थात् च द्र शब्द आधे के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

**(५) कषाय–** सूक्ष्म पृथ्वीकाय में क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषाय सूक्ष्म रूप में एव अस्तित्त्व रूप मे होते हक्त । इसे तर्क से छद्मस्थों को समझना अशक्य है। यह केवलज्ञानी का विषय है। हमारे लिये यह मात्र श्रद्धागम्य है। जिनको मिथ्यात्व मोह कर्म का उपशम हो उन्हें सहज श्रद्धा-ज्ञानी के वचन से हो जाती है और जिनके मिथ्यात्व मोह के उदय का जोर हो तो वे आत्माएँ ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों में श का-कुश काओं से ग्रसित होते रहते हक्त ।

**(६) स ज्ञा–** आहारस ज्ञा, भयस ज्ञा, मैथुनस ज्ञा और परिग्रहस ज्ञा ये चारों स ज्ञा भी सूक्ष्म पृथ्वीकाय में होती है। जो उपरोक्त कषाय में कहे अनुसार ज्ञानीगम्य और श्रद्धागम्य है। तर्कगम्य नहीं है ।

**(७) लेश्या–** सूक्ष्म पृथ्वीकाय में कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्या है। पृथ्वीकाय आदि ४ स्थावरों का शरीर माप जघन्य- उत्कृष्ट अ गुल के अस ख्यातवें भाग अर्थात् चक्षुअग्राह्य होता है। जो एक जीव आँखों से दिख भी नहीं सके तो उसके स ब धी लेश्या कषाय आदि कितने ही तत्त्व आगम से श्रद्धा करने योग्य है ।

**(८) इन्द्रिय–** सूक्ष्म पृथ्वीकाय के एक स्पर्शेन्द्रिय है। अन्य ४ इन्द्रियें नहीं है ।

**(९) समुद्घात–** वेदनीय, कषाय, मारणा तिक ये तीन समुद्घात सूक्ष्म पृथ्वीकाय में भी कही गई है ।

**(१०) सन्नी–** मन का साधन नहीं होने से ये असन्नि है ।

**(११) वेद–** इनके एक नपु सक वेद ही होता है। स्त्री पुरुषत्व को ये





प्राप्त नहीं होने से मोहकर्म के उदय से मात्र ओघ स ज्ञा रूप सूक्ष्म विकारों के अस्तित्व को नपु सक वेद गिना गया है। अर्थात् जहाँ भी स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता वहाँ मात्र नपु सक वेद ही ओघ स ज्ञा रूप या स्थूल-सूक्ष्म रूप में होता है। त्रस जीवों में नपु सक वेद वाले शरीर की अपेक्षा दो प्रकार के होते है- स्त्रीनपु सक और पुरुषनपु सक। स्त्री नपु सको की शरीर स रचना कुछ स्त्री शरीर से मिलती है और पुरुष नपु सकों की शरीर स रचना कुछ पुरुष शरीर से मिलती है।

**(१२) पर्याप्ति–** पर्याप्ति ६ में से सूक्ष्म पृथ्वीकाय में ४ होती है- आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोश्वास पर्याप्ति ।

**(१३) दृष्टि–** तीन में से एक मिथ्या दृष्टि होती है।

**(१४) दर्शन–** चार दर्शन में से एक अचक्षुदर्शन होता है।

**(१५) ज्ञानाज्ञान–** दो अज्ञान होते है-मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

**(१६) योग–** एक काया का योग होता है मन, वचन योग नहीं होता ।

**(१७) उपयोग–** साकार, अनाकार दोनों उपयोग होते हक्त ।

**(१८) आहार–** लोक मध्यगत सूक्ष्म पृथ्वीकाय छ दिशाओं से आहार ग्रहण करता है एव सूत्रगत २८८ प्रश्न विकल्पों के उत्तर भी यथायोग्य समझ लेना। लोका त में रहे हुए सूक्ष्म पृथ्वीकाय जीव ३, ४ या ५ दिशा का आहार ग्रहण करते हैं तब शेष दिशाओं में अलोक होता है वहाँ आहार पुद्गल नहीं होने से वे दिशाएँ कम कही गई है।

**(१९) उपपात=उत्पत्ति–** ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, सन्नी असन्नि पाँचों तिर्यंच एव सन्नी असन्नि मनुष्य से आकर जीव सूक्ष्म पृथ्वी में उत्पन्न होता है। युगलिक और अस ख्यात वर्षायुष्क तिर्यंच, मनुष्य, सूक्ष्म पृथ्वीकाय में नहीं आते हैं ।

**(२०) स्थिति–** जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट भी अ तर्मुहूर्त की होती है।

**(२१) मरण–** दोनों प्रकार के समवहत असमवहत मरण से मरते हक्त।

**(२२) उद्वर्तन–** सूक्ष्म पृथ्वीकाय मरकर आगत वाले सभी स्थानों में जाता है ।

**(२३) गति आगति**– सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव दो गति से आते हक्त और दो गति में जाते हक्त नरक देवगति में नहीं जाते हक्त ।

**बादर पृथ्वीकाय का २३ द्वार से परिज्ञान :-**

**स्वरूप :-** इसके मुख्य दो प्रकार है- (१) कोमल पृथ्वी (२) कठोर पृथ्वी। **कोमलपृथ्वी के** ७ प्रकार है- (१-५) पाँच र गों की (६) पाँडु मिट्टी(मेट, जो मुँह आदि पर लगाई जाती है) (७) पणगमिट्टी(पानी सूखने पर भूमि के उपर जमने वाली पपड़ी)। **कठोर पृथ्वी के** प्रस्तुत में तथा प्रज्ञापना और उत्तराध्ययन सूत्र में अनेक (३६) भेद चार गाथा द्वारा कहे है, जो गिनती करने पर ४० प्रकार हो जाते हक्त। फिर भी वर्ण आदि की अपेक्षा हजारों भेद होना कहा है। एव पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-बादर दोनों पृथ्वी के दो-दो प्रक्कार हक्त।

पर्याप्ता से अपर्याप्ता अस ख्यगुणेहोतेहक्त। पर्याप्त नामकर्म वाले के निश्रा में ही अपर्याप्त नाम कर्मवाले जन्मतेहक्त। अर्थात् अपर्याप्त जीव पर्याप्त जीव बिना नहीं रहते किंतु पर्याप्त जीव अपर्याप्त जीवों बिना हो सक्तेहक्त। इसलिये औषतन एक पर्याप्ता के पीछे अस ख्य अपर्याप्त होते है। इसे ही आगम भाषा में- **जत्थ एगो तत्थ णियमा अस खेज्जा।** इस वाक्य से यह नहीं समझ लेना कि एक पर्याप्ता के साथ अस ख्य अपर्याप्ता होवे ही। क्यों कि कभी कोई पर्याप्ता, अस ख्य अपर्याप्ता के बिना भी होता है, रहता है। इनके तेवीस द्वार इस प्रकार है-

**(१)** २३ ही द्वार स ब धी कथन सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पूर्वोक्त कथन के समान है। कुछ विशेषताएँ इस प्रकार है- **लेश्या-४, उपपात**-देवो से भी आवे। भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी और दो देवलोक से आकर जीव बादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होते हक्त। **स्थिति**-उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की। **गति-आगति**-तीन गति से आवे, दो गति में जावे। **आहार**-नियमा ६ दिशा का, क्यों कि बादरपृथ्वी लोक के किनारे नहीं है। इनके सिवाय सभी द्वारों का परिज्ञान पूर्ववत्(सूक्ष्म पृथ्वी के समान) समझना ।

**प्रश्न-७ : अप्काय और वनस्पतिकाय स ब धी २३ द्वारों का परिचय किस प्रकार है ?**





**उत्तर- अप्काय** के २३ द्वार पृथ्वीकाय के समान है, कुछ विशेषता बादर अप्काय में इस प्रकार है- **स स्थान-** हु ड़क स स्थान में भी पानी के परपोटे के आकार वाला शरीर इन अप्काय जीवों का होता है। **स्थिति**- बादर में उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की ।

**वनस्पतिकाय** के २३ द्वार भी सूक्ष्म-बादर दोनों पृथ्वीकाय के समान है। बादर वनस्पति के दो भेद है- साधारण और प्रत्येक। साधारण वनस्पति सूक्ष्म के समान है और प्रत्येक वनस्पति में विशेषता इस प्रकार है- **स स्थान**-अनिथ थ = अनियत। **अवगाहना**-उत्कृष्ट १००० योजन। **स्थिति**-उत्कृष्ट १०००० वर्ष ।

**प्रश्न-८ : तेउ-वायु दो त्रस जीवों के २३ द्वार किस प्रकार है ?**

**उत्तर**- त्रस नामकर्म का उदय इन जीवों के नहीं है किंतु स्थावर नामकर्म वाले होने से ये दोनों स्थावर जीव है। तथापि यहाँ गति त्रस होने की अपेक्षा इन्हें त्रस कहा गया है। अन्य आगमों में इन्हें स्थावर भी कहा गया है।

**तेउकाय(अग्नि जीवों) स ब धी २३ द्वार :-** सूक्ष्म-बादर पृथ्वी के २३ द्वारों के समान है। विशेषताएँ इस प्रकार है- (१) **स स्थान**-सूई समूह के समान। (२) **लेश्या**-३। (३) **उपपात(उत्पत्ति)**-१० द ड़क में से आवे। (४) **उवट्टणा**-९ द ड़क में जावे, मनुष्य में नहीं जावे। (५) **स्थिति**- उत्कृष्ट तीन दिन(अहोरात्रि) की। (६) **गतागत**-दो गति से आवे, एक गति में जावे, तिर्यंच में ।

**वायुकाय स ब धी २३ द्वार :-** तेउकाय के समान जानना । विशेषता इस प्रकार है- **शरीर**-४, **अवगाहना**-वैक्रिय शरीर की भी जघन्य उत्कृष्ट अ गुल के अस ख्यातवें भाग। **समुद्घात**-४, **स्थिति**-उत्कृष्ट ३००० वर्ष की। **आहार**-बादर वायुकाय लोका त में होने से व्याघात आसरी ३,४,५ दिशा का आहार होता है। लोक मध्य वालों की अपेक्षा ६ दिशा का आहार निर्व्याघात का समझना ।

**प्रश्न-९ : उदार त्रस जीवों में तीन विकलेन्द्रियों का २३ द्वारों से वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर**- त्रस नामकर्म वाले जीवों को यहाँ **उराला तसा पाणा** कहा

गया है। उसमें बेइन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक और चारों गति के प चेन्द्रिय सभी इस उदार त्रस प्राणी शब्द में समाविष्ट हक्त ।

**बेइन्द्रिय जीवों का २३ द्वारों से परिज्ञान :-**

(१) **शरीर**-तीन।
(२) **अवगाहना**-उत्कृष्ट १२ योजन
(३) **स घयण**-सेवार्त।
(४) **स स्थान**-हु ड़क।
(५) **कषाय**-चार।
(६) **स ज्ञा**-चार।
(७) **लेश्या**-तीन।
(८) **इन्द्रिय**-दो।
(९) **समुद्घात**-तीन
(१०) **सन्नी**-असन्नि है।
(११) **वेद**-एक नपु सक वेद।
(१२) **पर्याप्ति**-पाँच। भाषापर्याप्ति तक । मन पर्याप्ति नहीं है ।
(१३) **दृष्टि**-दो है। अपर्याप्तावस्था की अपेक्षा।
(१४) **दर्शन**-एक। अचक्षुदर्शन।
(१५) **ज्ञानाज्ञान**-दो ज्ञान, दो अज्ञान।
(१६) **योग**-दो। मन नहीं । वचन, काया है।
(१७) **उपयोग**-दोनों।
(१८) **आहार**-त्रसनाल में ही होने से नियमा ६ दिशा का।
(१९) **उपपात**-दस द ड़क में से आवे किंतु युगलिक में से नहीं आवे।
(२०) **स्थिति**-उत्कृष्ट १२ वर्ष।
(२१) **मरण**-दोनों प्रकार से मरे।
(२२) **उद्वर्तना**-निकलकर-मरकर १० द ड़क में जावे।
(२३) **गति-आगति**-दो गति से आवे, दो गति में जावे।





**तेइन्द्रिय-चौरेन्द्रिय जीवों का २३ द्वारों से परिज्ञान :-**

प्राय: बेइन्द्रिय के समान है, विशेषताएँ इस प्रकार है- **दर्शन**-तेइन्द्रिय में एक, चौरेन्द्रिय में दो=चक्षु, अचक्षु। **स्थिति**- तेइन्द्रिय में ४९ दिन, चौरेन्द्रिय में ६ महिना उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है। **अवगाहना**-तेइन्द्रिय में उत्कृष्ट तीन कोस और चौरेन्द्रिय में चार कोस शरीर की ल बाई हो सकती है। पानी में होने वाले जीवों की अपेक्षा तीन-चार कोश स भव है।

**प्रश्न-१० : प चेन्द्रिय जीवों स ब धी २३ द्वार का परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर**- नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव इस क्रम से यहाँ पर प चेन्द्रिय स ब धी २३ द्वारों का कथन किया गया है।

**नारकी जीवों स ब धी २३ बोलों का परिज्ञान :-**

**(१) शरीर**- तीन। वैक्रिय, तैजस, कार्मण।

**(२) अवगाहना**-छोटा से छोटा नैरयिक प्रथम नरक में पोने आठ धनुष ६ अ गुल अर्थात् सवा इकत्तीस फुट का होता है उत्कृष्ट सातवीं नरक में ५०० धनुष का अर्थात् २००० फुट का होता है। जन्म समय के अ तर्मुहूर्त बीतने पर और पर्याप्ता हो जाने पर नारकी जीवों की यह अवगाहना बन जाती है जो जीवनभर उतनी ही रहती है। पहली नरक से दूसरी नरक में दुगुनी यों सातवीं नरक तक दुगुनी दुगुनी होती है। उत्तर वैक्रिय करने पर प्रत्येक नारकी जीव अपनी मूल अवगाहना से दुगुनी बना सकता है उससे अधिक नहीं बना सकता।

**(३) स घयण**-अशुभ पुद्गलों का परिणमन होता है, उनके हड्डियाँ नहीं होती है।

**(४) स स्थान**- हुड़क। बेड़ोल, बीभत्स-भयावना शरीर वाले होते है।

**(५) कषाय**- चारों।

**(६) स ज्ञा**-चारों।

**(७) लेश्या**-कुल तीन लेश्या सातों नरक में होती है। पहली से तीसरी तक कापोत लेश्या, तीसरी से पाँचवीं तक नील लेश्या और पाँचवीं से

सातवीं तक कृष्ण लेश्या। यों तीसरी और पाँचवीं नरक में दो दो लेश्या है और शेष पाँचों नरक में एक एक लेश्या है। जहाँ दो लेश्या है वहाँ कुछ नैरयिक एक लेश्या वाले और कुछ दूसरी लेश्या वाले होते हक्त। अर्थात् प्रत्येक नारकी जीव में जीवनभर एक ही(द्रव्य)लेश्या होती है। भावलेश्या की अपेक्षा सभी नारकी जीवों में छहों लेश्या के परिणाम हो सकते हक्त ।

**(८) इन्द्रिय**- पाँचों। श्रोतेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घाणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय।

**(९) समुद्घात**-पाँच। वेदनीय, कषाय, मारणा तिक और वैक्रिय। ये चार समुद्घात हो सकती है।

**(१०) सन्नी**- सभी नारकी जीव सन्नी होते हक्त। प्रथम नरक में असन्नि तिर्यंच उत्पन्न होते हक्त वे पर्याप्त न बने तब तक असन्नि कहे गये हक्त। अतः प्रथम नरक में दोनों, शेष नरक में एक मात्र सन्नी होते हक्त ।

**(११) वेद**-एक **नपु सक** वेद ही होता है। स्त्री, पुरुष नहीं होते ।

**(१२) पर्याप्ति**-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास, भाषा और मन ये छहों पर्याप्तियाँ नारकी जीवों को परिपूर्ण होती है। शास्त्र में भाषा-मन पर्याप्ति को स युक्त मानकर स ख्या दृष्टि से ५ भी कही गई है। जन्म समय में ६ पर्याप्तियाँ एक साथ प्रार भ होकर चार पर्याप्तियाँ अलग-अलग समय में पूर्ण होती है। किंतु भाषा-मन पर्याप्ति की पूर्णता एक साथ होने से सर्व पर्याप्तियाँ पाँच बार में पूर्ण होने से पाँच भी कही जाती है। वहाँ भाषा-मन का स युक्त उच्चारण किया जाता है, यथा- **भासमण पज्जत्ति ।** अर्थात् पूर्णता और उच्चारण को लक्ष्य में रखकर प्रस्तुत में भी नारकी देवों के पाँच-पाँच पर्याप्तियाँ कही गई है ।

**(१३) दृष्टि**-तीनों। सम्यग्, मिथ्या और मिश्रदृष्टि। सातों नरक में तीनों दृष्टि होती है और तीनों का परावर्तन भी हो सकता है अर्थात् एक ही नारकी जीव कभी मिथ्यादृष्टि, कभी सम्यग् दृष्टि और कभी मिश्रदृष्टि भी बन सकता है। किसी में जीवनभर एक दृष्टि भी रह सकती है।

**(१४) दर्शन**- तीन। चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शन। सभी नारकी





जीवों को ये तीन दर्शन नियमा होते हक्त ।

**(१५) ज्ञानाज्ञान**-तीन ज्ञान, तीन अज्ञान। मति, श्रुत, अवधि-विभ ग। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि जीवों को मात्र ३ अज्ञान होते हक्त। सम्यग्दृष्टि नारकी जीवों को तीन ज्ञान होते हक्त। असन्नि तिर्यंच जो प्रथम नरक में उत्पन्न होते हक्त उन्हें अपर्याप्त अवस्था तक दो अज्ञान होते हक्त, बाद में तीन अज्ञान हो जाते हक्त ।

**(१६) योग**- तीनों। मन योग, वचन योग, काय योग।

**(१७) उपयोग**- दोनों। साकार और अनाकारोपयोग ।

**(१८) आहार**- ६ दिशाओं से और २८८ प्रकार के प्रश्नोत्तर युक्त।

**(१९) उपपात-(उत्पत्ति)-** दो द ड़क से आवे अर्थात् प्रथम नरक में सन्नी, असन्नि तिर्यंच से एव सन्नी मनुष्य से आवे। दूसरी से सातवीं नरक तक सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य से आवे। तिर्यंच में भुजपरिसर्प दो नरक तक, खेचर तीन नरक तक, थलचर चार नरक तक, उरपरिसर्प पाँच नरक तक, जलचर सातवीं नरक तक। मनुष्याणी तिर्यंचाणी छट्ठी नरक तक उत्पन्न होवे।

**(२०) स्थिति**- प्रथम नरक में जघन्य १००००वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम की। आगे क्रमशः उत्कृष्ट-३,७,१०,१७,२२ और ३३ सागरोपम की है। पूर्व नरक की उत्कृष्ट स्थिति आगे के नरक की जघन्य समझना। यथा- प्रथम नरक की उत्कृष्ट १ सागर की है तो वही दूसरी नरक की जघन्य एक सागर है। दूसरी नरक की उत्कृष्ट तीन सागर की है तो वही तीसरी नरक की जघन्य स्थिति है।

**(२१) मरण**- समवहत-असमवहत दोनों मरण से मरते हक्त ।

**(२२) उद्वर्तन**- उत्पत्ति के समान उद्वर्तना(गत)कहनी चाहिये। प्रज्ञापना सूत्र में भी आगति के समान ही गत कही है। अतः दो नरक से निकल कर भुजपरिसर्प में, तीन नरक वाले खेचर, में चार नरक वाले स्थलचर में, पाँच नरकवाले उरपरिसर्प में, छ नरक से निकलकर मनुष्याणी तिर्यंचाणी में और सात नरक से निकल कर जलचर में। विशेष यह कि सातवीं नरक में मनुष्य आते है पर तु सातवीं नरक वाले मनुष्य

में जाते नहीं है, वे एक मात्र तिर्यंच जलचर में जाते हक्त। वहाँ भी जलचर स्त्री में नहीं जाते अर्थात् जलचर पुरुष एव नपु सक बन सकते हक्तप्रथम नरक में असन्नि आते है पर तु इस नरक वाले असन्नि में जाते नहीं है। अर्थात् आगत जैसी गत कहने में दो विशेषता स्वतः सिद्ध होती है- (१) सातवी नरक वाले मनुष्य में नहीं जाते और (२) प्रथम नरक वाले असन्नि तिर्यंच में नहीं जाते।

**(२३) गति-** ६ नरक तक २ गति से आवे और दो गति में जावे। सातवीं नरक में दो गति से आवे और एक गति में जावे।

**तिर्यंच प चेन्द्रिय-** इसके दो भेद है सन्नी एव असन्नि। दोनों के पुनः पाँच-पाँच भेद है-जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प।

**पाँचों असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय का २३ द्वारों से परिज्ञान :-**

**(१) शरीर-**तीन।

**(२) अवगाहना-** उत्कृष्ट-जलचर की १००० योजन। स्थलचर की अनेक कोश, खेचर की अनेक धनुष, उरपरिसर्प की अनेक योजन की, भुजपरिसर्प की अनेक धनुष की। वैक्रिय नहीं करे।

**(३) स घयण-** एक सेवार्त स हनन।

**(४) स स्थान-**एक हुँड़क स स्थान ही होता है।

**(५) कषाय-**चारों। क्रोध, मान, माया और लोभ।

**(६) स ज्ञा-** चारों। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह स ज्ञा।

**(७) लेश्या-** तीन। कृष्ण, नील, कापोत।

**(८) इन्द्रिय-** पाँचों।

**(९) समुद्घात-**तीन। क्रमशः। वेदनीय, कषाय, मारणा तिक।

**(१०) सन्नी-**असन्नि है।

**(११) वेद-** एक। नपु सक।

**(१२) पर्याप्ति-** पाँच पर्याप्ति होती है। मनपर्याप्ति नहीं होती।

**(१३) दृष्टि-** दो, अपर्याप्त अवस्था की अपेक्षा। मिश्र दृष्टि नहीं होती।





**(१४) दर्शन-** दो। चक्षु, अचक्षु दर्शन।

**(१५) ज्ञानाज्ञान-** दो ज्ञान या दो अज्ञान।

**(१६) योग-** दो। वचन और काया।

**(१७) उपयोग-** दोनों।

**(१८) आहार-** नियमा ६ दिशाओं से। २८८ प्रश्नोत्तर युक्त।

**(१९) उपपात-** १० द ड़क से आवे। युगलिक से नहीं।

**(२०) स्थिति उत्कृष्ट-** जलचर-क्रोड़पूर्व, स्थलचर-८४ हजार वर्ष। खेचर-७२ हजार वर्ष, उरपरिसर्प-५३ हजार वर्ष, भुजपरिसर्प-४२ हजार वर्ष।

**(२१) मरण-** दोनों।

**(२२) उद्वर्तन-** २२ द ड़क में जावे। ज्योतिषी, वैमानिक में नहीं जावे। मनुष्य-तिर्यंच के युगलिकों में भी जावे। वहाँ उत्कृष्ट पल्योपम के अस ख्यातवें भाग तक की स्थिति प्राप्त कर सकते हक्त।

**(२३) गति-** दो गति से आवे, चार गति में जावें।

**पाँचों सन्नी तिर्यंच प चेन्द्रिय स ब धी २३ बोलों का परिज्ञान :-**

**(१) शरीर-** चार। औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण।

**(२) अवगाहना-** उत्कृष्ट-जलचर की १००० योजन, स्थलचर की-६ कोश की, खेचर की अनेक धनुष की, उरपरिसर्प की- १००० योजन की, भुजपरिसर्प की-अनेक कोश की। उत्तर वैक्रिय करे तो जघन्य अ गुल के स ख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अनेक सो धनुष की, पाँचों को।

**(३) स घयण-**छहों। वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त। एक जीव में कोई भी एक होता है।

**(४) स स्थान-** छहों। एक जीव में कोई भी एक होता है।

**(५) कषाय-** चारों। क्रोधादि।

**(६) स ज्ञा-** चारों। आहार, भय, मैथुन और परिग्रह।

**(७) लेश्या-** छहों। कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या।

**(८) इन्द्रिय-** पाँचों। श्रोतेन्द्रिय, चक्षु, घ्राण, रसना, स्पर्शेन्द्रिय।

**(९) समुद्घात–** पाँच। क्रमशः तैजस समुद्घात तक। आहारक और केवली ये दो समुद्घात नहीं ।

**(१०) सन्नी–** सन्नी है।

**(११) वेद–** तीनों है।

**(१२) पर्याप्ति–** छहों पर्याप्तियाँ होती है।

**(१३) दृष्टि–** तीनों।

**(१४) दर्शन–** तीन। केवलदर्शन नहीं होता।

**(१५) ज्ञानाज्ञान–** तीन ज्ञान, तीन अज्ञान।

**(१६) योग–** तीनों।

**(१७) उपयोग–** दोनों।

**(१८) आहार–** छ दिशाओं से एव २८८ प्रश्नोत्तर युक्त ।

**(१९) उत्पत्ति–** २४ द ड़क से आवे । आठवें देवलोक तक से आवे। युगलिकों में से नहीं आवे।

**(२०) स्थिति उत्कृष्ट–** जलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प इन तीनों की क्रोड़पूर्व। स्थलचर की ३ पल्योपम, खेचर-पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग ।

**(२१) मरण–** दोनों प्रकार का।

**(२२) उद्वर्तन–** उत्पत्ति के समान। पर तु युगलिकों में भी जावे।

**(२३) गति–** चार गति से आवे, चार गति में जावे।

**असन्नि मनुष्य स ब धी २३ बोलों का परिज्ञान :-**

**(१) शरीर–** तीन। औदारिक, तैजस, कार्मण।

**(२) अवगाहना–** जघन्य उत्कृष्ट दोनों ही अ गुल के अस ख्यातवें भाग।

**(३) स घयण–**एक सेवार्त।

**(४) स स्थान–** एक हुंड़क।

**(५) कषाय–** चारों।

**(६) स ज्ञा–** चारों।





**(७) लेश्या–** तीन।

**(८) इन्द्रिय–** पाँचों ।

**(९) समुद्घात–** तीन। वेदनीय, कषाय और मारणा तिक।

**(१०) सन्नी–** असन्नी है।

**(११) वेद–** एक नपु सक।

**(१२) पर्याप्ति–** साड़े तीन अर्थात् चौथी पर्याप्ति अधूरी।

**(१३) दृष्टि–** एक। मिथ्यादृष्टि।

**(१४) दर्शन–** एक। अचक्षु।

**(१५) ज्ञानाज्ञान–** दो अज्ञान।

**(१६) योग–** एक काया का। **(१७) उपयोग–** दोनों।

**(१८) आहार–** नियमा छ दिशाओं से तथा २८८ प्रश्नोत्तर युक्त।

**(१९) उपपात–** ८ द ड़क से। तेउ-वायु तथा युगलिक से नहीं आवे।

**(२०) स्थिति–** जघन्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त।

**(२१) मरण–** दोनों।

**(२२) उद्वर्तन–** दस द ड़क में। युगलिक को छोड़कर।

**(२३) गति–** दो गति से आवे, दो गति में जावे।

**सन्नी मनुष्य स ब धी २३ द्वारों का परिज्ञान :-**

**(१) शरीर–** पाँचों। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण।

**(२) अवगाहना–** कर्मभूमि में उत्कृष्ट ५०० धनुष। युगलिकों में जघन्य ५०० धनुष साधिक से लेकर उत्कृष्ट ३ कोश तक होती है। भरत-ऐरवत क्षेत्र में ६ आरों के प्रार भ में और अ त में अलग-अलग होती है। देवकुरु आदि अकर्मभूमि के ३० क्षेत्रों में भी अवगाहना उत्कृष्ट अलग-अलग होती है। और सदाकाल समान होती ह। पाँच महाविदेह क्षेत्र में सदा एक समान काल प्रवर्तन होता है अतः अवगाहना उत्कृष्ट ५०० धनुष की होती है। एक ही काल में युगलियों में उत्कृष्ट अवगाहना से जघन्य अवगाहना किंचित् न्यून होती है अर्थात् सर्व प्रकार के युगलिक मनुष्य से युगलिक मनुष्याणी की अवगाहना चार अ गुल करीब

न्यून होती है। **वैक्रिय शरीर**–कर्मभूमिज मनुष्यो में जघन्य अ गुल का स ख्यातवा भाग, उत्कृष्ट १ लाख योजन। अकर्मभूमिज मनुष्य वैक्रिय नहीं करते हक्त।

**(३) स घयण**–छहों। एक जीव में कोई भी एक स घयण होता है।

**(४) स स्थान**– छहों। एक जीव में कोई भी एक होता है।

**(५) कषाय**– चारों। तथा अकषायी भी श्रमण होते हक्त।

**(६) स ज्ञा**– चारों। तथा नो स ज्ञोपयुक्त भी श्रमण होते हक्त।

**(७) लेश्या**– छहों। तथा अलेशी भी चौदहवें गुणस्थान में होते हक्त।

**(८) इन्द्रिय**– पाँचों। केवली मनुष्य अनिन्द्रिय भी होते हक्त।

**(९) समुद्घात**– सातों। वेदनीय, कषाय, मारणा तिक, वैक्रिय, तैजस, आहारक और केवली समुद्घात।

**(१०) सन्नी**– सन्नी है। केवली मनुष्य नोसन्नी नोअसन्नि है।

**(११) वेद**– तीनों है। अवेदी भी होते हक्त।

**(१२) पर्याप्ति**– छहों।

**(१३) दृष्टि**– तीनों।

**(१४) दर्शन**– चारों। चक्षु, अचक्षु, अवधि, और केवलदर्शन।

**(१५) ज्ञानाज्ञान**– ५ ज्ञान, ३ अज्ञान होते हक्त।

**(१६) योग**– तीनों।

**(१७) उपयोग**– दोनों।

**(१८) आहार**– नियमा छ दिशाओं से एव २८८ प्रश्नोत्तर युक्त।

**(१९) उपपात**– तेउ-वायु सिवाय २२ द ड़क से आवे। युगलिक नहीं आवे। सातवीं नरक से नहीं आवे।

**(२०) स्थिति**– जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३ पल्योपम। पन्द्रह कर्मभूमि मनुष्य में उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की उम्र होती है। महाविदेह क्षेत्र में सदा एक जैसा काल होने से स्थिति एक सरीखी क्रोड़पूर्व की उत्कृष्ट होती है। भरत ऐरवत में छ आरों के प्रार भ में एव अ त में उम्र अलग-अलग हीनाधिक होती है।





**(२१) मरण**– दोनों।

**(२२) उद्वर्तन**– २४ द ड़क में जावे। (युगलिक में भी जावे)

**(२३) गति**– चारों गति से आवे-जावे।

**युगलिक मनुष्यों का २३ द्वार से परिज्ञान :-**

**(१) शरीर**– ३। औदारिक, तैजस, कार्मण।

**(२) अवगाहना**– जघन्य ५०० धनुष साधिक, उत्कृष्ट ३ कोस। देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्र में उत्कृष्ट-३कोस। हरिवास-रम्यगवास क्षेत्र में-२ कोश। हेमवय हेरण्यवय में-१ कोस। छप्पन अ तर द्वीपों में-८०० धनुष। उत्कृष्ट से जघन्य ४ अ गुल न्यून समझना अवसर्पिणी के प्रथम आरे के प्रार भ में ३ कोस, अ त में दो कोस। दूसरे आरे के प्रार भ में दो कोस अ त में एक कोस। तीसरे आरे के प्रार भ में एक कोश और अ त में ५०० धनुष की। चौथे आरे में अनेक धनुष। पाँचवें आरे में अनेक हाथ। छट्ठे आरे में एक हाथ की अवगाहना होती है। अवसर्पिणी काल के समान ही विपरीत क्रम से उत्सर्पिणी के ६ आरों की अवगाहना होती है जो क्रमशः उपयोग लगाकर समझ लेना।

**(३) स घयण**–१ वज्र ऋषभनाराच स हनन होता है।

**(४) स स्थान**– समचौरस-प्रमाणोपेत।

**(५) कषाय**– चारों। **(६) स ज्ञा**– चारों।

**(७) लेश्या**– चार। कृष्ण, नील, कापोत, तेजो लेश्या

**(८) इन्द्रिय**– पाँचों।

**(९) समुद्घात**– तीन।

**(१०) सन्नी**– सन्नी है।

**(११) वेद**– दो। युगलिक नपु सक नहीं होते हक्त।

**(१२) पर्याप्ति**– छहों।

**(१३) दृष्टि**– १ पल्योपम से ३ पल्योपम की स्थिति वालों में दो दृष्टि। पल्योपम से न्यून वालों में एक मिथ्यादृष्टि।

**(१४) दर्शन**– दो। चक्षु, अचक्षु।

**(१५) ज्ञानाज्ञान–** दो ज्ञान, दो अज्ञान । (पल्योपम से न्यून उम्रवालों में २ अज्ञान ही होते हक्त ।

**(१६) योग–** तीनों ।

**(१७) उपयोग–** दोनों ।

**(१८) आहार–** छ दिशाओं से एव २८८ प्रश्नोत्तर युक्त ।

**(१९) उपपात–** असन्नि-सन्नी तिर्यंच से और सन्नी मनुष्य से ।

**(२०) स्थिति–** देवकुरु उत्तरकुरु के युगलिक में उत्कृष्ट–३ पल्योपम। हरिवास-रम्यग्वास के युगलिक में दो पल्योपम । हेमवय-हेरण्यवय के युगलिक में एक पल्योपम। छप्पन अ तरद्वीपों में पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग। जघन्य इससे अ तर्मुहूर्त कम होती है। भरत ऐरवत के युगलिकों की जघन्य क्रोड़पूर्व साधिक, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। अलग-अलग आरों के अनुसार। उत्कृष्ट अवसर्पिणी के प्रथम आरे के प्रार भ में और जघन्य तीसरे आरे के अ त में प्रथम तीर्थंकर के जन्म समय के आसपास। उत्सर्पिणी काल के चौथे आरे के प्रार भ में २४ वें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद जघन्य उम्र के (क्रोड़पूर्व साधिक के) युगलिक होते है और उसके छट्ठे आरे के अ त में तीन पल्योपम के युगलिक होते हैं।

युगलिक जब भी जहाँ भी होते है उनकी जघन्य उम्र अ तर्मुहूर्त न्यून होती है और उत्कृष्ट जो कही गई है वह परिपूर्ण होती है। युगलिक जहाँ जब भी होते है उन सब की अवगाहना प्रायः समान होती है। युगलिक स्त्रियाँ ४ अ गुल न्यून हो सकती है ।

**(२१) मरण–** दोनों ।

**(२२) उद्वर्तन–** देवगति में। पल्योपम के आठवें भाग से कम उम्र वाले युगलिक भवनपति, व्य तर में ही जाते हक्त उससे अधिक और एक पल्योपम देशोन तक वाले भवनपति व्य तर एव ज्योतिषी में जाते है। परिपूर्ण एक पल्योपम वाले भवनपति से प्रथम देवलोक तक जाते हैं। एक पल्योपम साधिक से लेकर ३ पल्योपम तक वाले युगलिक भवनपति से दूसरे देवलोक तक सर्वत्र जाते हक्त ।

**(२३) गति–** दो गति से आते है और एक गति में जाते हक्त ।





**जिज्ञासा–३ कोस के मानव युगलिक का देखाव कैसा होता है ?**

**समाधान–** १००० मीटर की पगथली लम्बी, ४००० मीटर कमर के नीचे का शरीर। ३००० मीटर ऊपर का शरीर। २००० मीटर हाथ लम्बे। १००० मीटर मस्तक ग्रीवा का भाग। २५०० मीटर का सामान्य कदम। कम से कम ७००० मीटर की ल बी २००० मीटर चौड़ी जगह सोने के लिये चाहिये। यह उत्कृष्ट ३ कोश के शरीर वाले युगलिक मनुष्य का देखाव होता है। मनुष्यों के समान ही हाथी, घोड़ा आदि के देखाव उस उस अनुपात में समझ लेना चाहिए ।

**उपरोक्त मीटर निकालने की विधि–** अवगाहना का माप उत्सेधा गुल से होता है। आधा पाँचवाँ आरा बीतने पर जो मनुष्य होंगे उनकी अ गुल को उत्सेधा गुल कहा गया है। वर्तमान में अपना एक हाथ डेढ फुट का होता है। उत्सेधा गुल का हाथ एक फुट का होगा और उनका धनुष चार फुट का होगा। एक कोस=२००० धनुष। तो तीन कोस=६००० धनुष। इसके फुट–६०००×४=२४००० फुट=८००० गज=७१२० मीटर=३ कोस का युगलिया। प्रत्येक मनुष्य की पगथली अपनी ल बाई से सातवाँ भाग के करीब होती है। अतः स्थूल गणित से १००० मीटर की पगथली कही गई है ।

**तिर्यंच युगलिकों में २३ द्वारों का परिज्ञान :–**

स्थलचर और खेचर तिर्यंच ये दो प्रकार के युगलिक होते हक्त। जलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प युगलिक नहीं होते हक्त । **अवगाहना–** स्थलचर युगलिक की जघन्य अनेक धनुष उत्कृष्ट ६ कोस की। खेचर युगलिक की जघन्य भी अनेक धनुष, उत्कृष्ट भी अनेक धनुष की। **स्थिति–** स्थलचर की जघन्य एक करोड़ पूर्व साधिक, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। खेचर की जघन्य एक क्रोड़ पूर्व साधिक, उत्कृष्ट पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग। **शेष सभी द्वार** मनुष्य युगलिक के समान होते हक्त ।

**देवगति के चारों जाति के देवों का २३ द्वारों से परिज्ञान :–**

**(१) शरीर–** सभी देवों में ३ शरीर। वैक्रिय, तैजस, कार्मण ।

**(२) अवगाहना–** भवनपति से दूसरे देवलोक तक ७ हाथ की। तीसरे चौथे देवलोक में ६ हाथ। पाँचवें छट्ठे देवलोक में–५ हाथ की।

सातवें आठवें देवलोक में-४ हाथ की। ९ से १२ देवलोक में तीन हाथ की। नवग्रैवेयक में दो हाथ की। चार अणुत्तर विमान में एक हाथ की। सर्वार्थसिद्ध में देशोन हाथ की।

**(३) स घयण**-शुभ पुद्गल परिणमन होता है। हड्डी नहीं होने से स घयण नहीं।

**(४) स स्थान-** समचौरस। उत्तर वैक्रिय में सभी स स्थान होते हक्त।

**(५) कषाय-** चारों।

**(६) स ज्ञा-** चारों।

**(७) लेश्या-** छहों। भवनपति व्य तर में-४ ।ज्योतिषी में-१ तेजो। वैमानिक में-३, तेजो, पद्म, शुक्ल।

**(८) इन्द्रिय-** पाँचों।

**(९) समुद्घात-** पाँच। आहारक और केवली समुद्घात नहीं।

**(१०) सन्नी-** सन्नी है। भवनपति व्य तर में अल्पसमय असन्नि रहते ह्त। असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय के उपजने की अपेक्षा।

**(११) वेद-** दो। नपु सक नहीं।

**(१२) पर्याप्ति-** पाँच कथन पद्धति में। वास्तव में ६ होवे।

**(१३) दृष्टि-** तीनों। पाँच अनुत्तर विमान में एक सम्यग्दृष्टि।

**(१४) दर्शन-** तीन।

**(१५) ज्ञानाज्ञान-** ३ ज्ञान, ३ अज्ञान।

**(१६) योग-** तीनों।

**(१७) उपयोग-** दोनों।

**(१८) आहार-** नियमा छ दिशाओं से एव २८८ प्रश्नोत्तर युक्त।

**(१९) उपपात-** सन्नी-असन्नि तिर्यंच प चेन्द्रिय, सन्नी मनुष्य तथा दोनों युगलिकों से।

**(२०) स्थिति-** जघन्य १०००० वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

**(२१) मरण-** दोनों।





**(२२) उद्वर्तन-** सन्नी तिर्यंच मनुष्य तथा पृथ्वी, पानी, वनस्पति।

**(२३) गतागत-** दो गति से आवे दो गति में जावे।

**प्रश्न-११ : चार जाति के देवों की अलग-अलग स्थिति क्या है ?**

**उत्तर-** भवनपति व्य तर देवों की जघन्य १०००० वर्ष की स्थिति है, ज्योतिषी में जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग, पहले देवलोक में एक पल्योपम और दूसरे देवलोक में साधिक एक पल्योपम जघन्य स्थिति है। उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है-

दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों की १ सागरोपम, उत्तर दिशा के असुरकुमार देवों की साधिक एक सागरोपम, दक्षिण दिशा के असुर कुमार देवियों की ३॥ पल्योपम, उत्तरदिशा के असुरकुमार देवियों की ४॥ पल्योपम। दक्षिणदिशा के शेष(नवनिकाय देवों की) १॥ पल्योपम, इनकी देवियों की पौन पल्योपम । उत्तरदिशा के नवनिकाय देवों की देशोन दो पल्योपम, इनकी देवियों की देशोन १ पल्योपम। व्य तर देवों की १ पल्योपम, इनकी देवियों की आधा पल्योपम। ज्योतिषी में चन्द्र देवों की १ पल्योपम १ लाख वर्ष, इनकी देवियों की आधी। सूर्य देवों की १ पल्योपम १ हजार वर्ष, इनकी देवियों की आधा पल्योपम ५०० वर्ष। ग्रह देवों की उत्कृष्ट एक पल्योपम, इनकी देवियों की आधा पल्योपम। नक्षत्र देवों की आधा पल्योपम, इनकी देवियों की पाव पल्योपम। तारा देवों की उत्कृष्ट पाव पल्योपम, इनकी देवियों की साधिक पल्योपम का आठवा भाग। प्रथम देवलोक के देवों की उत्कृष्ट २ सागरोपम, इनकी अपरिग्रहिता देवियों की ५० पल्योपम, इनकी परिग्रहिता देवियों की ७ पल्योपम। दूसरे देवलोक के देवों की उत्कृष्ट साधिक २ सागरोपम, इनकी अपरिग्रहिता देवियों की उत्कृष्ट ५५ पल्योपम, इनकी परिग्रहिता देवियों की ९ पल्योपम ।

देवियाँ दूसरे देवलोक तक ही है, आगे के देवलोक में देवियाँ नहीं है। पूर्वदेवलोक की उत्कृष्ट स्थिति ही आगे के देवलोक की जघन्य स्थिति है । यथा-

**तीसरे** देवलोक में जघन्य दो सागरोपम, उत्कृष्ट ७ सागरोपम।

**चौथे** देवलोक में जघन्य साधिक दो सागरोपम, उत्कृष्ट साधिक ७ सागरोपम।**पाँचवें** देवलोक में जघन्य ७ सागरोपम, उत्कृष्ट १० सागरोपम। **छट्ठे** देवलोक में जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १४ सागरोपम।**सातवें** देवलोक में जघन्य १४ सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम। **आठवें** देवलोक में जघन्य १७ सागरोपम, उत्कृष्ट १८ सागरोपम। **नौवें** देवलोक में जघन्य १८ सागरोपम, उत्कृष्ट १९ सागरोपम। **दसवें** देवलोक में जघन्य १९ सागरोपम, उत्कृष्ट २० सागरोपम। **ग्यारहवें** देवलोक में जघन्य २० सागरोपम, उत्कृष्ट २१ सागरोपम। **बारहवें** देवलोक में जघन्य २१ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम।

**प्रथम** ग्रैवेयक में जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट २३ सागरोपम। **दूसरी** ग्रैवेयक में जघन्य २३ सागरोपम, उत्कृष्ट २४ सागरोपम। **तीसरी** ग्रैवेयक में जघन्य २४ सागरोपम, उत्कृष्ट २५ सागरोपम। **चौथी** ग्रैवेयक में जघन्य २५ सागरोपम, उत्कृष्ट २६ सागरोपम। **पाँचवी** ग्रैवेयक में जघन्य २६ सागरोपम, उत्कृष्ट २७ सागरोपम। **छट्ठी** ग्रैवेयक में जघन्य २७ सागरोपम, उत्कृष्ट २८ सागरोपम। **सातवीं** ग्रैवेयक में जघन्य २८ सागरोपम, उत्कृष्ट २९ सागरोपम। **आठवीं** ग्रैवेयक में जघन्य २९ सागरोपम, उत्कृष्ट ३० सागरोपम। **नौवीं** ग्रैवेयक में जघन्य ३० सागरोपम, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम।

चार अनुत्तर विमान में जघन्य ३१ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम। सर्वार्थसिद्ध देवों में अजघन्य अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

**प्रश्न-१२ : सिद्धों में २३ द्वार स ब ध ी परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर- शरीर-** नहीं। **अवगाहना**-अ तिम शरीर से दो तिहाई भाग की अर्थात् जघन्य एक हाथ आठ अ गुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अ गुल। **दृष्टि**-सम्यग्दृष्टि। **दर्शन**-केवलदर्शन। **ज्ञान**-केवलज्ञान। **उपयोग**-दोनों। **अनाहारक** होवे। **उपपात**-मनुष्य से। **स्थिति**- सादि अन त। शेष बोल नहीं होते है, जन्म-मरण और शरीर नहीं होने से।

**जिज्ञासा- सिद्धों की जघन्य अवगाहना किस तरह समझना ?**





**समाधान-** चौथे आरे के अ त में जन्मे मनुष्य ७ हाथ के सिद्ध हो सकते ह। उनकी पूरी अवगाहना सात हाथ की होती है तब ९ वर्ष के बालक की ३॥ हाथ की अवगाहना होती है। वह बालक वामन स स्थान वाला हो तो उसकी २ हाथ की अवगाहना होगी और उस अवगाहना में वह सिद्ध हो सकता है। उसकी २/३(दो तिहाई) करने पर एक हाथ आठ अ गुल सिद्धों की जघन्य अवगाहना होती है।

**सार-** चौथे आरे के अ त में जन्मा वामन स स्थान वाला ९ वर्ष की उम्र में सिद्ध होवे उसकी अपेक्षा सिद्धों की जघन्य अवगाहना समझना।

**प्रश्न-१३ : त्रस और स्थावर जीवों की स्थिति, कायस्थिति एव अ तर क्या है ?**

**उत्तर- त्रस की स्थिति-**जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

**कायस्थिति**-जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक २००० सागरोपम।

**अ तर**-जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पति काल।

**गतित्रस(तेउ-वायु)की स्थिति-** जघन्य, उत्कृष्ट दोनों अ तर्मुहूर्त।

**कायस्थिति-** उत्कृष्ट-पृथ्वीकाल(अस ख्य काल)

**अ तर**-उत्कृष्ट वनस्पति काल।

# प्रतिपत्ति-२ : त्रिविधा जीव

**कायस्थिति**-उत्कृष्ट वनस्पति काल। **अ तर**-उत्कृष्ट साधिक २००० सागरोपम।

**प्रश्न-१ : स सार की समस्त स्त्रियों का परिचय-परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** इस दूसरी प्रतिपत्ति में जीवों के तीन प्रकार में स्त्री, पुरुष और नपु सक रूप से विश्लेषण किया गया है, जिसमें सर्वप्रथम स्त्री स ब ध ी परिज्ञान निम्न प्रकार से कराया गया है-

**भेद-प्रभेद :-** गति की अपेक्षा स्त्रियों के तीन प्रकार है- तिर्यंचाणी,

मनुष्याणी और देवी। (१) तिर्यंचाणी के जलचर आदि ५ भेद एव सन्नी असन्नि वगैरह प्रभेद है। (२) मनुष्याणी के कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अ तरद्वीपज ये तीन मुख्य भेद है। फिर ५ भरत आदि कुल १०१ क्षेत्र स ब धी भेद कहे गयेहक्त। (३) देवी के भवनपति आदि चार मुख्य भेद है। फिर असुरकुमार देवी से लेकर दूसरे देवलोक की देवियों रुप अनेक भेदानुभेद हक्त।

**स्थिति :- (१) समुच्चय स्त्री**(तीनों प्रकार(गति)स लग्न) की जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ५५ पल्योपम, दूसरे देवलोक की अपेक्षा। [यहाँ ५५, ५०, ९, ७ यों चार विकल्प दिये जाते हक्त; यह एक खोटा भ्रमित प्रचलन लेखन में चल गया है। क्योंकि आगमकारों की सीधी सी पद्धति है जिसमें समस्त स्त्रियों में जो उत्कृष्ट स्थिति हो वह एक ही समुच्चय में कह दी जाती है। जैसे-समुच्चय स्थावर की उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष की, पृथ्वी की अपेक्षा कह दी गई है एव त्रस की उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर, नरक देव की अपेक्षा मात्र एक ही कह दी गई है। तो यहाँ पर समुच्चय स्त्री में देवी के चार विकल्पों को कहना वह प्रस ग स गत नहीं है। एक उत्कृष्ट ५५ पल्योपम कहना ही प्रास गिक शास्त्रीय पद्धति अनुसार है। देवी स्थिति के चार विकल्प यहाँ समुच्चय स्त्री में कभी अशुद्धि से एव मतिभ्रम से चल गयेहक्त। ऐसे तो कई दोष लेखन काल में छद्मस्थता से हुए होंगे यह मान लेने में ही आगम की प्रस ग स गत निरूपणता कायम रहती है]

**(२) तिर्यंच** स्त्री की जघन्य स्थिति अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम। जलचर आदि के भेद से तिर्यंचाणी की स्थिति प्रथम प्रतिपत्ति के समान समझ लेना।

**(३) सामान्य** मनुष्याणी की स्थिति जघन्य अ तुर्मुहूर्त उत्कृष्ट ३ पल्योपम। **धर्माचरणी स्त्री(साध्वी)** की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोड़पूर्व। **१५ कर्मभूमि में** भी इस तरह दोनों अपेक्षा से(सामान्य और धर्माचरणी)समझना।

**अकर्मभूमि और अ तर्द्वीप में** जन्म और स हरण ये दो अपेक्षा से कथन होता है। **जन्म की अपेक्षा** सर्वत्र एक उत्कृष्ट स्थिति का कथन है-तीन पल्योपम, दो, एक एव पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग। इस





उत्कृष्ट स्थिति से जघन्य स्थिति किंचित् (अ तर्मुहूर्त) न्यून होती है। **स हरण की अपेक्षा** जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोड़पूर्व की स्थिति होती है। अर्थात् किसी का स हरण करके युगलिक क्षेत्र में रखा हो और वह अ तर्मुहूर्त में मर जाय या वापिस ले जाया जाय। उत्कृष्ट देशोन क्रोड़पूर्व (कुछ वर्ष कम) तक वह वहाँ जीवित रह सकता है। **(४) भवनपति** आदि देवी की स्थिति अपने अपने स्थान की स्थिति के अनुसार होती है। जो प्रतिपत्ति-१, प्रश्न-११ में कही गई है ।

**कायस्थिति :**-स्थिति पूरे एक भव की होती है और कायस्थिति उस अवस्था(भावों)की एक या अनेक भव की होती है। यहाँ स्त्री की कायस्थिति इस प्रकार है- **(१) समुच्चय स्त्री** की कायस्थिति जघन्य एक समय की होती है। एक ही भव में स्त्री भावों के परिवर्तितत होने की अपेक्षा यह कथन है। उत्कृष्ट ११० पल्योपम, अनेक क्रोड़पूर्व अधिक। मध्यम रूप में १०० पल्योपम, १८ एव १४ पल्योपम, साधिक अनेक क्रोड़पूर्व। स्त्री के लगातार आठ भव किये जा सकते हक्त। जिसमें २ देवी के उत्कृट स्थिति के भव एव ६ मनुष्य तिर्यंच के भव। ६ भव में भी ५ भव करोड़पूर्व की उम्र वालों के और छट्ठा भव ३ पल्योपम वाली युगलिणी का। यों ११० पल्योपम साधिक में क्रोड़पूर्व और ३ पल्योपम+११०पल्योपम। आठवाँ भव युगलिणी का एव नौवाँ भव स्त्रीत्व छोड़कर देवपने का। इसलिये कुल आठ भव का ११० पल्योपम और अनेक करोड़पूर्व(५+३ पल्योपम) ११० के ऊपर वाले काल को मूलपाठ में नगण्य कर के ११० पल्योपम ही सीधा कह दिया गया है। तथापि ११० में दो देवी के भव लगातार नहीं हो सकते। बीच में मनुष्याणी तिर्यंचाणी का भव होना जरूरी है। अतः मूलपाठ के शब्दों को अपेक्षा से और आगम आशय से समझना होता है। यहाँ भी मूलपाठ में उत्कृष्ट कायस्थिति के ५ विकल्प कहे हक्त। उनकी भी वास्तव में आवश्यकता नहीं है। उन सभी स्थितियों का मध्यम कायस्थिति में समावेश हो जाता है। विशेष समाधान इसी प्रश्न के स्थिति शीर्षक में कर दिया गया है।

**(२) तिर्यंचाणी** की कायस्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम अनेक करोड़ पूर्व। इसमें सात भव सामान्य तिर्यंचाणी के और आठवाँ

भव युगलिक स्त्री का समझना। नौवाँ भव देवगति का हो जाता है।

**(३)** सामान्य मनुष्याणी की कायस्थिति जघन्य अ तमुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम और अनेक करोड़पूर्व, तिर्यंचाणी के समान समझना। **धर्माचरणी** मनुष्याणी(साध्वी)की कायस्थिति जघन्य १ समय उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व। साध्वी का एक भव ही होता है। दूसरा भव प्रार भ होते ही समान्य स्त्री हो जाती है।

**अकर्मभूमिज मनुष्याणी** की कायस्थिति जन्म की अपेक्षा स्थिति के समान होती है। स हरण की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम साधिक देशोन करोड़पूर्व। सँहरण करके लायी गयी स्त्री जघन्य अ तर्मुहूर्त में काल करके अन्यत्र कहीं भी जा सकती है। उत्कृष्ट में अपना पूरा देशोन क्रोड़पूर्व का भव वहाँ बिता सकती है और फिर वहीं ३ पल्योपम की युगलिक स्त्री बन सकती है। तब यह उत्कृष्ट कायस्थिति बनती है। **(४)** देवी की कायस्थिति उनकी स्थिति के समान ही होती है। क्यों कि देवों में अनेक भव लगातार नहीं होते है। एक भव पूरा होने पर तिर्यंच या मनुष्य बनना जरूरी होता है। अतः देवों की भवस्थिति और कायस्थिति एक सरीखी कही जाती है। वास्तव में उनकी कायस्थिति होती ही नहीं है ।

**अ तर–** स्त्रीपना छोड़कर पुरुष या नपु सक के भव करके पुनः स्त्रीपन में आने पर मध्य का काल सामान्य स्त्री का अ तर कहलाता है। वैसे ही तिर्यंचाणी अन्य भवभ्रमण कर पुनः जितने काल से तिर्यंचाणी बने वह उसका अ तरकाल होता है। मनुष्याणी और देवी का अ तर भी वैसे ही समझना ।

समुच्चय स्त्री का अ तर जघन्य एक समय, तिर्यंचाणी, मनुष्याणी और देवी का जघन्य अ तर्मुहूर्त का अ तर हो सकता है, उत्कृष्ट वनस्पति-काल जितना अ तर नपु सक में जाने से हो सकता है। धर्माचरणी स्त्री (साध्वी)का अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल होता है। वापिस कभी स्त्री नहीं बने तो अ तरकाल नहीं बनता है।

**नोट–**एक समय की कायस्थिति स्वभावतः स यमभाव में अर्थात् छट्ठे गणस्थान से लेकर आगे के गुणस्थानों में स भव होती है यह स्वाभाविक





है। नीचे के गुणस्थानों में एक समय के भाव प्रायः नहीं होते हक्त ।

देवी का अ तर जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पति काल। देवी काल करके अ तर्मुहूर्त का तिर्यंच बन कर पुनः देवी बन सकती है। एव अन तकाल वनस्पति में भवभ्रमण करके फिर देवी बन सकती है ।

**अल्पबहुत्व–** लोक में सबसे थोड़ी मनुष्याणी, तिर्यंचाणी उससे अस ख्य गुणी। उससे देवी अस ख्यगुणी होती है।

**स्त्री वेद का ब ध :–** जघन्य ब ध (एकेन्द्रिय की अपेक्षा) एक सागरोपम का सातिया ड़ेढ़ भाग तथा पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग न्यून। उत्कृष्ट ब ध(प चेन्द्रिय की अपेक्षा) १५ कोड़ाकोड़ी सागरोपम। अबाधाकाल पद्रह सौ वर्ष का अर्थात् १५०० वर्ष की स्थिति तक में प्रदेश ब ध और प्रदेश उदय भी नहीं होता है। एकेन्द्रिय आदि जीव जघन्य ब ध पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग न्यून करते हक्त और उत्कृष्ट उसे पूरेपूरा सागरोपम के सात भाग में से ड़ेढ़ भाग का ब ध होता है ।

**कामाग्नि–**स्त्री वेद का स्वभाव करीष अग्नि के समान होता है, वह जल्दी जलकर समाप्त नहीं होती, ल बे समय तक जलती ही रहती है। उसी तरह स्त्री की कामाग्नि सदा उद्दीप्त रहती है।

**प्रश्न–२ : स सार के समस्त पुरुषों स ब धी परिज्ञान–परिचय किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** पुरुष तीन प्रकार के हक्त– तिर्यंच, मनुष्य, देव। इनके भेद प्रभेद स्त्री के समान है । **स्थिति–** (१) समुच्चय पुरुष की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ३३ सागरोपम। (२) तिर्यंच की स्थिति पाँचों भेदों की पूर्ववत्। (३) मनुष्य की स्थिति मनुष्याणी के समान, अकर्म भूमि में भी स्त्री के समान। (४) देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

**कायस्थिति–** (१) समुच्चय पुरुष की कायस्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त अनेक सौ सागरोपम साधिक। (२) तिर्यंच पुरुष की कायस्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम एव अनेक(सात)करोड़पूर्व अधिक।

(३) सामान्य मनुष्य की तिर्यंच पुरुष के समान कायस्थिति है। धर्माचरणी (साधु)पुरुष की कायस्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड़पूर्व। अकर्म भूमि पुरुष की कायस्थिति अकर्म भूमि स्त्री के समान है। (४) देवों में स्थिति के समान ही कायस्थिति होती है।

**अ तर**–समुच्च पुरुष का जघन्य एक समय, तिर्यंच-मनुष्य और देव पुरुष का अ तर जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पति काल। धर्माचरणी (साधु)मनुष्य का अ तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन। अकर्म भूमि पुरुष का अ तर स्त्री के समान है।

देवों का अ तर आठवें देवलोक तक जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। नवमें देवलोक से ग्रैवेयक तक अ तर जघन्य अनेक वर्ष, उत्कृष्ट वनस्पति काल। अणुत्तर देवों का अ तर जघन्य अनेक वर्ष, उत्कृष्ट स ख्याता सागरोपम साधिक।

**अल्पबहुत्व**–सबसे थोड़े मनुष्य। उससे तिर्यंच पुरुष अस ख्यगुणे। उससे देव पुरुष अस ख्यगुणे।

**पुरुष वेद का ब ध**– जघन्य आठ वर्ष, उत्कृष्ट दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, अबाधाकाल एक हजार वर्ष।

**कामाग्नि**– वन दावाग्नि का आवेग तीव्र होता है किंतु वह वन को जलाकर शीघ्र शा त हो जाती है। उसी तरह पुरुष की कामाग्नि वीर्य के क्षीण होने पर एक बार शा त हो जाती है।

**प्रश्न–३ : स सार के समस्त नपु सकों का परिज्ञान किसप्रकार है?**

**उत्तर**– नपु सक तीन प्रकार के होते हक्त– (१) नारकी (२) तिर्यंच (३) मनुष्य सात नरक के सात भेद है। तिर्यंच के पाँच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय आदि भेद है। मनुष्य के कर्मभूमि आदि भेद है।

**स्थिति**– (१) समुच्चय नपु सक की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। (२) नैरयिक नपु सक की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। (३) तिर्यंच नपु सक की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट करोड़पूर्व। (४) सामान्य मनुष्य नपु सक की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट करोड़पूर्व। धर्माचरणी मनुष्य नपु सक की स्थिति





जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व। अकर्म भूमि आदि के नपु सक की स्थिति जन्म की अपेक्षा जघन्य अ तमुहूर्त और उत्कृष्ट भी अ तर्मुहूर्त स मूर्च्छिम मनुष्य की अपेक्षा। स हरण की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन करोड़पूर्व।

**कायस्थिति**– (१) समुच्चय नपु सक की कायस्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। (२) नैरयिक नपु सक की जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम। (३) तिर्यंच नपु सक की जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट वनस्पति काल। इसमें चार स्थावर की अस ख्य काल है और वनस्पति की अनन्तकाल है विकलेन्द्रिय की स ख्याता काल है। प चेन्द्रिय की अनेक(आठ) करोड़पूर्व। (४) सामान्य मनुष्य नपु सक की कायस्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनेक(आठ)करोड़ पूर्व। धर्माचरणी की जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व। अकर्मभूमि आदि के मनुष्य नपु सक की–जन्म की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अ तर्मुहूर्त। स हरण की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड़पूर्व।

**अन्तर**– समुच्चय नपु सक का अन्तर जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनेक सौ सागरोपम। नारकी का अन्तर जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पति–काल। तिर्यंच नपु सक का अन्तर जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनेक सौ सागरोपम। एकेन्द्रिय का अन्तर उत्कृष्ट दो हजार सागरोपम स ख्याता वर्ष अधिक। चार स्थावर का अन्तर उत्कृष्ट वनस्पति काल। वनस्पति का उत्कृष्ट अस ख्य काल। बेइन्द्रियादि का उत्कृष्ट अ तर वनस्पतिकाल। सामान्य मनुष्य नपु सक का अन्तर जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पति काल। धर्माचरणी का जघन्य एक समय उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन। अकर्मभूमि नपु सक का अन्तर जन्म की अपेक्षा और स हरण की अपेक्षा जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पति काल है।

**अल्पबहुत्व**– सबसे थोड़े मनुष्य नपु सक। नारकी अस ख्य गुणे। तिर्यंच अनन्त गुणे।

**नपु सक वेद का ब ध**– जघन्य दस सागरोपम का सातिया दो भाग

# प्रतिपत्ति-३ : चतुर्विधा जीव

(२/७ भाग) पल्योपम का अस ख्यातवाँ भाग कम, उत्कृष्ट बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम, अबाधाकाल दो हजार वर्ष ।

**कामाग्नि-** महानगर दाह में आवेग भी अग्नि का अधिक होता है और वह ज्यादा समय जलती है। वैसे ही नपु सक व्यक्ति की कामाग्नि का आवेग भी सीमातीत होता है एव उसकी शा ति भी सहज नहीं होती है।

**प्रश्न-१ : इस प्रतिपत्ति का परिचय क्या है ?**

**उत्तर-** इसमें चार गति के आधार से जीव के चार प्रकार किये हक्त । इसके साथ नरक क्षेत्र, मनुष्य में अ तर्द्वीपज युगलिक क्षेत्र, द्वीपसमुद्र, देवों में चार जाति के देवों के निवास स ब धी क्षेत्रीय वर्णन विस्तारपूर्वक है एव जीवों के भेद प्रभेद तथा तत्स ब धी स्थिति आदि तात्त्विक वर्णन भी है।

सर्व प्रथम तीन उद्देशकों में नरक स ब धी वर्णन है और चौथे उद्देशक में शेष तीनों गति स ब धी विस्तार है। जिससे यह तीसरी प्रतिपत्ति और उसमें भी चौथा उद्देशक अत्यधिक विशालकाय बन गया है । जिसमें अनेकों विषय स्पष्ट भी हुए है। भवनपति, व्य तर देवों के क्षेत्रीय वर्णन को लेखन काल में यहाँ स क्षिप्त कर दिया गया है। जिसके लिये प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे पद(स्थान पद)का निर्देश किया है। वास्तव में उस पद के नाम अनुसार जीवों के निवास स्थानों का वहाँ विशेष वर्णन है। यों भी कहा जा सकता है कि इस तीसरी प्रतिपत्ति के अध्ययन किये बिना जैन खगोल भूगोल स ब धी ज्ञान अपूर्ण ही रहता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों का भ ड़ार इस प्रतिपत्ति में शास्त्रकारों ने सुनियोजित किया है ।

**प्रश्न-२ : सात नरक पृथ्वियों का एव नरकावासों का परिचय किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** नरक सात है-पहली नरक, दूसरी नरक, तीसरी नरक, चौथी





नरक, पाँचवी नरक, छट्ठी नरक, सातवीं नरक। **नाम-** घम्मा, व सा, शैला, अ जणा, रिट्ठा, मघा और माघवती। **गौत्र-** (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) प कप्रभा (५) धूमप्रभा (६) तमःप्रभा (७) तमःतमाप्रभा ।

**पृथ्वीपिंड़-** सातों नरक के पृथ्वी पिंड़ की जाड़ाई इस प्रकार है- (१) एक लाख अस्सी हजार (२) एक लाख बत्तीस हजार (३) एक लाख अट्ठावीस हजार (४) एक लाख बीस हजार (५) एक लाख अट्ठारह हजार। (६) एक लाख सोलह हजार। (७) एक लाख आठ हजार। ये अस ख्य योजन की ल बी-चौड़ी गोल है और अस ख्य योजन की परिधि है। पृथ्वीपिंड़ की जाड़ाई सर्वत्र(बीच में या किनारे) समान है।

**का ड़-**पहली नरक में तीन का ड़ है- खरका ड़, प ककाड़, अप्बहुल का ड़। खरका ड़ की मोटाई १६ हजार योजन है। प क का ड़ की ८४ हजार योजन है। अप्बहुल का ड़ की ८० हजार योजन है। खरका ड़ के १६ विभाग है, यथा- (१) रत्नका ड़ (२) वज्र (३) वैडूर्य (४) लोहिताक्ष (५) मसारगल्ल (६) हंसगर्भ (७) पुलक (८) सौग धिक (९) ज्योतिरस (१०) अ जन (११) अ जन पुलक (१२) रजत (१३) जातरूप (१४) अ क (१५) फलिह(स्फटिक) (१६) रिष्ट। ये प्रत्येक एक-एक हजार योजन के जाड़े है ।

पहली नरक पृथ्वी पिंड़ के एक लाख अस्सी हजार योजन भूमिभाग के ये तीन विभाग है। इन तीनों विभाग के पृथ्वी स्वभाव, पुद्गल आदि में भिन्नता है। शेष ६ नरकों में यह अ तर नहीं है इसलिये उनमें **का ड़** नहीं है।

**नरकावास-** नारकीयों के रहने वाले, नगर के समान स्थानों को नरकावास कहा गया है। ये स ख्याता योजन एव अस ख्याता योजन विस्तार वाले हक्त । बाहर से चौकोन आदि है, अ दर से गोल है। ये प क्तिबद्ध भी है और प्रकीर्णक भी। प क्तिबद्ध त्रिकोण चौकोन और गोल है। प्रकीर्णक नरकावास विभिन्न स स्थानों वाले हक्त । सातों नरक में इनकी स ख्या क्रमशः इस प्रकार है, यथा- (१) तीस लाख (२) पच्चीस लाख (३) पन्द्रह लाख (४) दस लाख (५) तीन लाख (६) एक लाख में पाँच

कम (७) पाँच नरकावास है । पाँच के नाम- काल, महाकाल, रूद्र, महारूद्र, अप्रतिष्ठान ।

**प्रश्न-३ : सात नरक पृथ्वियों के नीचे और चौतरफ क्रमशः घनोदधि आदि एव वलय किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** इन सात नरक पृथ्वियों के नीचे घनोदधि आदि पिंड़ स्वरूप हक्त और इन सातों नरक पृथ्वियों के चौतरफ घनोदधि आदि के वलय है। ये पिंड़ और वलय अपने आप में पूर्ण रूप से स्वत त्र हक्त। घनोदधि आदि पिंड़ पृथ्वियों के नीचे आधार रूप में पृथ्वी जितनी ल बाई-चौड़ाई वाले हक्त और उनकी जाड़ाई भिन्न भिन्न है अर्थात् घनोदधि पिंड़ की जाड़ाई २०००० योजन की है। घनवायपिंड़ की जाड़ाई अस ख्य योजन की है। उसके बाद तनुवाय और आकाश की जाड़ाई नीचाण में अस ख्य-

| नरक | घनोदधि | | घनवात | | तनुवात | | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ योजन | + | $4\frac{1}{2}$ योजन | + | $1\frac{1}{2}$ योजन | = | १२ योजन |
| २ | $6\frac{2}{3}$ योजन | + | $4\frac{3}{4}$ योजन | + | $1\frac{1}{2}+\frac{1}{12}$ योजन | = | $12\frac{1}{3}$ योजन |
| ३ | $6\frac{2}{3}$ योजन | + | ५ योजन | + | $1\frac{1}{2}+\frac{1}{12}$ योजन | = | $12\frac{1}{2}$ योजन |
| ४ | $6\frac{2}{3}$ योजन | + | $5\frac{1}{4}$ योजन | + | $1\frac{3}{4}+\frac{1}{12}$ योजन | = | $13\frac{1}{2}$ योजन |
| ५ | $7\frac{1}{3}$ योजन | + | $5\frac{1}{2}$ योजन | + | $1\frac{3}{4}+\frac{1}{12}$ योजन | = | $14\frac{2}{3}$ योजन |
| ६ | $7\frac{2}{3}$ योजन | + | $5\frac{3}{4}$ योजन | + | $1\frac{3}{4}+\frac{2}{12}$ योजन | = | $15\frac{1}{3}$ योजन |
| ७ | ८ योजन | + | ६ योजन | + | २ योजन | = | १६ योजन |





इस प्रकार के वलय केवल ७ नरक पृथ्वियों के चोतरफ दिवाल समान(बाउन्ड्री समान) है। इसके अतिरिक्त १४ राजु लोक में कई भी वलय नहीं है। भगवती सूत्र एव प्रज्ञापना सूत्र अनुसार भी घनोदधि, घनवाय, तनुवाय के कुल ७-७(अर्थात् ७×३ =२१) वलय सात नरक पृथ्वियों के है। इसके सिवाय नरक के नीचे घनोदधि, घनवाय, तनुवाय के जो पिंड है उनके भी वलय नहीं है और भी देवलोक, सिद्धशिला या स पूर्ण १४ राजु लोक के भी वलय नहीं है ।

पहली नरक के पृथ्वीपिंड़ के चरमा त से चारों दिशाओं में अलोक १२ योजन दूर है और सातवीं नरक के पृथ्वी पिंड़ के चरमा त से अलोक १६ योजन दूर है ।

**स स्थान-**पृथ्वी पिंड़ एव उसके नीचे रहे घनोदधि आदि झालर के आकार से है और चौतरफ रहे घनोदधि आदि वलयाकार है ।

**उपस हार-** इन नरक स्थानों में सभी जीव उत्पन्न हो चुके हक्त, व्यवहार राशि की अपेक्षा एव बहुलता की दृष्टि से। ये सभी नरकस्थान शाश्वत है, अनादि है। पहली नरक से दूसरी नरक बाहल्य (जाड़ाई) में कुछ कम (विशेष हीन) है। विस्तार की अपेक्षा विशेषाधिक है। इसी प्रकार दूसरी से तीसरी, तीसरी से चौथी यों आगे आगे की नरक के विषय में जानना चाहिये । विशेष में भगवती सूत्र प्रश्नोत्तर पूर्वार्ध में शतक. ११, प्रश्न.८ में इसका पूरा विवरण है ।

**प्रश्न-४ : सातो नरक पृथ्वियों में आठों पाथड़ो का क्रमा स्वरूप है ?**

**उत्तर-** **छत्त** (प्रस्तट) सभी नरक में हक्त। आ तरे **पाथड़ा** नरक में है सातवी नरक में नहीं है। ऊपर का छत और नीचे की ठीकरी सभी नरक में हक्त। सर्व प्रथम ऊपर छत्त, फिर पाथड़ा, अ तरा, पाथड़ा इस प्रकार है। अत में पाथड़ा और फिर ठीकरी (हीचली सतह) है। सातवीं नरक में ऊपर छत्त फिर पाथड़ा फिर ठीकरी (नीचली सतह) है। इनके माप योजन में इस प्रकार है- (छत्त और ठीकरी का माप समान है)।

| नरक | छत्त | पाथड़ा | पाथड़ो का आ तरा | आ तरो का योग | पृथ्वीपिंड |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | १०००×२ | ३ | × ३००० | ४ × | २५,२५० | १,१८,००० |
| ६ | १०००×२ | ३ | × ३००० | २ × | ५२,५०० | १,१६,००० |
| ७ | ५२५००×२ | १ | × ३००० | – | – | १,०८,००० |

**प्रश्न-५ : नरक और नारकी जीवों स ब धी यहाँ अन्य भी क्या-क्या तत्त्व दर्शाये गये हैं ?**

**उत्तर-वर्ण ग ध आदि-** नरकावास कृष्ण, परमकृष्ण, रोमा चकारी, भीम, भयानक, त्रासकारी है। मरे हुए जानवरों के सड़ रहे मृत कलेवर की दुर्गंध से भी अधिक अनिष्ठतर वहाँ का वायुम ड़ल है। तीक्ष्ण शस्त्र एव प्रज्वलित अग्नि से भी अधिक अनिष्ट वहाँ का स्पर्श होता है ।

स ख्यात योजन वाले नरकावास है उनका सामान्य या मध्यम गति से देवता छ महीने में अ त पा सकता है किन्तु अस ख्य योजन वालों का उस गति से अ त नहीं पाया जा सकता है । सातवीं नरक में एक आवलिका का बाहल्य लम्बा योजन का है, शेष चार अस ख्य योजन वाले । शेष ६ नरक में स ख्यात योजन के भी बहुत है और अस ख्य योजन के भी बहुत है। सभी नरकावास **सर्व वज्रमय** है। द्रव्यार्थितया शाश्वत है और वर्णादि पर्याय की अपेक्षा अशाश्वत है।

**अवगाहना-** भव स ब धी और वैक्रिय स ब धी यों दो प्रकार की होती है। भवं स ब धी जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग और उत्तर वैक्रिय जघन्य अ गुल के स ख्यातवां भाग की होती है। उत्कृष्ट इस प्रकार है-

**नरक के वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना :-**

| नरक | भवधारणीय उत्कृष्ट | उत्तर वैक्रिय उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १ | ७॥। धनुष ६ अगुल | १५॥ धनुष १२ अगुल |
| २ | १५॥ धनुष १२ अगुल | ३१। धनुष |
| ३ | ३१। धनुष | ६२॥ धनुष |
| ४ | ६२॥ धनुष | १२५ धनुष |
| ५ | १२५ धनुष | २५० धनुष |
| ६ | २५० धनुष | ५०० धनुष |
| ७ | ५०० धनुष | १००० धनुष |





नारकी जीव अपने शरीर मान से दुगुणा वैक्रिय कर सकता है । इसलिये भवधारणीय उत्कृष्ट अवगाहना से उत्तर वैक्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना दुगुनी कही है ।

**आहार श्वास पुद्गल-** नेरयिकों का शरीर वर्ण ग ध स्पर्श की अपेक्षा अका त अमनोज्ञ होता है उसके श्वासोश्वास एव आहार में भी अनिष्ट अमनोज्ञ पुद्गलों का परिणमन होता है ।

**लेश्या-** पहली दूसरी नरकी में कापोत लेश्या, तीसरी में कापोत और नील, चौथी में नील, पाँचवीं नील और कृष्ण, छट्ठी में कृष्ण, सातवीं में परम कृष्ण ।

**वेदना-** पहली दूसरी तीसरी में शीत वेदना, चौथी में उष्ण वेदना स्थान ज्यादा और शीत वेदना स्थान कम, पाँचवीं में शीत वेदना ज्यादा और उष्ण वेदना कम, छट्ठी में शीत वेदना, सातवीं में परम शीत वेदना है।

**वैक्रिय-** नारकी जीव एक या अनेक रूपों की विकुर्वणा कर सकते हक्त। पहली नरक से पाँचवीं नरक तक स ख्याता, स बद्ध और सरीखे रूपों की विकुर्वणा कर सकते हक्त। वैक्रिय से अनेक प्रकार के शस्त्र बनाकर एक दूसरे को परम त्रास उत्पन्न करते हक्त। छट्ठी सातवीं नरक में वैक्रिय से गोबर के कीड़ों के समान छोटे छोटे वज्रमुखी कीड़ों की विकुर्वणा करते हक्त और एक दूसरे के शरीर में प्रवेश कर उसके शरीर को खाकर खोखला या चालणी जैसा कर देते हक्त। इस प्रकार परस्पर तीव्र प्रगाढ़ वेदना उत्पन्न करते हक्त ।

**क्षुधा आदि वेदना हेतु उपमाएँ-** नैरयिकों को भूख प्यास की वेदना इतनी तीव्र होती है कि उन्हें सब समुद्रों का पानी पिला दिया जाय और सब पुद्गलों का आहार करा दिया जाय तो भी तृप्त नहीं होते हक्त। वे नारकी जीव वहाँ भयाक्रा त, त्रसित, भूखे, प्यासे उद्विग्न, व्यथित, व्याकुल

बने हुए नरक भव के दुखों का अनुभव करते हक्त। वहाँ गर्मी की वेदना इतनी प्रच ड़ होती है कि लोहे का सघन तपाया गोला यदि नरक में रखकर तत्काल उठाना चाहे तो नहीं उठा सकते, वह एक क्षण में ही पिगल कर पानी सा बन जाता है। गर्मी से स तप्त बना व्यक्ति जिस तरह बावड़ी आदि में प्रवेश करके आन द का अनुभव करता है उसी तरह असत् कल्पना से उष्ण वेदना के नरक का नैरयिक यहाँ मनुष्य लोक की बड़ी फेक्ट्रियों के अग्नि की भट्ठी में पहुँच जाये तो परम शा ति शीतलता का अनुभव करेगा।

शीत की वेदना वाले नरक स्थानों में ठ ड़ी की प्रच ड़ वेदना होती है वहाँ पर लोहे का गोला ठ ड़ी से बिखर जायेगा और कल्पना से उस स्थान के नैरयिक को यहाँ पर्वतों पर बर्फ की चट्टानों में प्रवेश करा दिया जाय तो परम शा ति और उष्णता का अनुभव करेगा ।

**नरक में पृथ्वी, पानी, वनस्पति–** सातों नरकों में पृथ्वी का, पानी का स्पर्श और वनस्पति का स्पर्श अनिष्ट अका त अप्रिय अमनोज्ञ असुखकर कहा है। (इससे यह प्रतिध्वनित होता है कि नरक में भी कोई जल स्थान होते है एव वनस्पतिया (वृक्ष) आदि भी होते हक्त अथवा तो देव द्वारा विकुर्वित भी हो सकते हक्त )

**नैरयिकों का अवधिक्षेत्र(उत्सेध गुल से) :**

| नरक | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १ | ३½ कोश | ४ कोश |
| २ | ३ कोश | ३½ कोश |
| ३ | २½ कोश | ३ कोश |
| ४ | २ कोश | २½ कोश |
| ५ | १½ कोश | २ कोश |
| ६ | १ कोश | १½ कोश |
| ७ | आधा कोश | १ कोश |

नरक सीमा में रहने वाले पृथ्वीकाय आदि के जीव महाकर्म महाकिरिया महा आश्रव महावेदना वाले होते हक्त। सभी प्राणी नरक में पाँच स्थावर के रूप में और नरक के रूप में अनेक बार अथवा अन त बार उत्पन्न हो चुके हक्त।

**अवधिक्षेत्र–** नारकी जीव अवधिज्ञान से जघन्य आधा कोश उत्कृष्ट ४ कोष क्षेत्र जानते देखते हक्त। वहाँ अवधि क्षेत्र इस प्रकार है–





चक्रवर्ती, वासुदेव, मा ड़लिक राजा, सामान्य राजा, महार भी, महाकुटु बी आदि इन नरकों में उत्पन्न होते हक्त अर्थात् महाऋद्धि स पन्न लोग, महान आसक्त लोग और महान आर भ समार भ के कार्यों में भाग लेने वाले लोग यदि जीवन में उनका त्याग नहीं कर पाते अथवा त्यागने का स कल्प नहीं रखते और मरते समय तक उसी अवस्था में रहते हक्त, वे लोग नहीं चाहते हुए भी नरक के महेमान बन जाते हक्त। तब वहाँ उनका इहलौकिक सारा बड़प्पन और अभिमान धूमिल हो जाता है। अस ख्य वर्षों तक नरक के दुःख उन्हें परवश होकर भोगना आवश्यक बन जाता है ।

**वैक्रिय शरीर–** नारकी द्वारा किया गया वैक्रिय अ तर्मुहूर्त स्थिर रह सकता है। तिर्यंच मनुष्य द्वारा किया वैक्रिय भी अ तर्मुहूर्त रह सकता है किंतु उनका उत्कृष्ट समय नरक के समय से चार गुना होता है। देवों द्वारा किया गया वैक्रिय उत्कृष्ट १५ दिन रह सकता है।

**नैरयिक सुख–** किसी नैरयिक को १.जन्म समय में (पूर्वभव में सहज रूप से शाता में मरने वाले उत्पत्ति समय में शाता का वेदन करते हक्त ) २.देव के प्रयत्न विशेष से, ३.शुभ अध्यवसायों से अथवा ४.कर्मोदय से नैरयिक जीवों को कभी किंचित् शाता होती है अर्थात् सुखानुभूति होती है। तीर्थंकर के जन्म समय में साता होने का अर्थ यहाँ टीकाकार ने नहीं किया है।

**नरक दुःख–** नैरयिक जीव सेकड़ों नरक दुःखों से अभिभूत होकर कभी कहीं ५००योजन ऊँचे उछल जाते हक्त। नरक स्वभाव से नैरयिकों के क्षण मात्र भी सुख नहीं है। रात दिन सदा केवल दुःखों में ही स लग्न रहतेहक्त।

इस प्रकार नरकों में अतिशीत, अतिऊष्ण, अतिभूख, अतिप्यास, अतिभय इत्यादि सेकड़ों दुःख निर तर लगे हुए हक्त।

| | | | |
|---|---|---|---|
| (१) बेइन्द्रिय की | ७ लाख | (६) स्थलचर की | १० लाख |
| (२) तेइन्द्रिय की | ८ लाख | (७) उरपरिसर्प की | १० लाख |
| (३) चौरेन्द्रिय की | ९ लाख | (८) खेचर की | १२ लाख |
| (४) वनस्पतिकाय की | १६+१२ लाख | (९) भुजपरिसर्प की | ९ लाख |
| (५) जलचर की | १२॥ लाख | (१०) चार स्थावर की | २९ लाख |

***कुल १ करोड ३४॥ लाख कुलकोडी इस प्रकार है ।***

**जाति कुल कोड़ी यान–** जावा का ८४ लाख जावयान ह। जाति कुल कोड़ी योनि ९३॥ लाख(१ करोड ३४॥ लाख) है ।

चार स्थावर एव नारकी, देवता मनुष्य की कुल कोड़ी यहाँ शास्त्र में नहीं कही गई है। थोकडों में २९ लाख मिलती है। वनस्पति में फूलों की १६ लाख कुल कोड़ी इस प्रकार है– ४ लाख जलज उत्पलादि, ४ लाख स्थलज कोर टादि, ४ लाख महावृक्षों के महुआ आदि, ४ लाख गुल्मों के जायफल आदि। फूलों के सिवाय अन्य वनस्पति की कुलकोड़ी का कथन भी यहाँ शास्त्र में नहीं है। थोकडों में १२ लाख कहीं है। यों यहाँ कुल मिलाकर १ करोड़ साड़े चोतीस लाख कुलकोड़ी कोष्टक में दर्शाई है। नारकी देवता की कहीं भी नहीं मिलने से कोष्टक में नहीं दर्शाई है।

**सुग ध–** सात सुग ध के मुख्य पदार्थ है और उनके ७०० अवा तर भेद है, यथा– (१) मूल (२) त्वक (३) काष्ठ (४) निर्यास(कर्पूर आदि)। (५) पत्र (६) पुष्प (७) फल । इनको ५ वर्ण ५ रस और चार चार स्पर्श से अर्थात् १०० से गुणा करने पर ७०० अवा तर भेद हो जाते है ।

**विमान विस्तार–** सूर्योदय से सूर्यास्त तक बीच का जो आकाश क्षेत्र





है इससे तीन गुणे क्षेत्र जितना एक कदम भरते हुए कोई देवता चले तो किसी विमान का पार पाता है किसी का पार नहीं पाता है। इसी प्रकार पाँच गुणा, सात गुणा, नौ गुणा कदम भरते हुए छ मास चलने पर भी किसी विमान का अ त आता है और किसी विमान का अ त नहीं आ सकता। विमानों के नाम क्रमशः इस प्रकार है– १.अर्चि आदि २. स्वस्तिक आदि ३. काम कामावर्त आदि ४. विजय वेजय तादि ।

**नोट–** उक्त निर्दिष्ट गति से पार नहीं पाया जा सकता, किंतु देव अपनी उत्कृष्ट गति से सभी विमानों को पार कर सकते हक्त ।

**पृथ्वी के भेद–** छः प्रकार की पृथ्वी होती है– (१) श्लक्ष्ण–कोमल मिट्टी (२) शुद्ध–पर्वत आदि के मध्य (३) बालु रेत (४) मेनसिल (५) शर्करा–मरु ड़ पृथ्वी (६) खरपृथ्वी–पत्थर आदि। इनकी क्रमशः उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है– १. एक हजार वर्ष २. बारह हजार वर्ष ३. चौदह हजार वर्ष ४. सौलह हजार वर्ष ५. अठारह हजार वर्ष ६. बावीस हजार वर्ष। इनमें से श्लक्ष्ण पृथ्वी के सात भेद और खर पृथ्वी के ३६ भेद कहे गयेहक्त।

**निर्लेप–** पृथ्वीकाय के जीव एक-एक सूक्ष्म समय में निकाले जाय तो अस ख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल से खाली हो सकते है। वैसे ही पानी, अग्नि, हवा का भी समझना। वनस्पतिकाय के जीव निर्लेप नहीं हो सकते । त्रसकाय के जीव सैकड़ों सागरोपम से निर्लेप हो सकते हक्त।

**प्रश्न–७ : मनुष्यों का वर्णन यहाँ किस प्रकार किया गया है?**

**उत्तर–**कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अ तरद्वीप यों मनुष्य के तीन प्रकार हक्त। इनके १०१ क्षेत्र होने से मनुष्य के १०१ भेद होते हक्त। सन्नी के पर्याप्त अपर्याप्त और असन्नि के अपर्याप्त यों तीन भेद करने से कुल ३०३ भेद होतेहक्त। जिसमें कर्मभूमि के भरत आदि १५ क्षेत्र हक्त, अकर्मभूमि के देवकुरु आदि ३० क्षेत्र है और अ तरद्वीप के एकोरुक आदि ५६ क्षेत्र हक्त।

मनुष्य स ब धी भेद-प्रभेद युक्त वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में एव ६ आरों के विस्तार से वर्णन ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति में किया गया है। भरत, एरवत, महाविदेहगत कर्मभूमिज एव देवकुरु आदि ६ अकर्मभूमिज मनुष्यों का वर्णन ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र वक्षस्कार–४ में किया गया है। प्रस्तुत

में कर्मभूमिज अकर्मभूमिज का अति स क्षिप्त वर्णन नाम निर्देश मात्र कर दिया गया है किंतु ५६ अ तद्वीप क्षेत्रो का और अ तर्द्वीपज मनुष्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन यहाँ मनुष्याधिकार प्रकरण में किया गया है।

प्रस्तुत चौथीप्रतिपत्ति में तीन नरक उद्देशक है। दो तिर्यंच उद्देशक है और फिर मनुष्य, देव या द्वीपक्षेत्रों के वर्णन को उद्देशकों से विभाजित नहीं करके सीधा ही क्रमशः वर्णन किया गया है, यथा- मनुष्याधिकार, देवाधिकार में ज्योतिषी तक, फिर ज बूद्वीपाधिकार, लवणसमुद्राधिकार, सर्वद्वीपसमुद्राधिकार साथ में ज्योतिषी स ख्या भी है। ज्योतिषी देवाधिकार एव वैमानिकाधिकार। इसके बाद इस तीसरी प्रतिपत्ति का समापन-उपस हार रूप स क्षिप्त कथन किया गया है ।

**प्रश्न-८ : ५६ अ तर्द्वीपों का क्षेत्रीय वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** ज बूद्वीप के चौतरफ लवणसमुद्र है उसमें अ तर द्वीप है। इनकी आठ प क्तिया है और एक प क्ति में सात द्वीप है। सातों द्वीप थोड़े थोड़े अ तर से दूरी से रहे हुए है अर्थात् उनके बीच बीच में समुद्रजल त्त है। इस प्रकार ये ७x८=५६ होते हक्त।

भरतक्षेत्र की सीमा करने वाला पर्वत चुल्लहिमव त है और ऐरवतक्षेत्र की सीमा करने वाला शिखरीपर्वत है। इनके दोनों किनारे पूर्व और पश्चिम में हक्त, जो लवण समुद्र का स्पर्श करते हक्त। उन किनारों से एक प क्ति उत्तर की और गोलाई में झुकी हुई हक्त, दूसरी दक्षिण की तरफ गोलाई में झुकी हुई है। यों चार किनारों में दो दो प क्ति होने से आठ प क्ति है।

इस प क्ति का प्रथम द्वीप लवणसमुद्र में ३०० योजन जाने पर आता है। उस द्वीप से ४०० योजन जल में जाने पर आगे का द्वीप आता है। इस तरह क्रमशः ५००, ६००, ७००, ८००, ९०० योजन जाने पर अगला अगला यावत् अ तिम सातवा द्वीप आता है और वे द्वीप ज बूद्वीप के किनारे जगती से भी इतनी ही दूरी पर है और उतने ही योजन के विस्तार वाले है ।

तात्पर्य यह है कि पहला अ तरद्वीप जगती से ३०० योजन दूर और ३०० योजन का ही ल बा चौड़ा गोल है। दूसरा द्वीप जगती से





४०० योजन दूर है पहले द्वीप से भी ४०० योजन दूर है और ४०० योजन का ही ल बाचौड़ा गोल है। यों क्रमशः सातवा द्वीप छट्ठे द्वीप से ९०० योजन दूर है जगती से भी ९०० योजन दूर है और ९०० योजन का ल बा चौड़ा गोल है।

**जिज्ञासा- क्या अ तर्द्वीप दाढाओं पर हैक्त या यों ही जल में हक्त ?**

**समाधान-** थोकडे में अशुद्धि से "दाढा पर" बोल दिये जाते हक्त किन्तु आगम वर्णन के अनुसार ये द्वीप कुछ-कुछ अ तर से समुद्र में ही आये हुए है। उनके चौतरफ समुद्री जल है। चुल्लहिमव त पर्वत जगती के किनारे समाप्त हो जाता है । उसमें से कोई हिस्सा(दाढा रूप) बाहर नहीं निकला है । दाढा के समान गोल आकृति सात द्वीपों से बनती है ऐसा समझना चाहिये अर्थात् ५६ ही द्वीप स्वत त्र हक्त और चौतरफ लवण समुद्र के जल से घिरे हुए हक्त। "दाढा पर है" ऐसा कहने में सूत्र से अतिरिक्त प्ररूपणा होती है, समजभ्रम से और गलत पर परा के कारण। अतः इसे आगम पाठ में पढकर समझकर सुधार लेना चाहिये। जगती की गोलाई के जैसे ये द्वीप भी आगे से आगे गोलाई में झुके हुए होने से जगती से इनकी दूरी ज्यादा नहीं बढकर सौ-सौ योजन ही दूरी बढती है। इसीलिये पूर्व द्वीप से अगला द्वीप जितना दूर होता है उतना ही वह जगती से दूर होता है। ***यावत्*** सातवाँ अ तर्द्वीप छट्ठे से ९०० योजन दूर है तो जगती से भी वह ९०० योजन दूर है ।

इसी प्रकार आठों ही प क्तियों के सात-सात द्वीप दाढा के आकार में रहे हुए हक्त। इन द्वीपों के किनारे पर पद्मवरवेदिका(जगतीरूप) है और उसके चौतरफ वनख ड है। वनख ड में देव देवी आते जाते हक्त और विश्राम करते हक्त आन द का अनुभव करते हक्त। द्वीप के अ दर युगलिक मनुष्य रहते हक्त। वहाँ विविध प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म आदि है, शिलापट (जगह-जगह पर कुर्सियें) है। विविध वृक्षों के अतिरिक्त दस जाति के विशिष्ट वृक्ष भी विपुल मात्रा में होते हक्त जो युगलिक जीवों के सुखमय जीवन निर्वाह के प्रमुख आधारभूत होते हक्त। उन्हें प्रचलित रूढ़ भाषा में दस कल्पवृक्ष कहा जाता है।

**प्रश्न-९ : युगलिक क्षेत्र में युगलिकों के उपयोगी १० वृक्ष कैसे होते है और उनका उपयोग कैसे किया जाता है ?**

**उत्तर- दस वृक्ष-** १.मत्त गा-मादक फल वाले २. भृग गा-बर्तनाकार फल वाले ३. तुटित गा-वादिंत्र विधि से युक्त ध्वनि करने वाले ४. द्वीपशिखा-द्वीप के समान प्रकाश करने वाले। ५. **ज्योतिशिखा-** विशेष प्रकाश करने वाला ६. चित्र गा-विविध मालाएँ प्रदान करने वाले ७. चित्तरसा-विविध प्रकार के भोजन सामग्री के पदार्थों से युक्त ८. मणिय गा-विविध आभूषण प्रदाता ९. गेहागारा- मकानाकार उपयोग में आने वाले मनोनुकूल भवन विधि से युक्त १०. अणिगणा(अनगिणा)-विविध वस्त्रविधि से युक्त। वे वनस्पतिकाय मय वृक्ष होते हक्त । इनसे उपरोक्त आवश्यकताओं की पूर्ति रूप उपयोग युगलिक मनुष्य या तिर्यंच कर लेतेहक्त। युगलियों की स ख्या की अपेक्षा वृक्षों से उपलब्ध पदार्थों की स ख्या कई गुणी होती है। इन वृक्षों से कोई चीज मा गी नहीं जाती है किन्तु उनसे उपलब्ध होने वाली वस्तुओं का स्वय ही उपयोग किया जाता है।

**प्रश्न-१० : युगलिक मनुष्य मनुष्याणी का शरीर कैसा होता है और क्षेत्र स्वभाव से उनका जीवन व्यवहार कैसा होता है ?**

**उत्तर-** यहाँ अ तरद्वीप में रहने वाले युगलिक मनुष्य सुस्वर होते हक्त । वज्रऋषभनाराच स हनन, समचतुरस्र स स्थान, प्रकाशमान अ गोपा ग वाले, स्निग्ध छबि वाले, रजमेल रहित शरीर वाले, निरोग उत्तम निरूपलेप शरीर वाले, सुग धित निःश्वास वाले वे मनुष्य होते हक्त। उनकी अवगाहना ८०० धनुष की और उनके ६४ पसलिया होती है। वे मनुष्य प्रकृति से भद्र, विनीत, उपशा त, स्वाभाविक ही अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, नम्र सरल, निरह कारी, अल्पेच्छा वाले एव इच्छानुसार विचरण करने वाले होते हक्त। उन मनुष्यों को एक दिन के अन तर आहार की इच्छा उत्पन्न होती है ।

**युगलिक मनुष्याणी-** अ तरद्वीप की यौगलिक मनुष्याणी सुजात, सर्वांग सु दर एव प्रधान महिला के गुणों से युक्त होती है। उत्तम बत्तीस लक्षण युक्त, ह स सदृश गति, पुरुष से ऊँचाई में कुछ कम, स्वाभाविक श्रृ गार





और सु दर वेश युक्त होती है। उनका हँसना, बोलना, चेष्टा, विलास, स लाप सुस गत होता है। योग्य व्यवहार में कुशल, निपुण होती है। वह सु दर स्तन, ज घा, मुख, हाथ, पाँव, नयन वाली, वर्ण लावण्य यौवन स पन्न एव अत्य त दर्शनीय अप्सरा सदृश होती है। (यहाँ शास्त्र में स्त्री-पुरुष के प्रत्येक अ ग का विस्तृत वर्णन किया गया है तथा ३२ लक्षण भी बताये हक्त।)

**क्षेत्र स्वभाव एव मनुष्यों का जीवन-** (१) ये मनुष्य पृथ्वी, पुष्प, फल का आहार करते हक्त। उस पृथ्वी, पुष्प, फल का स्वाद अति उत्तम होता है और वे पौष्टिक गुण युक्त होते हक्त। (२) वहाँ गाँव नगर घर आदि नहीं होते किन्तु वृक्ष ही सु दर भवन ब गलों के समान होतेहक्त। (३) व्यापार, वाणिज्य, खेती आदि नहीं होती है। (४) सोना, चा दी, मणि, मुक्ता, धन आदि होते हक्त किन्तु उन मनुष्यों का उनमें ममत्वभाव नहीं होताहक्त। (५) राजा सेठ मालिक नौकर नहीं होते हक्त। सभी मनुष्य अहमेन्द्र के समान होते हक्त(६) माता पिता, भाई, बहिन, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु होते है किन्तु तीव्र प्रेमानुराग नहीं होता है। (७) शत्रु, वैरी, घातक, मित्र, सखा, सखी आदि नहीं होते हक्त। (८) किसी प्रकार के महोत्सव, विवाह, यज्ञ, पूजन, मृतपिंड़, निवेदन पिंड़ आदि क्रियाएँ नहीं होती। (९) नाटक, खेल आदि नहीं होते हक्त क्योंकि वे कुतुहल रहित होते हक्त।

(१०) वाहन नहीं होते, वे पैदल विहारचर्या वाले होते हक्त। (११) हाथी घोड़े आदि पशु होते हक्त किंतु वे मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते। (१२) सि ह वाघ चीता बिल्ली कुत्ता आदि पशु होते हक्त किंतु वे आपस में या मनुष्यों को किंचित् भी पीड़ा नहीं पहुँचाते। (१३) गेहूँ आदि धान्य भी होते है किंतु मनुष्यों के उपयोग में नहीं आते। (१४) खड्डे(गढ्ढे), खाई, उबड़ खाबड़ भूमि(विषम भूमि) कीचड़ आदि नहीं होते, धूल, रज, ग दगी नहीं होती। (१५) का टे, खीले, का च, कचरा आदि नहीं होते। (१६) डाँस, मच्छर, माकड़(खटमल), जूँ, लीख आदि नहीं होते। (१७) सा प, अजगर आदि होते है किन्तु वे प्रकृति भद्र होते हक्त आपस में या मनुष्यों को पीड़ा नहीं पहुँचाते।

(१८) आँधी, तुफान, उपद्रव, ग्रहण, उल्कापात आदि कोई भी

अशुभ लक्षण, स योग नहीं होते। (१९) वैर, विरोध, लड़ाई, झगड़े, स ग्राम आदि नहीं होते। (२०) किसी प्रकार के रोग, वेदना आदि नहीं होते। (२१) अतिवृष्टि अनावृष्टि नहीं होती। (२२) सुवर्ण आदि की खान निधान या सुवर्ण आदि की वृष्टि भी नहीं होती है।

इन मनुष्यों की उम्र जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम के अस ख्यातवें भाग की होती है। जघन्य से उत्कृष्ट कुछ अधिक होती है। वे मनुष्य छः महिने आयु शेष रहने पर पुत्र पुत्री युगल को जन्म देते हक्त, ७९ दिन पालन पोषण करते हक्त उसके बाद कभी भी काल करके देव गति में जाते हक्त अर्थात् भवनपति और वाणव्य तर जाति के देवों में उत्पन्न होते हक्त।

**अ तरद्वीप के नाम–** १. एकोरुक २. हयकर्ण ३. आदर्शमुख ४. अश्व-मुख ५. अश्व कर्ण ६. उल्कामुख ७. घनद त ८. आभाषिक ९. गज कर्ण १०. मेंढ़मुख ११. हस्तिमुख १२. सि हकर्ण १३. मेघमुख १४. लष्टद त १५. वेषाणिक १६. गोकर्ण १७. अयोमुख १८. सि हमुख १९. अकर्ण २०. विधुद् त २१. गूढ़द त २२. ना गोलिक २३. शष्कुलीकर्ण २४. गोमुख २५. व्याघ्रमुख २६. कर्णप्रावरण २७. विद्युज्जिव्हा २८. शुद्धद त। ये २८ चुल्ल हिमव त पर्वत के दोनों किनारे हक्त। इसी प्रकार शिखरी पर्वत के दोनों किनारे इन्हीं २८ नाम वाले द्वीप है। इनके दक्षिणी और उत्तरी ये विशेषण लग जाने से नाम साम्यता होने पर भी बाधा नहीं आती है।

## प्रश्न-११ : देवाधिकार में यहाँ क्या विशेष ज्ञेय तत्त्व निरूपित किया है ?

**उत्तर**–भवनपति व्य तर के क्षेत्रीय एव अन्य वर्णन तो प्रज्ञापना के निर्देश से स क्षिप्त है। विशेष में यहाँ भवनपति आदि देवेन्द्रों की परिषद स ब धी खुलासापूर्वक वर्णन है, वह इस प्रकार है– देवों (देवेन्द्रों) की परिषद तीन प्रकार की होती है–आभ्य तर, मध्यम, बाह्य। इन तीनों के नाम भवनपति में (१) समिता (२) च ड़ा (३) जाया परिषद है।

आभ्य तर परिषद के देव बुलाने पर आते हक्त, उनके साथ इन्द्र





देवों को भी परिषदा करता है। मध्यम परिषद बुलाने पर भी आती है बिना बुलाये भी आती है। इनके साथ उस विचारणा विषय के गुणदोष की विस्तार से विचारणा कर निर्णय किया जाता है। तीसरी बाह्य परिषद में निर्णित की गई आज्ञा दी जाती है। यथा– यह करना, यह नहीं करना। इन तीन परिषद के देवों की और देवियों की स ख्या एव उनकी उम्र कोष्टक में दी जा रही है– वाणव्य तर देवों के तीन परिषद के नाम (१) ईशा (२) त्रुटिता (३) दृढरथा। ज्योतिषी देवों की तीन परिषद के नाम– (१) तुम्बा (२) त्रुटिता (३) प्रेत्या।

| क्रम | परिषद | चमरेन्द्र | | बलीन्द्र | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | स ख्या | स्थिति | स ख्या | स्थिति |
| १ | आभ्य तर देव | २४,००० | २॥ पल्योपम | २५,००० | ३॥ पल्योपम |
| २ | मध्यम देव | २८,००० | २ पल्योपम | २४,००० | ३ पल्योपम |
| ३ | बाह्य देव | ३२,००० | १॥ पल्योपम | २८,००० | २॥ पल्योपम |
| ४ | आभ्य तर देवी | ३५० | १॥ पल्योपम | ४५० | २॥ पल्योपम |
| ५ | मध्यम देवी | ३०० | १ पल्योपम | ४०० | २ पल्योपम |
| ६ | बाह्य देवी | २५० | ॥ पल्योपम | ३५० | १॥ पल्योपम |

| क्रम | धरणेन्द्र आदि-९ | | भूतानंद आदि-९ | | कालकुमार आदि-१६ | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | संख्या | स्थिति | संख्या | स्थिति | संख्या | स्थिति |
| १ | ६०००० | १/२ पल्य साधिक | ५०००० | १ पल्य देशोन | ८००० | १/२ पल्य |
| २ | ७०००० | १/२ पल्य | ६०००० | १/२ पल्य साधिक | १०००० | १/२ पल्य देशोन |
| ३ | ८०००० | १/२ पल्य देशोन | ७०००० | १/२ पल्य | १२००० | १/४ पल्य साधिक |
| ४ | १७५ | १/२ पल्य देशोन | २२५ | १/२ पल्य | १०० | १/४ पल्य साधिक |
| ५ | १५० | १/४ पल्य साधिक | २०० | १/२ पल्य देशोन | १०० | १/४ पल्य |
| ६ | १२५ | १/४ पल्य साधिक | १७५ | १/४ पल्य साधिक | १०० | १/४ पल्य देशोन |

**वनिकाय देवों की परिषद :-**

**वैमानिक देवों की परिषद :-**

| परिषद क्रम | शकेन्द्र-१ | | ईशानेन्द्र-२ | |
|---|---|---|---|---|
| | स ख्या | स्थिति | स ख्या | स्थिति |
| १ | १२००० | ५ पल्योपम | १०००० | ७ पल्योपम |
| २ | १४००० | ४ पल्योपम | १२००० | ६ पल्योपम |
| ३ | १६००० | ३ पल्योपम | १४००० | ५ पल्योपम |
| ४ | ७०० | ३ पल्योपम | ९०० | ५ पल्योपम |
| ५ | ६०० | २ पल्योपम | ८०० | ४ पल्योपम |
| ६ | ५०० | १ पल्योपम | ७०० | ३ पल्योपम |

| परिषद | सनत्कुमार-३ | | माहेन्द्र-४ | |
|---|---|---|---|---|
| | संख्या | स्थिति | संख्या | स्थिति |
| आभ्य तर देव | ८००० | ४॥ सागर-५ पल्य | ६००० | ४॥ सागर-७ पल्य |
| मध्यम देव | १०००० | ४॥ सागर-४ पल्य | ८००० | ४॥ सागर-६ पल्य |
| बाह्य देव | १२००० | ४॥ सागर-३ पल्य | १०००० | ४॥ सागर-५ पल्य |

| परिषद | ब्रह्म-५ | | ला तक-६ | |
|---|---|---|---|---|
| | स ख्या | स्थिति | स ख्या | स्थिति |
| आभ्य तर देव | ४००० | ८॥ सागर-५ पल्य | २००० | १२ सागर-७ पल्य |
| मध्यम | ६००० | ८॥ सागर-४ पल्य | ४००० | १२ सागर-६ पल्य |
| बाह्य | ८००० | ८॥ सागर-३ पल्य | ६००० | १२ सागर-५ पल्य |

| परिषद | महाशुक्र-७ | | सहस्रार-८ | |
|---|---|---|---|---|
| | स ख्या | स्थिति | स ख्या | स्थिति |
| आभ्य तर देव | १००० | १५॥ सागर-५ पल्य | ५०० | १७॥ सागर-७ पल्य |
| मध्यम देव | २००० | १५॥ सागर-४ पल्य | १००० | १७॥ सागर-६ पल्य |
| बाह्य देव | ४००० | १५॥ सागर-३ पल्य | २००० | १७॥ सागर-५ पल्य |

| परिषद | आणत-प्राणत(९-१०) | | आरण-अच्युत(११-१२) | |
|---|---|---|---|---|
| | स ख्या | स्थिति | स ख्या | स्थिति |
| आभ्य तर देव | २५० | १९ सागर-५ पल्य | १२५ | २१ सागर-७ पल्य |
| मध्यम देव | ५०० | १९ सागर-४ पल्य | २५० | २१ सागर-६ पल्य |
| बाह्य देव | १००० | १९ सागर-३ पल्य | ५०० | २१ सागर-५ पल्य |

**नोट :-** ज्योतिषी देवेन्द्रों की परिषद की स ख्या और स्थिति व्य तर के कालकुमारेन्द्र के समान है । नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में सभी देव अहमेन्द्र हक्त । वहाँ परिषद नहीं होती है ।

**प्रश्न-१२ : ज बूद्वीप के वर्णन के लिये तो स्वत त्र शास्त्र है तो यहाँ ज बूद्वीप का कौन सा विशिष्ट वर्णन है ?**





**उत्तर-** ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति शास्त्र में दक्षिण के भरतक्षेत्र से वर्णन प्रार भ होकर उत्तर के ऐरवत क्षेत्र तक का भौगोलिक वर्णन है । पर तु यहाँ पर विस्तृत वर्णन जगती का, उसके द्वारों का, द्वारों के मालिक, विजय आदि देवों का विस्तार है वह इस क्रम से है-

तिर्छालोक में ज बूद्वीप आदि अस ख्य द्वीप है लवण समुद्र आदि अस ख्य समुद्र है। ज बूद्वीप सबसे छोटा, बीचोबीच, पूर्ण च द्र के आकार का है । एक लाख योजन ल बा चौड़ा है । उसके चौतरफ वलयाकार दो लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है । उसके बाद एक द्वीप एक समुद्र यों क्रमशः वलयाकार है। उनका विस्तार आगे से आगे दुगुणा दुगुणा है। प्रत्येक द्वीप समुद्र के किनारे पद्मवर वेदिका(पाली) है और वनख ड़ है ये भी वलयाकार है।

**ज बूद्वीप जगती-** ज बूद्वीप के किनारे जगती है उसके मध्य में चौतरफ घिरे हुए गवाक्षकटक(जाली के गोखड़े)हक्त । जगती के ऊपर बीच में पद्मवर वेदिका है, उसके दोनों तरफ वनख ड़ है । वनख ड़ में अनेक बावड़ियाँ आदि है । (यहाँ सूत्र में पद्मवर वेदिका और वनख ड़ तथा उसमें रही बावड़ीयों का विस्तृत वर्णन है । जगती पर वाणव्य तर देव आमोद प्रमोद करने के लिये आते रहते हक्त । यहाँ बैठने सोने आदि के लिए आसन, शिलापट्ट आदि हक्त ।

**ज बूद्वीप की जगती के द्वार-** मेरुपर्वत से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा में चार द्वार जगती में है । उनके नाम- १. विजय २.वेजय त ३.जय त ४.अपराजित । मेरु से ४५००० योजन दूर है । पहला विजय

द्वार पूर्व दिशा में सीता महानदी के ऊपर है। चार योजन चौड़ा आठ योजन ऊँचा है। दरवाजे के अ दर और बाहर बालुरेत बिछी हुई है ।

**विजय द्वार का आभ्य तर वर्णन–** द्वार के अ दर दोनों बाजू में निषीधिका (बैठकस्थान)है। जिनमें च दन कलश, मालाओं युक्त खूँटियाँ, घ टिकाएँ, चा दी के छींके एव उनमें धूप घटिकाएँ है। पुतलिया , जालघर, विशाल घ टा एव वनमाला की प क्तिएँ है। दोनों निषीधिकाओं में पक ठक (पीठ)पर प्राषादावत सक हक्त । पक ठक ४ योजन ल बे चौड़े दस योजन ऊँचे हक्त और प्राषाद दो योजन ल बे चौड़े ४ योजन ऊँचे है। प्राषाद में मणि पीठिका(चबुतरा) है। उस पर सि हासन है ।

**द्वार का बाह्य वर्णन–** दोनों निषीधिकाओं के सामने दो तोरण है। प्रत्येक तोरण के सामने दो दो पुतलियाँ, नागद त हस्तीयुगल, अश्वयुगल, नर-किन्नर-किंपुरुष युगल, महोरग ग धर्व एव ऋषभ (बेल)युगल हक्त। इसी प्रकार अनेक म गल रूप दर्शनीय रूप दो दो पदार्थ हक्त । दो दो सि हासन छत्र चामर आदि भी है। द्वार पर १०८० ध्वजाएँ हक्त। दरवाजे के ऊपर ९ भवन है। पाँचवें भवन में विजय देव का सि हासन है। उसके आसपास उसकी परिषद के देव देवियों के भद्रासन हक्त। इस प्रकार परिवार सहित बैठने योग्य यह बीच का भवन है। अन्य आठ भवन में एक- एक सि हासन है ।

**विजयदेव का परिवार–** ४ हजार समानिक, चार अग्रमहिषी परिवार, ८ हजार आभ्य तर परिषद के देव, मध्यमपरिषद के दस हजार देव, बाह्य परिषद के १२ हजार देव, ७ सेनापति, १६ हजार आत्मरक्षक देव। इन सभी के लिये पाँचवें भवन में भद्रासन है। इस विजय द्वार का विजय नामक मालिक देव यहाँ रहता है। उसकी एक पल्योपम की स्थिति है ।

**विजयदेव की राजधानी–** पूर्वदिशा में अस ख्य द्वीप समुद्रों के बाद जहाँ दूसरा ज बूद्वीप है, उसमें बारह हजार योजन अ दर जाने पर विजय देव की विजया नामक राजधानी है। १२ हजार योजन ल बी चौड़ी गोल है। उसके चौतरफ ३७॥ योजन ऊँचा परकोटा(प्राकार) है। मूल में १२॥ योजन चौड़ा है बीच में ६। य ोजन चौड़ा और ऊपर तीन योजन





आधा कोश चौड़ा है। विजया राजधानी में कुल ५०० द्वार है । ये द्वार ६२॥ योजन ऊँचे, ३१। योजन चौड़े है। शेष वर्णन उपरोक्त द्वार वर्णन के समान है। विजया राजधानी का बाह्य और आभ्य तर वर्णन प्रायः सूर्याभदेव के सूर्याभ विमान के वर्णन के सदृश है। यथा– जन्माभिषेक अन्य क्रियाकलाप और सुधर्मा सभा में सपरिवार बैठने की व्यवस्था आदि ।

**शेष तीन द्वार–** मेरुपर्वत से पूर्व दिशा में स्थित विजय द्वार का वर्णन हुआ। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में वेजय तद्वार और वेजय त देव एव उसकी वेजय ता राजधानी का वर्णन है। पश्चिम दिशा में जय तद्वार और जय त देव एव उसकी जय ता राजधानी का वर्णन है। उत्तर दिशा में अपराजित द्वार और अपराजित देव एव उसकी अपराजिता राजधानी है। चारों द्वारों में आपस में ७९०५२ योजन देशोन दो कोश साधिक का अ तर है। लवणसमुद्र के प्रदेशा त ज बूद्वीप से स्पृष्ट है और ज बूद्वीप के प्रदेश लवणसमुद्र से स्पृष्ट है किंतु वे प्रदेश अपनी अपनी क्षेत्रमर्यादा के ही कहे जायेंगे। ज बुद्वीप से मरकर कई जीव लवणसमुद्र में उत्पन्न होते हक्त और लवणसमुद्र के कई जीव मरकर ज बूद्वीप में उत्पन्न होते हक्त ।

**ज बूद्वीप नाम–** मेरुपर्वत से उत्तर दिशा में उत्तरकुरु नामक क्षेत्र में ज बू सुदर्शन नामक वृक्ष है। पृथ्वीमय विविध रत्न मणिमय है। ज बूद्वीप का अधिपति(मालिक) अनादृत देव यहाँ पर रहता है। उसकी अनादृता राजधानी दूसरे ज बूद्वीप में है। इस प्रकार इस ज बू सुदर्शन वृक्ष के कारण एव अन्य भी अनेक ज बू वृक्षों के कारण इस द्वीप का नाम ज बूद्वीप है अथवा यह अनादि शाश्वत नामक है। ज बूद्वीप में २ सूर्य, २ च द्र, ५६ नक्षत्र, १७६ ग्रह, १,३३,९५० कोड़ाकोड़ी तारे भ्रमण करते हक्त ।

**प्रश्न–१३ : लवणसमुद्र स ब धी परिचय–परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** लवणसमुद्र के अनेक विशिष्ट वर्णन इस शास्त्र की अपनी खास विशेषता है। तात्पर्य यह है कि ज बूद्वीप का वर्णन तो ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में है किंतु लोक के अन्य समस्त द्वीप समुद्रों का वर्णन प्रस्तुत सूत्र की इस तीसरी प्रतिपत्ति में है। जिसमें भी लवणसमुद्र का विविध विशेषताओं से भरा विस्तृत वर्णन है। वह क्रमशः इस प्रकार है–

ज बूद्वीप के चौतरफ घिरा हुआ वलयाकार(चूड़ी के आकार)

लवण समुद्र है। जिसका पानी खारा कटुक अमनोज्ञ है। तद्योनिक (वहीं उत्पन्न)जीवों को छोड़कर शेष सभी के लिये अपेय है। पद्मवर वेदिका और वनख ड़ से क्रमशः चौतरफ लवणसमुद्र घिरा हुआ है। चार दिशाओं में लवण समुद्र के विजय आदि चार द्वार है। जिसका स पूर्ण वर्णन ज बूद्वीप के उक्त विजय आदि द्वारों के समान है। लवण समुद्र के मालिक देव का नाम **सुस्थित** है। वह लवण समुद्र में ही गौतम द्वीप में रहता है। लवणाधिपति सुस्थित देव की अन्य दूसरे लवण समुद्र में **सुस्थिता** नामक राजधानी है। सुस्थित देव की उम्र एक पल्योपम की है।

**पाताल कलश–** लवणसमुद्र के **चार** बड़े महापाताल कलश है, जो एक लाख योजन ऊँड़े है। **सात हजार आठ सौ चौरासी** छोटे पाताल कलश है। वे एक हजार योजन ऊँड़े हक्त। चार बड़े कलशों के चार मालिक देव है, यथा– काल, महाकाल वेल ब, प्रभ जन। इनकी उम्र एक पल्योपम की है। छोटे कलशों के मालिक देवों की उम्र आधा पल्योपम की है।

इन कलशों के नीचे के एक तिहाई भाग में वायु होती है। बीच के एक तिहाई भाग में वायु और जल होता है और ऊपर के एक तिहाई भाग में केवल जल होता है। इसमें ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाली वायु उत्पन्न होती है, कुपित होती है, उदीरित होती है, तब पानी शिखा रूप में ऊपर उठता है।

**लवणशिखा–** लवण समुद्र के दोनों किनारों से ९५-९५ हजार योजन अ दर जाने पर बीच का जो दस हजार योजन का क्षेत्र है इसी में पाताल कलश है और वहीं पर समभूमि से १६००० योजन ऊँची १०००० योजन चौड़ाई वाली जलशिखा है। जो पूरे लवणसमुद्र के दो विभाग करती है। आभ्य तर और बाह्य। पाताल कलशों का मुख समुद्र की भीतरी सतह पर है अर्थात् समुद्र की ऊपरी सतह से १००० योजन ऊँड़ा है। पाताल कलशों की वायु से कुपित एव उदीरित होने पर वह १६००० योजन की शिखा देशोन आधा योजन ऊपर बढ़ती और कुपित नहीं होने पर नहीं बढ़ती है। स्वभाव से ही वह प्रति दिन दो बार बढ़ती है और पुनः घट जाती है। किन्तु अष्टमी चतुर्दशी अमावस पूनम के दिन स्वाभाविक ही अतिशय रूप में ज्यादा समय तक या बहुत बार घटती बढ़ती रहती है।





इस लवण शिखा को अ दर(ज बूद्वीप की तरफ)बाहर(धातकी ख ड़ की तरफ)और ऊपर यों तीन दिशा में क्रमशः ४२ हजार, ७२ हजार और ६० हजार नागकुमार देव धारण करते हक्त अर्थात् व्यवहार से रोकने के प्रयत्न हेतु दबाते रहते हक्त। इनके चार वेल धर नाग राजा है– गोस्तूप, शिवक, श ख और मनोशिलक।

**वेल धर नागराज के आवास पर्वत–** मेरु पर्वत से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में लवण समुद्र में ४२००० योजन जाने पर क्रमशः गोस्तूप आदि चारों नागराजाओं के क्रमशः चार आवास पर्वत है– गोस्तूप, उदकभास, स ख, दकसीम। ये पर्वत स्वर्णमय है गोपुच्छ स स्थान वाले हक्त। ऊपरी शिखर पर प्राषादावत सक है। ५२॥ योजन ऊँचा २६। योजन ल बा चौड़ा है। उसमें सपरिवार सि हासन आदि विजय देव के प्राषाद के समान है। इनकी राजधानी अन्य लवण समुद्र में इसी दिशा में इतनी ही (४२००० योजन) दूरी पर है। जिसका वर्णन विजया राजधानी के समान है।

मेरु पर्वत से चारों विदिशाओं में इसी प्रकार चार अणुवेल धर नागराजाओं के आवास पर्वत है। यथा– कर्कोटक, कर्दमक, कैलाश और अरुणप्रभ। ये आवास पर्वत चाँदीमय है। देव, आवासपर्वत, प्राषाद एव राजधानी इन्हीं नामों से है।

**सुस्थित देव–** मेरु पर्वत से पश्चिम में लवण समुद्र में १२००० योजन जाने पर १२००० योजन का ल बा चौड़ा गोल गौतम द्वीप है। जो पद्मवर वेदिका और वनख ड़ से घिरा हुआ है। उसके बीच में अतिक्रीड़ावास नामक भवन है, जो सैकड़ों ख भो(स्त भो)पर बना हुआ है। यहाँ सुस्थित देव रहता है। गौतम द्वीप से पश्चिम में अन्य लवण समुद्र में किनारे से १२००० योजन दूर सुस्थिता नामक राजधानी है। देवों का जन्म, निवास आदि राजधानी में होता है और आवास पर्वत आदि पर समय-समय पर सपरिवार आते, जाते, बैठते एव मर्यादित समय रहते हक्त।

**च द्रसूर्यद्वीप–** ज बूद्वीप के सूर्य च द्र के द्वीप आभ्य तर लवण समुद्र में है। आभ्य तर लवण समुद्र के च द्रसूर्य के द्वीप आभ्य तर में हक्त। और बाह्य के बाह्य में है। घातकी ख ड़ के च द्रसूर्य के द्वीप कालोद समुद्र

के भीतरी किनारे पर है और कालोद समुद्र के चन्द्र सूर्यों के द्वीप बाह्य किनारे पर है। पुष्कर द्वीप और पुष्कर समुद्र के च द्र सूर्य के द्वीप पुष्कर समुद्र में है। इस प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिये।

च द्र के च द्र द्वीप पूर्व दिशा में है और सूर्य के सूर्य द्वीप पश्चिम दिशा में है। ये सभी समुद्री किनारे से १२००० योजन समुद्र में है और १२००० योजन के ल बे चौड़े गोल है। इनकी राजधानी अपनी दिशा में उसी नाम के अन्य द्वीप समुद्र में है।अ त में जिन समुद्रों के बाद उस नाम का द्वीप समुद्र आगे न हो तो उस द्वीप के च द्रसूर्य के द्वीप अगले समुद्र में है और उस समुद्र के चन्द्रसूर्यों के द्वीप उसी समुद्र में बाह्य वेदिका से १२००० योजन समुद्र में जाने पर है। उनकी राजधानी द्वीप वालों की द्वीप में और समुद्र वालों की समुद्र में है। किनारे से (वेदिका से) अस ख्य अस ख्य योजन दूर है अथवा दोनों की राजधानी उसी समुद्र में है द्वीप की आभ्य तर किनारे से और समुद्र की बाह्य किनारे से अस ख्य योजन दूर समुद्र में है।

**उपस हार–** लवण समुद्र का जल ऊँचा उठा हुआ है और वह क्षुभित जल है। अन्य समुद्रों का जल समतल है और अक्षुभित जल है। लवण समुद्र में स्वाभाविक वर्षा होती है अन्य समुद्रों में नहीं होती है। अप्काय के पुद्गलों का चय उपचय होता है, पुराने मरते हक्त नये जन्मते रहते हक्त। लवण समुद्र में किनारे से पानी क्रमशः बढ़ते हुए है अर्थात् ९५ योजन जाने पर एक योजन पानी की गहराई बढ़ती है। ९५००० योजन जाने पर एक हजार योजन गहराई बढ़ती है। और ऊँचाई भी ७०० योजन क्रमशः बढ़ती है। उसके बाद १०००० योजन क्षेत्र की चौड़ाई में लवण-शिखा है जो समभूमि से १६०००योजन ऊँची गई है। सदा शाश्वत इसी अवस्था में रहती है। अन्य सभी समुद्रों में पानी की गहराई एक किनारे से दूसरे किनारे तक सर्वत्र समान १००० योजन है। गोतीर्थ और दगमाल अन्य समुद्रों में नहीं है। लवण समुद्र गोतीर्थ स स्थान, नावा स स्थान, अश्वस्क ध स स्थान से स स्थित गोल वलयाकार है। सोलह हजार योजन ऊँचा, हजार योजन ऊँड़ा एव सतरह हजार योजन का सर्वाग्र है ।





इतना ऊँचा जल होते हुए भी लोक स्वभाव से तथा मनुष्य देव आदि के पुण्य प्रभाव से एव धर्माचरणी जीवों के धर्म प्रभाव से वह ज बूद्वीप को जल मग्न नहीं करता है ।

**प्रश्न–१४ : मनुष्य क्षेत्र के अन्य द्वीपसमुद्रों स ब धी मुख्य ज्ञेय तत्त्व क्या है ?**

**उत्तर– धातकी ख ड द्वीप–** लवण समुद्र के चौतरफ घिरा हुआ वलयाकार चार लाख योजन के विस्तार वाला धातकी ख ड़द्वीप है। इसके दो विभाग है पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्ध। दो मालिक देव है– १.सुदर्शन २. प्रियदर्शन। एक पल्योपम की इनकी स्थिति है। दो विभाग होने से यहाँ भरतादि क्षेत्र एव पर्वत नदिया आदि एक नाम के दो दोत्तह। १२ सूर्य १२ च द्र त्तह। विजय आदि चार दरवाजे ज बूद्वीप के द्वारों के समनहक्त। पद्मवरवेदिका और वनख ड़ से यह द्वीप घिरा हुआ है।

**कालोदधि समुद्र–** घातकीख ड़ को घेरे हुए आठ लाख योजन विस्तार वाला कालोदधि समुद्र है। वलयाकार है। चार द्वार है। काल-महाकाल नामक दो मालिक देव है। ४२ च द्र, ४२ सूर्य प्रकाश करते हक्त। इस समुद्र का जल प्राकृतिक जल के स्वभाव और आस्वाद वाला है।

**पुष्करद्वीप–** १६ लाख योजन का विस्तार वाला वलयाकार कालोदधि समुद्र को घेरे हुए पुष्करद्वीप है। वह पद्मवरवेदिका एव वनख ड़ से घिरा हुआ है। पद्म और पु ड़रीक नामक दो मालिक देव है। पद्म, महापद्म नामक वृक्षों पर जिनके प्राषादावत सक हक्त। एक पल्योपम की स्थिति है। १४४ च द्र १४४ सूर्य इस द्वीप में प्रकाश करते हक्त। विजय आदि ४ द्वार हक्त।

इस द्वीप के बीचोबीच वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत है, जिससे इस द्वीप के आभ्य तर और बाह्य दो विभाग हो गये हक्त। आभ्य तर विभाग में ही भरत आदि क्षेत्र है। बाह्य विभाग में ऐसे क्षेत्र विभाजन नहीं है ये दोनों विभाजित क्षेत्र ८-८ लाख योजन विस्तार वाले हक्त। एक विभाग में ७२ च द्र, ७२ सूर्य आदि हक्त ।

**समयक्षेत्र–मनुष्यक्षेत्र–** ढ़ाईद्वीप और दो समुद्र पर्यंत समय क्षेत्र है। इतने क्षेत्र में सूर्य च द्र आदि भ्रमण करते हक्त, दिन रात्रि के विभाजन रूप

समय का वर्तन होता है, बोध होता है । इतने क्षेत्र में ही मनुष्यों का जन्म होता है, अतः इसे मनुष्य क्षेत्र या समय क्षेत्र कहा गया है। इसमें लवण और कालोद समुद्र हक्त ज बूद्वीप और घातकी ख ड़ दो द्वीप है एव मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व तक का अर्द्ध पुष्करद्वीप है ।

**मनुष्य क्षेत्र में च द्रादि का ज्ञान-** इस मनुष्य क्षेत्र में कुल १३२ च द्र १३२ सूर्य प्रकाश करते हक्त, भ्रमण करते हक्त । एक एक च द्र सूर्य युगल के साथ २८ नक्षत्र ८८ ग्रह और ६६१७५ कोड़ाकोड़ी तारागण का परिवार होता है ।

दो च द्र दो सूर्य परिवार का एक पिटक-गोला(राउन्ड)होता हक्त, ऐसे ६६ पिटक मनुष्य लोक में है । च द्र की दो और सूर्य की दो यों च द्र सूर्य की चार प क्तिया मनुष्य लोक में हक्त । एक प क्ति में ६६-६६ स ख्या होती है, ऐसी प क्तियाँ नक्षत्र की ५६, ग्रह की १७६ होती है। **यों मनुष्य क्षेत्र में कुल पिटक-गोला(राउन्ड) ६६ है और प क्तियाँ कुल च द्र की-२+ सूर्य की-२+ग्रह की-१७६+नक्षत्र की-५६=२३६ है ।**

मनुष्यक्षेत्र में च द्रसूर्य के ग्रह नक्षत्र योग बदलते रहते हक्त । अतः यहाँ अनवस्थित योग होते हक्त । नक्षत्र और ताराओं के अवस्थित म ड़ल होते हक्त, सूर्य च द्र दोनों का म ड़ल परिवर्तन होता रहता है किन्तु वे ऊपर नीचे नहीं होते हक्त । च द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र के चाल विशेष से एव योग स योग से मनुष्यों के सुख दुख का ज्ञान होता हक्त ।

सूर्य बाहर से आभ्य तर म ड़लों में चलता है तब ताप क्षेत्र क्रमशः बढ़ता जाता है । जब आभ्य तर म ड़ल से बाहर के म ड़लों की तरफ चलता है । तब क्रमशः ताप क्षेत्र घटता रहता है । च द्र के साथ चार अ गुल नीचे कृष्ण राहु सदा चलता रहता है, जिससे च द्र की कलाओं की हानि वृद्धि होती रहती है ।

**ढ़ाईद्वीप में स ख्या परिज्ञान-** च द्रसूर्य ज बुद्वीप में दो-दो, लवण समुद्र में चार चार और धातकी ख ड़ में १२-१२ हक्त । आगे कालोदधि आदि द्वीप समुद्र के च द्रसूर्य की स ख्या जानना हो तो उसके पूर्व के अन तर द्वीपसमुद्र के च द्र सूर्य की स ख्या को तिगुणा करके उसके पहले के द्वीपसमुद्रों के सभी च द्रों की स ख्या जोड़ने पर जो स ख्या आयेगी वही





उस द्वीप समुद्र के च द्रों की या सूर्यों की स ख्या होगी, यथा- धातकीख ड़ के १२ च द्र है तो १२x३=३६+४+२=४२ कालोदधि की च द्र सूर्य की स ख्या है। फिर ४२x३=१२६+१२+४+२=१४४ पुष्कर द्वीप के च द्र सूर्यों की स ख्या है ।

यह गणित ढ़ाई द्वीप में और गतिमान च द्र-सूर्यों के लिये समझना । ढ़ाई द्वीप के बाहर च द्र-सूर्य स्थिर है और उनका परस्पर का अ तर भी स्थिर है वह अ तर अपने पिटक(गोलचक्र) में होता है। वहाँ प क्तिया नहीं बनती है। अपने पिटक में च द्र से सूर्य ५० हजार योजन दूर होता है और उस सूर्य से अगला च द्र ५० हजार योजन होता है। यों च द्र से च द्र और सूर्य से सूर्य १ लाख योजन दूर होते हक्त । प्रत्येक पिटक से अगला पिटक भी १ लाख योजन दूर होता है। जिससे बाह्य अर्ध पुष्कर द्वीप में आठ पिटक होते हक्त क्योंकि उसकी चौड़ाई आठ लाख योजन की है और एक-एक पिटक १ लाख योजन के अ तर से होते हक्त ।

**ढ़ाई द्वीप के बाहर द्वीप-समुद्र :-**

**प्रश्न-१५ : ढ़ाई द्वीप(मनुष्य क्षेत्र) के बाहर के द्वीप समुद्र कौन से हक्त ? उनका वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** मनुष्यक्षेत्र के बाहर द्वीप समुद्रों की ल बाई चौड़ाई आदि स ख्याता योजन रूप कही गई है । पुष्कर द्वीप से ल बाई, चौड़ाई, परिधि, च द्र और सूर्य आदि अस ख्य कहे गये हक्त । चार द्वार, पद्मवर वेदिका, वनख ड़ सभी द्वीप समुद्रों के हक्त । दो दो मालिक देव हक्त ।

| द्वीप | मालिक देव | समुद्र | मालिक देव |
|---|---|---|---|
| ७ वरुण द्वीप | वरुण-वरुणप्रभ | ८ वरुण समुद्र | वारुणी-वारुणीकता |
| ९ क्षीर द्वीप | पुंडरीक-पुष्कर दंत | १० क्षीर समुद्र | विमल-विमलप्रभ |
| ११ घृत द्वीप | कनक-कनकप्रभ | १२ घृत समुद्र | कांत-सुकांत |
| १३ क्षोदवर द्वीप | सुप्रभ-महाप्रभ | १४ क्षोदवर समुद्र | पूर्णभद्र-मणिभद्र |
| १५ नंदीश्वर द्वीप | चैत्यवृक्ष-महाचैत्यवृक्ष | १६ नंदीश्वर समुद्र | सुमन-सोमनस |
| १७ अरुण द्वीप | अशोक-वितशोक | १८ अरुण समुद्र | सुभद्र-सुमनभद्र |
| १९ अरुणवर द्वीप | अरुणवर भद्र-अरुणवर महाभद्र | २० अरुणवर समुद्र | अरुणवर-अरुणमहावर |

इसके बाद द्वीप के नाम के साथ "भद्र" और समुद्र के नाम के साथ "वर" लगाकर मालिकदेव कहना।

२१.अरुणवरावभास द्वीप २२.अरुणवरावभास समुद्र २३.कु ड़लद्वीप २४.कु ड़लोद समुद्र २५.कु ड़लवरद्वीप २६. कु ड़लवर समुद्र २७. कु ड़लवराभास द्वीप २८. कु ड़लवराभास समुद्र २९. रुचक द्वीप(अस ख्य योजन का विस्तार परिधि कहना)३०.रुचक समुद्र ३१.रुचकवर द्वीप ३२. रुचकवर समुद्र ३३. रुचकवराभास द्वीप ३४. रुचकवराभास समुद्र। जितने भी लोक में शुभ नाम है एव शुभ वर्ण, शुभ ग ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श हक्त; आभरण, वस्त्र, पृथ्वी, रत्न, निधि, द्रह, नदी, पर्वत, क्षेत्र, विजय, कल्प, आवास, कूट, नक्षत्र, च द्र, सूर्य आदि हक्त उन नाम से त्रिप्रत्यवतार नाम के द्वीप समुद्र हक्त। यथा- हारद्वीप, हारसमुद्र, हारवर द्वीप, हारवरसमुद्र, हारवरावभास द्वीप, हारवरावभास समुद्र इसी तरह कथन करना, यों अ त में सूरवरावभास समुद्र; फिर देवद्वीप-देव समुद्र, नागद्वीप-नागसमुद्र, यक्षद्वीप-यक्षसमुद्र, भूतद्वीप-भूतसमुद्र, स्वय भूरमणद्वीप-स्वय भूरण समुद्र। सभी द्वीपों में बावड़िया हक्त उसका पानी इक्षुरस स्वभाव वाला है। उत्पात पर्वत हक्त वे सभी वज्रमय हक्त।

**न दीश्वर द्वीप-** इस द्वीप में चारों दिशाओं में चौड़ाई के बीचो बीच में चार अ जन पर्वत हक्त। जो ८४००० योजन के ऊँचे हक्त। १००० योजन भूमि में हक्त। ८५००० योजन सर्वाग्र हक्त। भूमि पर १०००० योजन का विस्तार है जो क्रमशः घटते घटते उपर १००० योजन का विस्तार है। वे पर्वत गोपुच्छ स स्थान स स्थित है। पद्मवरवेदिका और वनख ड़ से घिरे हुए हक्त। ऊपरी शिखर के मध्य भाग में सिद्धायतन है [***अथवा मालिक देव का भवन है क्योंकि गोपुच्छ स स्थान के पर्वतों के शिखर पर उनके मालिक देव के भवन का वर्णन क चन पर्वत, जमग पर्वत आदि के मूलपाठ में आया है।***]

**सिद्धायतन-** १०० योजन ल बा ५० योजन चौड़ा ७२ योजन ऊँचा अनेक ख भों(स्त भों)पर बना हुआ है। उसके चार द्वार हक्त, यथा- देवद्वार आसुरद्वार





नागद्वार सुपर्णद्वार। ये द्वार १६ योजन ऊँचे ८ योजन चौड़े हक्त। द्वार के तोरण(मुख म ड़प)प्रेक्षाधर,स्तूप चैत्यवृक्ष आदि विजया राजधानी के द्वार वर्णन के समान है। महेन्द्रध्वज, न दा पुष्करिणी एव ४८००० भद्रासन है। १०८ जिनपड़िमा आदि सूर्याभदेव वर्णन के समान है।

**बावड़िया- पूर्व दिशा** के अ जन पर्वत के चारों दिशाओं में चार न दा- पुष्करिणी हक्त, यथा- न दुत्तरा, न दा, आन दा और न दीवर्द्धना। ये न दा- पुष्करिणी एक लाख योजन की ल बी चौड़ी १० योजन ऊँड़ी है। वेदिका एव वनख ड़ सहित है।

**दधिमुखा-** इन चार-चार बावड़ियों के बीच में एक दधिमुख पर्वत है। जो ६४००० योजन ऊँचा १०००० योजन ल बा चौड़ा है।१००० योजन भूमि में है। शिखर पर सिद्धायतन है।

पूर्व दिशा के अ जन पर्वत के समान ही चारों दिशा के अ जन पर्वतों की चार चार बावड़िया और उसमें दधिमुख पर्वत है। इन बावड़ियों के नाम **दक्षिणी** अ जन पर्वत के- भद्रा, विशाला, कुमुदा, पु ड़रिकिणी। **पश्चिमी** अ जन पर्वत के- न दीसेना, अमोघा, गोस्तुभा, सुदर्शना। **उत्तरी** अ जन पर्वत के- विजय, वैजय ती, जयति, अपराजिता। यहाँ पर बहुत से भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी, वैमानिक देव चौमासी, स वत्सरी पर्वों के दिन, प्रतिपदा के दिन तीर्थंकरों के जन्मादि के समय और अन्य भी अनेक कार्यों से यहाँ आते हक्त। अष्टान्हिका महोत्सव करते हक्त एव सुखपूर्वक यहाँ आमोद प्रमोद करते हक्त।

**द्वीपसमुद्र का प्रकीर्ण विषय-** ज बुद्वीप नाम के द्वीप अस ख्य है, लवण समुद्र नाम के समुद्र अस ख्य है। इस प्रकार धातकीख ड़, कालोदधि यावत् सूर्य नामक द्वीप भी अस ख्य है। उसके बाद १. देव द्वीप एक है, फिर क्रमशः २. नाग ३. यक्ष ४. भूत और ५. स्वय भूरमण ये पाँचों द्वीप और समुद्र एक एक है।

कालोद समुद्र, पुष्कर समुद्र, स्वय भूरमण समुद्र में स्वाभाविक जल है। लवण, क्षीर, घृत और वरूण इन चार समुद्रों में पानी स्वत त्र नाम सदृश रस वाला है।शेष सभी समुद्रों का जल प्रायः इक्षु रस के सदृश है। लवण समुद्र कालोदधि समुद्र और स्वय भूरमण समुद्र में

अत्यधिक मच्छ कच्छ है, अन्य समुद्रों में कम है । इनमें क्रमशः मच्छों की सात, नव और साड़े बारह लाख कुलकोड़ि योनी है। लवण में मच्छ कच्छों की उत्कृष्ट ५०० योजन की अवगाहना है। कालोदधि आदि में उत्कृष्ट ७०० योजन की अवगाहना है। स्वय भूरमण समुद्र में उत्कृष्ट १००० योजन की अवगाहना के मच्छ कच्छ है ।

तिर्छे लोक में अस ख्य द्वीपसमुद्र है वे अढ़ाई उद्धार सागरोपम के समय तुल्य है। प्रायः सभी जीव यहाँ पर पृथ्वीकायपने यावत् त्रस-कायपने अनेकबार या अन तबार उत्पन्न हो चुके हक्त ।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर च द्र के साथ अभिजित नक्षत्र का स्थिर योग है और सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र का स्थिर योग हक्त। क्यों कि वहाँ च द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे सभी स्थिर हक्त ।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर स्वाभाविक वर्षा नहीं होती है। घर गाँव आदि नहीं होते, मनुष्यों का गमनागमन स्वाभाविक नहीं होता है। चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, साधु-साध्वी आदि नहीं होते हक्त। वैक्रिय से, विद्या से एव पर प्रयोग से जा सकते हक्त। दिन, रात आदि का काल ज्ञान नहीं होता है। अग्नि नहीं होती है। ग्रहण, प्रतिच द्र, इन्द्रधनुष आदि नहीं होतेहक्त। मनुष्य क्षेत्र में सूर्य का तापक्षेत्र ऊर्ध्वमुखी कद बपुष्प के स स्थान वाला होता है। मनुष्य क्षेत्र के बाहर पक्की ईंट के समान ताप क्षेत्र होता है। वहाँ सदा च द्र सूर्य का मिश्रित प्रकाश होता है ।

**इन्द्र विरह–** च द्र सूर्य ज्योतिषेन्द्र का विरह उत्कृष्ट ६ महीनों का होता है। उतने समय तक २-४ सामानिकदेव मिलकर उस रिक्त स्थान की पूर्ति करते हक्त अर्थात् अपने स पूर्ण ज्योतिष परिवार का आधिपत्य धारण करतेहक्त ।

**इन्द्रिय विजय–** शुभ शब्द रूप ग ध रस स्पर्श वाले पुद्गल अशुभ में परिवर्तित हो सकते हक्त और अशुभ पुद्गल शुभ में बदल सकते हक्त। कोई भी पुद्गल फेंकने पर पहले उसकी तीव्र गति होती है धीरे धीरे उसकी म दगति हो जाती है। देवता की गति शीघ्र से शीघ्रतर होती है। इसलिये वह कोई चीज को फेंक कर पुनः उसे ग्रहण कर पकड़ सकता है। देव बाहर के पुद्गल ग्रहण करके ही कोई भी उत्तर वैक्रिय





क्रिया को सफल कर सकता है ।

**प्रश्न-१६ : ज्योतिषी म ड़ल स ब धी परिचय-परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** मेरुपर्वत से ११२१ योजन दूर से ज्योतिष म ड़ल प्रार भ होता है और लोका त से ११११ योजन दूर भीतर तक रहता है। रत्नप्रभा पृथ्वी की(तिरछालोक की) समभूमि से ७९० योजन दूर ऊँचे ज्योतिष म ड़ल प्रार भ होता है। ९०० योजन की ऊँचाई पर ज्योतिष म ड़ल पूर्ण हो जाता है अर्थात् समभूमि से ९०० योजन ऊँचाई के बाद कोई भी सूर्य च द्र ग्रह नक्षत्र ताराओं के विमान नहीं है। इस प्रकार कुल ११० योजन में ज्योतिषी म ड़ल क्षेत्र है। समभूमि से सूर्य विमान ८०० योजन ऊँचा है, च द्र विमान ८८० योजन ऊँचा है। नक्षत्रों में अभिजित नक्षत्र सबसे आभ्य तर चलता है। मूल(वृश्चिक)नक्षत्र सबसे बाह्य चलता है। स्वाति सबसे ऊपर और भरणी सबसे नीचे चलता है। तारागण सूर्य से नीचे, ऊपर तथा समकक्ष भी चलते हक्त।

**स स्थान और माप–** पाँचों ज्योतिषियों के विमान अर्द्ध च द्राकार है अर्थात् अर्ध कपित्थ फल के समान है। ५६/६१ योजन का ल बा चौड़ा गोल च द्र विमान है। ४८/६१ योजन का सूर्य विमान है । आधा योजन ग्रह का विमान है। एक कोस नक्षत्र विमान और आधा कोष का तारा विमान ल बा चौड़ा और गोल है। इन विमानों की ल बाई से जाड़ाई आधी है और परिधि साधिक तीन गुणी है ।

**वाहक देव–** च द्र विमान को १६००० देव उठाते हक्त। प्रत्येक दिशा में ४००० देव उठाते हक्त। पूर्व में सि ह रूप से, दक्षिण में हाथी के रूप से, पश्चिम में बैल के रूप से और उत्तर में घोड़े के रूप में वे देव रहतेहक्त। इसी प्रकार सूर्य विमान को भी १६ हजार देव उठाते हक्त। ग्रह विमान को आठ हजार, नक्षत्र विमान को चार हजार और तारा विमान को चारों दिशाओं में कुल दो हजार देव उठाते हक्त। जिसके प्रत्येक दिशा में ५००-५०० देव उठाते हक्त ।

**गति ऋद्धि–** च द्र से सूर्य की चाल तेज है, सूर्य से ग्रह की, ग्रह से नक्षत्र की और नक्षत्र से ताराओं की चाल तेज होती है। तारागण से नक्षत्र ऋद्धिमान होते है। नक्षत्र से ग्रह ऋद्धिवान है, ग्रह से सूर्य ऋद्धिमान

है, सूर्य से च द्र ऋद्धिमान है। इस तरह ज्योतिषियों में च द्र सबसे अधिक ऋद्धिमान है। तारा विमानों का आपस में अ तर जघन्य ५०० धनुष का रहता है। उत्कृष्ट दो कोश का अ तर रहता है। पर्वत, कूट आदि के कारण अ तर जघन्य २६६ योजन, उत्कृष्ट १२२४२ योजन का होता है।

देवता अपनी सुधर्मा सभा में सारे परिवार और ऋद्धि स पदा सहित बैठकर आमोद प्रमोद कर सकते है। दैविक दैहिक सुखों को उपभोग कर सकते हक्त किंतु मैथुन सेवन नहीं करते। क्योंकि वहाँ माणवक चैत्यस्त भ पर अनेक जिन दाढ़ाएँ है जो देवों के अर्चनीय पूजनीय है। चद्र देवेन्द्र के ४ अग्रमहिषी होती है। एक देवी ४००० देवी विकुर्वित करती है यों कुल १६००० देवी का उनका परिवार त्रुटित कहलाता है।

**प्रश्न-१७ : लवण समुद्र में द्वीप, पाताल कलशे और आवास पर्वत आदि किस प्रकार वर्णित है ?**

**उत्तर** - लवण समुद्र के सूर्य द्वीप तथा च द्र द्वीप के अधिपति सुस्थित देव का निवास स्थान रूप गौतमद्वीप है। द्वीप के बाद के समुद्र में उस पूर्वद्वीप के और खुद समुद्र के सूर्य च द्रों के द्वीप जल में आये हुए हक्त। लवण समुद्र में ४ बड़े और ७८८४ छोटे पातालकलशे है जो दोनो तरफ ९५०००-९०हजार योजन आगे पर बीच के ३३३४८ हजार योजन क्षेत्र में जल निमग्न है। लवण शिखा को सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी वाले देव वेल धर अणुवेल धर नागकुमार जाति के हक्त। उनके आवास पर्वत लवण समुद्र में हक्त। इस सभी के माप स ख्या आदि इस प्रकार है-२ गाउ

| नाम द्वीप | किनारे से समुद्र में योजन | आयाम विष्क भ योजन | परिधि यो. देशोन | जल से बाहर द्वीप तरफ योजन | जल से बाहर समुद्र तरफ |
|---|---|---|---|---|---|
| राजधानी अन्य समुद्र में | १२००० योजन | १२००० योजन | ३७९४८ यो. देशोन | २ गाउ | २ गाउ |

**पाताल कलश :-**

| पाताल कलश | स ख्या | ऊ डाई | मूल में विस्तार | मध्य में विस्तार | उपर विस्तार | ठीकरी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| बड़ा | ४ | १ लाख यो. | १०,००० यो. | १ लाख यो. | १०,००० यो. | १,००० यो. |
| छोटा | ७८८४ | १,००० यो. | १०० यो. | १,००० यो. | १०० यो. | १० यो. |





**आवास पर्वत :-** (*नोट :-* वेलंधर-अणुवेलंधर दोनों का परिमाण समान है।)

| | समुद्र से ऊ चाई | समुद्र में ऊ डाई | चौडाई मूल में | चौडाई मध्य में | उपर चौडाई | समुद्र में |
|---|---|---|---|---|---|---|
| वेल धर-अणुवेलंधर | १७२१ योजन | ४३०॥ योजन | १०२२ योजन | ७२३ योजन | ४२४ योजन | ४२,००० योजन |

| क्षेत्र | चद्र | सूर्य | ग्रह | नक्षत्र | तारागण |
|---|---|---|---|---|---|
| एक च द्र परिवार | १ | १ | ८८ | २८ | ६६,९७५ क्रोडाक्रोडी |
| ज बूद्वीप | २ | २ | १७६ | ५६ | १,३३,९५० क्रोडाक्रोडी |
| लवण समुद्र | ४ | ४ | ३५२ | १२२ | २,६७,९०० क्रोडाक्रोडी |
| धातकी ख ड | १२ | १२ | १०५६ | ३३६ | ८,०३,७०० क्रोडाक्रोडी |
| कालोदधि समुद्र | ४२ | ४२ | ३६९६ | ११७८ | २८,१२,९५० क्रोडाक्रोडी |
| आभ्य तर पुष्कर | ७२ | ७२ | ६३३६ | २०१६ | ४८,२२,२०० क्रोडाक्रोडी |
| समय क्षेत्र | १३२ | १३२ | ११६१६ | ३६५६ | ८८,४४,७०० क्रोडाक्रोडी |
| पुष्कर द्वीप | १४४ | १४४ | १२६७२ | ४०३२ | ९६,४४,४०० क्रोडाक्रोडी |

**प्रश्न-१८ : ज्योतिषी विमानों की स ख्या एव माप विस्तार कैसा है ?**

**उत्तर** - प्रस्तुत में ज बूद्वीप से लेकर पुष्करार्ध द्वीप तक (अढाई द्वीप समुद्रो तक) के ***सूर्य च द्र का परिवार*** कोष्टक में दर्शाया जाता है तथा दिखने वाले च द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र तारओं के ***विमानों की ल बाई-चौड़ाई और जाड़ाई*** भी कोष्टक द्वारा दिखाई जाती है-

| नाम | आयाम-विष्क भ | जाडाई | वाहक देव |
|---|---|---|---|
| च द्र विमान | $\frac{५६}{६१}$ योजन | $\frac{२८}{६१}$ योजन | १६००० |
| सूर्य विमान | $\frac{४८}{६१}$ योजन | $\frac{२४}{६१}$ योजन | १६००० |
| ग्रह विमान | $\frac{१}{२}$ योजन | $\frac{१}{४}$ योजन | ८००० |
| नक्षत्र विमान | $\frac{१}{४}$ योजन | $\frac{१}{२}$ कोश | ४००० |
| तारा विमान | $\frac{१}{२}$ कोश | ५०० धनुष्य | २००० |

**वैमानिक देवो :-**

| देवलोक | पृथ्वीपिंड योजन | विमान ऊ चाई | उत्कृष्ट अवगाहना | विमान वर्ण | अवधिज्ञान विषय |
|---|---|---|---|---|---|
| १-२ | २७०० | ५०० | ७ हाथ | ५ | १ नरक तक |
| ३-४ | २६०० | ६०० | ६ हाथ | ४ | २ नरक तक |
| ५-६ | २५०० | ७०० | ५ हाथ | ३ | ३ नरक तक |
| ७-८ | २४०० | ८०० | ४ हाथ | २ | ४ नरक तक |
| ९-१२ | २३०० | ९०० | ३ हाथ | १ | ५ नरक तक |
| नवग्रैवेयक | २२०० | १००० | २ हाथ | १ | ६/७ नरक तक |
| अनुत्तर विमान | २१०० | ११०० | १ हाथ | १ | त्रसनाडी |

**प्रश्न-१९ : वैमानिक देवों संबंधित परिचय, परिज्ञान किस प्रकार है ?**

**आधार-** पहला दूसरा देवलोक धनोदधि के आधार से रहे हुए हक्त । तीसरा चौथा पाँचवाँ देवलोक घनवाय प्रतिष्ठित है। छट्ठा सातवाँ आठवाँ उभय प्रतिष्ठित और उसके उपर के देवलोक सब आकाश प्रतिष्ठित है ।

**आकार भाव-** १,२,३,४,९,१०,११,१२वाँ देवलोक अर्ध च द्राकार है। शेष ५,६,७,८ वें देवलोक पूर्ण च द्राकार है।

**आवलिकाबद्ध विमान-** गोल, त्रिकोण और चौकोर क्रम से तीन तरह के होते हक्त। प्रकीर्णक विमान विविध आकार के हक्त। अणुत्तर विमान में गोल और त्रिकोण दो आकार के विमान है। विमानों का विस्तार अस ख्याता योजन एव स ख्याता योजन का है। विमान सुग धित





एव सुख स्पर्शवाले हक्त। सभी विमान सर्वरत्नमय है। आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट अस ख्य देव उत्पन्न होते हक्त। नवें देवलोक से अणुत्तर देव तक जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट स ख्याता उत्पन्न होते हक्त। देवों का शरीर और श्वासोश्वास सुग धमय होता है। अवधिज्ञान से देव ऊपर अपनी ध्वजा तक देखते हक्त। तिरछे अस ख्यद्वीप समुद्र तक देखते हक्त। देवों को भूख प्यास नहीं लगती है।

**विकुर्वणा-** देव स ख्याता या अस ख्याता सरीखे एव विभिन्न प्रकार के रूपों की विकुर्वणा करके उनसे यथेच्छ कार्य कर सकते हक्त। ग्रैवेयक एव अणुत्तर देवों में शक्ति है किन्तु वैक्रिय नहीं करते। ग्रैवेयक देवों को मनोज्ञ शब्द, रूप, ग ध, रस, स्पर्श का सुख है। अणुत्तर देवों को अणुत्तर शब्दादि का सुख है ।

**विभूषा-** देव और देवी वस्त्र आभरण रहित भी विभूषित शरीर वाले होते हैं और वैक्रिय द्वारा विविध आभूषण वस्त्रों से विशेष सुसज्जित शरीर वाले होते हक्त। ग्रैवेयक और अणुत्तर देव आभरण वस्त्र रहित ही विभूषित शरीर वाले होते हक्त।

**जीवों की उत्पत्ति-** सभी जीव देवलोक के पृथ्वीकाय रूप में यावत् त्रसकाय रूप में अनेक बार या अन त बार उत्पन्न हो चुके है। देवी का दूसरे देवलोक तक ही समझना और देव का ग्रैवेयक तक ही समझना। अणुत्तर विमान में देव रूप में जीव एक या दो बार ही उत्पन्न होता है।

**प्रश्न-२० : चारों गति स ब धी वर्णन रूप इस चतुर्विधा तीसरी प्रतिपत्ति का समापन किस प्रकार किया गया है ?**

**उत्तर-** नारकी देवता की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागर। तिर्यंच मनुष्य की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ३ पल्योपम। नारकी देवता की [illegible] ायस्थिति [illegible] त तीन पल्योपम और अनेक क्राड़पूव साधक है। नारकी देवता मनुष्य का अ तर उत्कृष्ट वनस्पतिकाल। तिर्यंच का अ तर उत्कृष्ट अनेक सौ सागरोपम का है।

## प्रतिपत्ति-४ : प चविधा जीव

**अल्पबहुत्व-**सबसे थोड़े मनुष्य, नारकी उससे अस ख्यगुणे, उससे देव

अस ख्यगुणे, उससे तिर्यंच अन तगुणे। यह चार प्रकार के स सारी जीवों का वर्णन पूरा हुआ।

**जीव के पाँच भेदों में स्थिति आदि का परिज्ञान :-**

| जीव | स्थिति | कायस्थिति | अ तर |
|---|---|---|---|
| एकेन्द्रिय | २२००० वर्ष | वनस्पतिकाल | २००० सागरोपम |
| सइन्द्रिय | १२ वर्ष | स ख्यातकाल | साधिक सख्यात वर्ष |
| बेइन्द्रिय | ४९ दिवस | स ख्यातकाल | वनस्पतिकाल |
| चौरेन्द्रिय | छ मास | स ख्यातकाल | वनस्पतिकाल |
| प चेन्द्रिय | ३३ सागरोपम | १००० सागरोपम साधिक | वनस्पतिकाल |
| अपर्याप्त | अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त(अन तकाल) | अनेक सो सागरोपम |
| एकेन्द्रिय पर्याप्त | अ तर्मुहूर्त न्यून २२००० वर्ष | स ख्याता हजार वर्ष | अन तकाल |
| बेइन्द्रिय पर्याप्त | अ तर्मुहूर्त न्यून १२ वर्ष | स ख्याता वर्ष | वनस्पतिकाल |
| तेइन्द्रिय पर्याप्त | अ तर्मुहूर्त न्यून ४९ दिवस | स ख्याता दिन | वनस्पतिकाल |
| चौरेन्द्रिय पर्याप्त | अ तर्मुहूर्त न्यून छ मास | स ख्याता मास | वनस्पतिकाल |
| प चेन्द्रिय पर्याप्त | अ तर्मुहूर्त न्यून ३३ सागरोपम | अनेक सो सागरोपम साधिक | वनस्पतिकाल |

**प्रश्न-१ : जीवों के ५ भेद किस प्रकार कहे गये हक्त ?**

**उत्तर-** इस चौथी प्रतिपत्ति में सारी जीवों के पाँच प्रकार इन्द्रिय की अपेक्षा से दर्शाये है, यथा एकेन्द्रिय जीव, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय एव प चेन्द्रिय जीव। इन पाँच प्रकार के समुच्चय जीवों की पाँच के अपर्याप्त जीवों की एव पाँच ही पर्याप्त जीवों की क्रमशः स्थिति, कायस्थिति और अ तर तथा अल्पबहुत्व इस प्रकार है-





# प्रतिपत्ति-५ : षड़विधा जीव

**अल्पबहुत्व-** (१) सबसे थोड़ा चौरेन्द्रिय का पर्याप्त (२) प चेन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक (३) बेइन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक (४) तेइन्द्रिय का पर्याप्त विशेषाधिक (५) प चेन्द्रिय का अपर्याप्ता अस ख्यगुणे (६) चौरेन्द्रिय अपर्याप्ता विशेषाधिक (७) तेइन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक (८) बेइन्द्रिय अपर्याप्ता विशेषाधिक (९) एकेन्द्रिय अपर्याप्त अन तगुणा (१०) सइन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक (११) एकेन्द्रिय पर्याप्त स ख्यात गुणा (१२) सइन्द्रिय पर्याप्त विशेषाधिक (१३) सइन्द्रिय विशेषाधिक।

**नोट-** इनकी जघन्य स्थिति कायस्थिति और अ तर तीनों अ तर्मुहूर्त है।

**प्रश्न-१ : जीवों के ६ भेद किस प्रकार किये जाते हक्त ?**

**उत्तर-** प्रस्तुत प्रतिपत्ति-५ में छकाया के जीवो को लेकर स सारी जीवों के-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ये छ भेद किये है। इन छ के अपर्याप्त जीव एव पर्याप्त जीव अवस्था को लेकर कुल १८ भेदों में स्थिति कायस्थिति अ तर अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है। उसके बाद सूक्ष्म के ५ भेद करके उनकी स्थिति आदि का कथन किया गया है, वह इस प्रकार है-

**जीव के छ भेदो में स्थिति आदि परिज्ञान :-**

| जीव | स्थिति | कायस्थिति | अतर | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| पृथ्वीकाय | २२००० वर्ष | अस ख्याता काल | वनस्पतिकाल | |
| अप्काय | ७००० वर्ष | अस ख्याता काल | वनस्पतिकाल | |
| तेउकाय | तीन अहोरात्रि | अस ख्याता काल | वनस्पतिकाल | |
| वायुकाय | ३००० वर्ष | अस ख्याता काल | वनस्पतिकाल | |
| वनस्पतिकाय | १०००० वर्ष | अन तकाल | पृथ्वीकाल | |
| त्रसकाय | ३३ सागरोपम | २००० सागरोपम स ख्यातवर्ष साधिक | वनस्पतिकाल | |
| पृथ्वीकाय अपर्याप्त | अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त (अस ख्य काल) | वनस्पतिकाल | ४ विशेषाधिक |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अप्काय | अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त | वनस्पतिकाल | ५ विशेषाधिक |
| अपर्याप्त तेउकाय | अ तर्मुहूर्त | (अस ख्य काल) अ तर्मुहूर्त | वनस्पतिकाल | ३ अस ख्यात गुणा |
| अपर्याप्त वायुकाय | अ तर्मुहूर्त | (अस ख्य काल) अ तर्मुहूर्त | वनस्पतिकाल | ६ विशेषाधिक |
| अपर्याप्त वनस्पतिकाय | अ तर्मुहूर्त | (अस ख्य काल) अ तर्मुहूर्त | पृथ्वीकाल | ११ अन त गुणा |
| अपर्याप्त त्रसकाय | अ तर्मुहूर्त | (अनंतकाल) अ तर्मुहूर्त | वनस्पतिकाल | २ अस ख्यातगुणा |
| अपर्याप्त | | (स ख्याताकाल) | | |
| **जीव** | **स्थिति** | **कायस्थिति** | **अतर** | **अल्पाबहुत्व** |
| पृथ्वीकाय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | स ख्याता हजार वर्ष | वनस्पतिकाल | ८ विशेषाधिक |
| अप्काय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | स ख्याता हजार वर्ष | वनस्पतिकाल | ९ विशेषाधिक |
| तेउकाय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | स ख्याता दिवस | वनस्पतिकाल | ७ संख्यात गुणा |
| वायुकाय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | स ख्याता हजार वर्ष | वनस्पतिकाल | १० विशेषाधिक |
| वनस्पतिकाय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | स ख्याता हजार वर्ष | पृथ्वीकाल (अन तकाल) | १२ स ख्यात गुणा |
| त्रसकाय पर्याप्त | उपरोक्त स्थिति से अतर्मुहूर्त न्यून | अनेक सो सागरोपम | वनस्पतिकाल | १ सब से थोडा |
| सूक्ष्म | अतर्मुहूर्त | पृथ्वीकाल | बादर काल | |
| सूक्ष्म पर्याप्त | अतर्मुहूर्त | अंतर्मुहूर्त (संख्यातकाल) | बादर काल | |
| सूक्ष्म अपर्याप्त | अतर्मुहूर्त | अंतर्मुहूर्त (असंख्यातकाल) | बादर काल | |
| सूक्ष्म चार स्थावर | अतर्मुहूर्त | पृथ्वीकाल | वनस्पतिकाल | |
| सूक्ष्म वनस्पति | अतर्मुहूर्त | पृथ्वीकाल | बादर काल | |





**बादर की कायस्थिति और अ तर :-**

| | कायस्थिति | अ तर |
|---|---|---|
| बादर | बादर काल | पृथ्वीकाल |
| पृथ्वी आदि चार बादर | ७० क्रोडाक्रोडी सागर | वनस्पतिकाल |
| प्रत्येक वनस्पति | ७० क्रोडाक्रोडी सागर | पृथ्वीकाल |
| बादर निगोद | ७० क्रोडाक्रोडी सागर | पृथ्वीकाल |
| समुच्चय निगोद | अढाई पुद्गल परावर्तन | पृथ्वीकाल |

**बादरकाल-** अस ख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, क्षेत्र से अ गुल के अस ख्यातवें भाग की श्रेणियों के प्रदेश तुल्य।

**अल्पबहुत्व-** सबसे थोड़ा सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्त विशेषाधिक सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्ता स ख्यातगुणा, सूक्ष्म पृथ्वीकाय पर्याप्ता विशेषाधिक, सूक्ष्म अप्काय पर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वायुकाय पर्याप्त विशेषाधिक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्त अस ख्यगुणा, सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्त स ख्यात गुणा।

**अल्पबहुत्व-** सबसे थोड़े बादर तेउकाय पर्याप्त, त्रसकाय के पर्याप्त अस ख्यगुणा त्रसकाय अपर्याप्त अस ख्यगुणा, प्रत्येक वनस्पति पर्याप्ता अस ख्यगुणा, बादर सं[illegible] अस ख्यगुणा, बादर अप्काय [illegible] तेउकाय [illegible] ख्यगुणा, बादर पृथ्वी, अप, वायु के अपर्याप्ता क्रमशः अस ख्यगुणे, बादर वनस्पति पर्याप्ता अन तगुणा, बादर वनस्पति अपर्याप्ता अस ख्यगुणा।

## प्रतिपत्ति-६ : सप्तविधा जीव

**निगोद-** सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद ये दोनों ही शरीर अस ख्यात [illegible]। इन दोनों निगोद के जीव अन त-अन त है। सबसे थोड़ा बादर निगोद शरीर, सूक्ष्म निगोद शरीर अस ख्यगुणा, बादर निगोद जीव

जीव के सात भेदों में स्थिति आदि का परिज्ञान :-

| जीव | स्थिति | कायस्थिति | अन्तर | अल्पबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| नरक | ३३ सागर | ३३ सागर | वनस्पतिकाल | ३ अस ख्यगुणा |
| तिर्यंच | ३ पल्य | वनस्पतिकाल | अनेक सो सागर | ७ अन तगुणा |
| तिर्यंचाणी | ३ पल्य | ३ पल्य ७ क्रोडपूर्व | वनस्पतिकाल | ४ अस ख्यगुणी |
| मनुष्य | ३ पल्य | ३ पल्य ७ क्रोडपूर्व | वनस्पतिकाल | २ अस ख्यातगुणा |
| मनुष्याणी | ३ पल्य | ३ पल्य ७ क्रोडपूर्व | वनस्पतिकाल | १ सब से थोडा |
| देव | ३३ सागर | ३३ सागर | वनस्पतिकाल | ५ अस ख्यातगुणा |
| देवी | ५५ पल्य | ५५ पल्य | वनस्पतिकाल | ६ अस ख्यातगुणी |

**प्रश्न-१ : इस प्रतिपत्ति में जीवों के ७ भेदों का वर्णन किस प्रकार दर्शाया है ?**

**उत्तर-** सात प्रकार के सब सारे जीव हैं (१) नारकी (२) तिर्यंच (३) तिर्यंचाणी (४) मनुष्य (५) मनुष्याणी (६) देव (७) देवी।

# प्रतिपत्ति-७ : अष्टविधा जीव

**प्रश्न-१ : इस प्रतिपत्ति में जीवों के ८ भेदों का वर्णन किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** स सारी जीव आठ प्रकार के है, यथा- (१) प्रथम समय के नैरयिक (२) अप्रथम समय के नैरयिक। इसी प्रकार (३-४) प्रथम अप्रथम समय के तिर्यंच (५-६) प्रथम अप्रथम समय के मनुष्य





# प्रतिपत्ति-८ : नवविधा जीव

(७-८) प्रथम अप्रथम समय के देव। प्रथम समय वालों की **स्थिति** एव **कायस्थिति** एक समय की ही है। अप्रथम समय वालों की स्थिति कायस्थिति एक समय कम की है। **अन्तर** तिर्यंच का अनेक सौ सागर। शेष सभी का वनस्पतिकाल ।

१. सबसे थोड़े प्रथम समय के मनुष्य २. अपढ़म समय के मनुष्य अस ख्यगुणा ३. प्रथम समय के नैरयिक अस ख्यगुणा ४. प्रथम समय के देव अस ख्यगुणा ५. प्रथम समय के तिर्यंच अस ख्य गुणा ६. अप्रथम समय के नैरयिक अस ख्यगुणा ७. अप्रथम समय के देव अस ख्यगुणा ८. अप्रथम समय के तिर्यंच अन तगुणा ।

**प्रश्न-१ : इस प्रतिपत्ति में जीवों के ९ भेदों का निरूपण [illegible]**

# प्रतिपत्ति-९ : दसविधा जीव

**उत्तर-** नव प्रकार के स सारी जीव हक्त-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय,बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय,चौरेन्द्रिय और प चेन्द्रिय । स्थिति कायस्थिति पूर्ववत् ।

**अल्पबहुत्व-** (१) सबसे थोड़ा प चेन्द्रिय (२) चौरेन्द्रिय विशेषाधिक (३) तेइन्द्रिय विशेषाधिक (४) बेइन्द्रिय विशेषाधिक (५) तेउकाय अस ख्यगुणा (६) पृथ्वी विशेषाधिक (७) अपकाय विशेषाधिक (८) वायुकाय विशेषाधिक (९) वनस्पति अन तगुणा ।

**प्रश्न-१ : इस प्रतिपत्ति में जीवों के १० भेदों का निरूपण किस प्रकार है ?**

**उत्तर**– दस प्रकार के स सारी जीव हक्त, यथा– १.प्रथम समय के एकेन्द्रिय २. अप्रथम समय के एकेन्द्रिय ***यावत्*** १०. अप्रथम समय के प चेन्द्रिय । इनकी स्थिति कायस्थिति अ तर पूर्ववत् ।

**अल्पबहुत्व**– १. सबसे थोड़े, प्रथम समय के प चेन्द्रिय २. प्रथम समय के चौरेन्द्रिय, तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय, एकेन्द्रिय क्रमशः विशेषाधिक। अप्रथम समय के पूर्ववत् ।

दस जीवों की नवमी प्रतिपत्ति पूर्ण हुई। यह स सारी जीवों के प्रकार रूप जीवाभिगम का प्रथम ख ड़ स पूर्ण हुआ। अब समस्त जीवों का वर्णन द्वितीय ख ड़ में किया जाता है।

# द्वितीय विभाग

# सर्व जीव प्रतिपत्ति– १ से ९ तक

**प्रश्न–१ : इस विभाग और ९ प्रतिपत्तियों का क्या परिचय है?**

**उत्तर**– प्रथम विभाग म े २ से १० तक के जीव के भेदों में स सारी जीवों का ही समावेश किया गया है और इस दूसरे विभाग की ९ ही प्रतिपत्ति के भेदों में सिद्धों को भी समाविष्ट किया गया है। इसलिये इस विभाग की प्रतिपत्ति के साथ **सर्वजीव** लगता है और प्रथम विभाग में **स सारीजीव** ऐसा कहा जाता है। यथा– सर्वजीवप्रतिपत्ति–१ ***यावत्*** सर्वजीव प्रतिपत्ति–९ तथा स सारी जीव प्रतिपत्ति–१ से स सारी जीव प्रतिपत्ति–९ तक। यों दोनों विभाग मिलकर कुल ९+९=१८ प्रतिपत्ति है। जिसमें पहली और तीसरी प्रतिपत्ति में विषय विस्तार अधिक है शेष में सीमित विषय है।

**प्रश्न–२ : सर्वजीव प्रथम प्रतिपत्ति में विषय निरूपण किस प्रकार है ?**

**उत्तर**– सिद्ध सहित सर्व जीवों का दो भेदों में समावेश हो सके ऐसे विविध प्रकार के दो दो भेद दर्शाये गये हक्त– यथा (१) सिद्ध-स सारी





सर्व जीवों को दो भेदों में (२) सकायिक-अकायिक (३) सयोगी-अजोगी (४) सलेशी-अलेशी (५) सकषायी-अकषायी (६) सशरीरी-अशरीरी । अल्पबहुत्व सिद्ध पुनः (७) सवेदी अवेदी (८) सकषायी-अकषायी (९) ज्ञानी-अज्ञानी (१०) साकारोपयोग-अनाकारोपयोग (११) आहारक-अनाहारक छद्मस्थ आहारक, केवली आहारक और छद्मस्थ अनाहारक, सजोगी केवली अनाहारक और अजोगी केवली सिद्ध अनाहारक (१२) भाषक-अभाषक (१३) चरित्र-अचरित्र । इन १३ ही बोलों की स्थिति, कायस्थिति और अ तर तथा अल्पबहुत्व इन चारों ही भावों का निरूपण इस प्रकार है–

| जीव प्रकार | भग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अ तर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| सिद्ध | २ | सादि अनत<br>अनादि अनत | – | अल्प |
| सवेदी | १ | अनादि अनत | – | अन त गुणा |
| अवेदी | २ | १ समय–<br>अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त/देशोन<br>अर्धपु० परा० | अल्प |
| **नोट :** भ ग–३ = अनादि अनत, अनादि सा त, सादिसा त तीसरा भ ग की कायस्थित होती है । भग–२ = सादि सात, सादि अनत । सादि अनत की कायस्थित होती है । इसी तरह सकषायी-अकषायी का वर्णन है । | | | | |
| ज्ञानी | २ | अत०/६६ सागर सा० | देशोन अर्धपु०परा० | अल्प |
| अज्ञानी | ३ | अत०/देशोन<br>अर्धपु०परा० | ६६ सागर साधिक | अन तगुणा |
| साकार उप० | | अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त | स ख्यात गुणा |
| अनाकार उ० | | अ तर्मुहूर्त | अ तर्मुहूर्त | अल्प |
| भाषक | | १ समय/<br>अ तर्मुहूर्त | अ तमुहूर्त/<br>वनस्पतिकाल | अल्प |
| अभाषक | २ | अ तर्मुहूर्त<br>वनस्पतिकाल | १ समय/<br>अ तर्मुहूर्त | अन तगुणा |
| चरम | १ | अनादिसा त | – | अन तगुणा |
| अचरम | २ | सादि अन त/<br>अनादि अन त | – | अल्प |
| छद्मस्थ आहारक | | जघन्य–२ समय<br>न्यून क्षुल्लकभाव<br>उत्कृष्ट–अस ख्य<br>काल चक्र | १ समय/२ समय | (१) अनाहारक अल्प<br>(२)आहारक अस० गुणा |

| जीव प्रकार | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|
| केवली आहारक | अंतर्मुहूर्त/देशोन क्रोडपूर्व | ३ समय | |
| छद्मस्थ अनाहारक | १ समय/२ समय | दो समय कम क्षुल्लकभव / असंख्यकाल | |
| सयोगीअना० | तीन समय | अंतर्मुहूर्त | |
| अयोगीअना० | अंतर्मुहूर्त | X | |
| सिद्ध अना० | भंग-१ सादि अनंत | X | |

**सर्व जीवो के तीन भेद :-**

**प्रश्न-३ : दूसरी प्रतिपत्ति में सर्व जीवों के तीन-तीन भेद किस प्रकार है ?**

**उत्तर-** इसमें सिद्ध सहित सर्व जीवों के तीन-तीन भेद इस प्रकार किये हैं- (१) सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि (२) कायपरित, कायअपरित, नोपरित-नोअपरित (३) पर्याप्त, अपर्याप्त, नोपर्याप्त-नोअपर्याप्त (४) सूक्ष्म, बादर, नोसूक्ष्म-नोबादर (५) सन्नी, असन्नि, नोसन्नी नोअसन्नि। (६) भवी, अभवी, नोभवी नोअभवी (७) त्रस, स्थावर, नोत्रस नोस्थावर इन सात ही प्रकारों में स्थिति आदि का निरूपण इस प्रकार है-

| जीव | भंग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| सम्यग्दृष्टि | २ | अंत०/६६ सागर | अंत०/अर्ध पु० परा० | २ अनंतगुणा |
| मिथ्यादृष्टि | ३ | अनादि अनंत/अनादि सांत/सादि सांत | अंतर्मुहूर्त/६६ सागर | ३ अनंतगुणा |
| सम्यग्मिथ्यादृष्टि | १ | अंतर्मुहूर्त | अंतर्मुहूर्त | १ अल्प |
| कायपरित | २ | अंत०/असं० उत्सर्पिणी अवसर्पिणी | वनस्पतिकाल | २ अनंतगुणा |
| संसार परित | १ | अनादि सांत | | ३ अनंतगुणा |
| काय अपरित | १ | वनस्पतिकाल | पृथ्वीकाल | ३ अनंतगुणा |





| जीव | भंग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| संसार अपरित | २ | अनादि अनंत / आनादि सांत | - | - |
| नोअपरित० | १ | सादि अनंत | - | २ अनंतगुणा |
| पर्याप्त | | अनेक सो सागर अधिक | अंतर्मुहूर्त | ३ संख्यातगुणा |
| अपर्याप्त | | अंतर्मुहूर्त(अनंतकाल) | अनेक सो सागर साधिक | २ अनंतगुणा |
| नो पर्याप्त० | | सादि अनंत | - | १ अल्प |
| सूक्ष्म | | पृथ्वीकाल | बादर बाल | ३ असं० गुणा |
| बादर | | बादरकाल | पृथ्वीकाल | २ अनंतगुणा |
| नो सूक्ष्म० | | सादि अनंत | - | १ अल्प |
| सन्नी | | अनेक सो सागर अधिक | वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| असन्नि | | वनस्पतिकाल | अनेक सो सागर साधिक | ३ अनंतगुणा |
| नोसन्नी० | १ | सादि अनंत | - | २ अनंतगुणा |
| भवी | १ | अनादि सांत | | ३ अनंतगुणा |
| अभवी | १ | अनादि अनंत | | १ अल्प |
| नोभवी० | १ | सादि अनंत | | २ अनंतगुणा |
| त्रस | | २००० सागर अधिक | वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| स्थावर | | वनस्पतिकाल | २००० सागर अधिक | ३ अनंतगुणा |
| नोत्रस० | | सादि अनंत | - | २ अनंतगुणा |

**सर्व जीवो के चार भेद :-**

| नाम | भंग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| मनयोगी | | १ समय/अंतर्मुहूर्त | अंत०/वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| वचनयोगी | | १ समय/अंत० | अंत०/वनस्पकिाल | २ सं० गुणा |
| काययोगी | | अंत०/वनस्पतिकाल | १ समय/अंत० | ४ अनंतगुणा |
| अयोगी | १ | सादि अनंत | | ३ अनंतगुणा |
| स्त्रीवेदी | | १ समय/ ११० पल्य +अनेक क्रोडपूर्व | अंतर्मुहूर्त/ वनस्पतिकाल | २ सं० गुणा |
| पुरुषवेदी | | अंतर्मुहूर्त/ अनेक सो सागर साधिक | १ समय/ वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| नपुंसकवेदी | | १ समय/ वनस्पतिकाल | अंतर्मुहूर्त/ अनेक सो सागर साधिक | ४ अनंतगुणा |
| अवेदी | २ | १ समय/अंत० | अंत०/अर्ध पु० परा० | ३ अनंतगुणा |
| चक्षुदर्शनी | | १००० सागरोपम साधिक | वनस्पतिकाल | २ असं०गुणा |
| अचक्षु दर्शनी | २ | अनादि अनंत/अनादि सांत | – | ४ अनंतगुणा |
| अवधि दर्शनी | | १ समय/ दो ६६ सागरोपम साधिक | वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| केवल दर्शनी | १ | सादि अनंत | – | ३ अनंतगुणा |
| संयत | | १ समय/देशोन क्रोडपूर्व | अंत०/अर्ध पु० परा० | १ अल्प |
| असंयत | ३ | अंत०/देशोन अर्ध पु० प० | १ समय/देशोन क्रो०पू० | ४ अनंतगुणा |
| संयतासंयत | | अंत०/देशोन क्रोडपूर्व | अंत०/अर्ध पु० परा० | २ असं०गुणा |
| नोसंयत० | १ | सादि अनंत | | ३ अनंतगुणा |

**प्रश्न–४ : सर्व जीवों के चार भेद कौन कौन से किये गये हक्त?**

**उत्तर–** तीसरी प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीवों के चार–चार भेद इस प्रकार किय हक्त– (१) मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी, अयोगी। (२) स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपु सकवेदी, अवेदी (३) चक्षुदर्शनी, अचक्षु दर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी(४) स यत, अस यत, स यतास यत, नोस यत नोअस यत नो स यतास यत(सिद्ध भगवान) ।





**सर्व जीवो के पा च भेद :-**

| नाम | भग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| क्रोधी | | अ तर्मुहूर्त / अ तर्मुहूर्त | १ समय / अ तर्मुहूर्त | ३ विशेषाधिक |
| मानी | | अ तर्मुहूर्त / अ तर्मुहूर्त | १ समय / अ तर्मुहूर्त | २ अन तगुणा |
| मायी | | अ तर्मुहूर्त / अ तर्मुहूर्त | १ समय / अ तर्मुहूर्त | ४ विशेषधिक |
| लोभी | | १ समय / अ तर्मुहूर्त | अंतर्मुहूर्त / अ तर्मुहूर्त | ५ विशेषाधिक |
| अकषायी | २ | १ समय / अ तर्मुहूर्त | अत०/ देशोन अर्ध पु० | १ अल्प |
| नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव, सिद्ध, ये पा च जीव के भेद है । इनकी कायस्थिति, अ तर आदि पूर्ववत् | | | | |

इन चार प्रकार के चार भेदों के जीवों की स्थिति, कायस्थिति, अ तर एव अल्पबहुत्व का निरूपण इस प्रकार किया गया है—

**प्रश्न–५ : सर्व जीवों के पाँच भेद कौन से है और तत्स ब धी क्या निरूपण किया गया है ?**

**उत्तर–** चौथी प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीवों के ५ भेद इस

**सर्व जीवो के छ भेद :-**

| नाम | भंग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| मतिज्ञानी | | अंत० / ६६ सागर अधिक | देशोन अर्ध पुद्गल | ३ विशेषाधिक |
| श्रुतज्ञानी | | अंतर्मुहूर्त / ६६ सागरोपम | देशोन अर्ध पुद्गल | ३ विशेषाधिक |
| अवधिज्ञानी | | १ समय / ६६ सागरोपम | देशोन अर्ध पुद्गल | २ असंख्यगुणा |
| मन:पर्यव० | | १ समय / देशोन क्रोडपूर्व | देशोन अर्ध पुद्गल | १ अल्प |
| केवलज्ञानी | १ | सादि अनंत | × | ४ अनंतगुणा |
| अज्ञानी | २ | अंत० / दे० अर्ध पु० प० | ६६ सागर साधिक | ५ अनंतगुणा |
| एकेन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय, अनिन्द्रिय ये छ भेद है । इनकी कायस्थिति आदि पूर्ववत् । | | | | |

| नाम | भंग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| औदारिक शरीरी | | ज० दो समय न्यून क्षुल्लकभव / असं० काल | १ समय / ३३ सागर | ३ असंख्यगुणा |
| वैक्रिय शरीरी | | १ समय / ३३ सागर अंतर्मुहूर्त अधिक | वनस्पतिकाल | २ असंख्यगुणा |
| आहारक शरीरी | | अंतर्मुहूर्त / अंतर्मुहूर्त | देशोन अर्ध पुद्गल | १ अल्प |
| तैजस-कार्मण-शरीरी | २ | अनादि अनंत / अनादि सांत | – | ५ अनंतगुणा |
| अशरीरी | १ | सादि अनंत | – | ४ अनंतगुणा |

प्रकार किये गये हक्त– (१) क्रोधी,मान,मायी,लोभी और अकषायी। (२) नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव एव सिद्ध। इन दो प्रकार से किये गये पाँचों भेदों के स्थिति आदि का कथन इस प्रकार है—

**प्रश्न–६ : सर्व जीवों के ६ भेद किस प्रकार कहे गये हक्त ?**

**उत्तर–** पाँचवीं प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीव के ६ भेद इस प्रकार किये हक्त– (१) मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी,

**सर्व जीवो के सात भेद :-**

| नाम | भग | कायस्थिति जघन्य/उत्कृष्ट | अंतर जघन्य/उत्कृष्ट | अल्पाबहुत्व |
|---|---|---|---|---|
| कृष्णलेशी | | ३३ सागर + अ तर्मुहूर्त | ३३ सागर + अत० | ७ विशेषाधिक |
| नीललेशी | | १० सागर+पल० का अस०भाग | ३३ सागर + अत० | ६ विशेषाधिक |
| कापोतलेशी | | ३ सागर+पल० का अस०भाग | ३३ सगार + अत० | ५ अनतगुणा |
| तेजोलेशी | | २ सागर+पल० का अस०भाग | वनस्पतिकाल | ३ सख्यातगुणा |
| पद्मलेशी | | १० सागर + अत० | वनस्पतिकाल | २ सख्यातगुणा |
| शुक्ललेशी | | ३३ सागर + अ त० | वनस्पतिकाल | १ अल्प |
| अलेशी | १ | सादि अनंत | | ४ अन तगुणा |
| पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय और अकाय ये सात भेद हैं । इनकी कायस्थिति आदि पूर्ववत् । | | | | |





केवलज्ञानी और अज्ञानी। (२) एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, प चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय (३) औदारिक शरीरी आदि पाँच एव अशरीरी। इन तीन प्रकार के ६–६ भेदों में स्थिति आदि का निरूपण इस प्रकार है–

**प्रश्न–७ : सर्व जीवों के सात भेद किस प्रकार होते हक्त ?**

**उत्तर–** छट्ठी प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीवों के सात भेद इस प्रकार दर्शाये हक्त– (१) कृष्णलेशी आदि ६ लेश्या वाले यावत् शुक्ललेशी [illegible] (२) पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक छ भेद और सातवा अकाय जीव इन दोनो प्रकारो के सात-सात भेदो में स्थिति आदि इस प्रकार हक्त–

**सर्व जीवो के आठ भेद :-**

| नाम | भग | कायस्थिति | अंतर |
|---|---|---|---|
| भीति अज्ञानी | ३ | देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन | ६६ सागर साधिक |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |
| [illegible] | | [illegible] | [illegible] |

**प्रश्न–८ : सर्व जीवों के आठ भेदों का निरूपण किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** सातवीं प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीवों के आठ भेद इस प्रकार दर्शाये हक्त– (१) पाँच ज्ञानी और तीन अज्ञानी जीव (२) नारकी, देव, देवी, तिर्यंच, तिर्यंचणी, मनुष्य, मनुष्याणी और सिद्ध भगवान। इन दोनों प्रकार के आठ भेदों की स्थिति आदि का कथन इस प्रकार है–

**प्रश्न–९ : सर्व जीवों के ९ तथा १० भेदों का निरूपण किस प्रकार है ?**

**उत्तर–** आठवीं प्रतिपत्ति में सिद्ध सहित सर्व जीवों के ९ भेद इस प्रकार दर्शाये हक्त– (१) एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, नारकी, तिर्यंच, देव, मनुष्य और सिद्ध भगवान। (२) प्रथम समय के नैरयिक, अप्रथम समय के नैरयिक यों प्रथम अप्रथम समय के तिर्यंच, मनुष्य, देव ये आठ तथा नौवें सिद्ध भगव त। इन दोनों प्रकार के ९ भेदों की

## सूत्रगत विविध विषय :-

| | | आयाम विष्क भ | परिधि | द्वारो का अ तर/ आकार | ऊ चाई | ऊ डाई | मूल में विस्तार | मध्य में विस्तार | उपर विस्तार |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | ज ब्बूद्वीप | १ लाख योजन | ३,१६, २२७ यो॰ ३ कोस २८ ध॰ १३ अ॰ | ७९०५२ योजन / गोल | – | – | – | – | – |
| २ | ज ब्बूद्वीप जगती | – | ” ” ” ” | गोपुच्छ स स्थान | ८ योजन | – | १२ योजन | ८ योजन | ४ योजन |
| ३ | जाल कटक जगती | ५०० धनुष | ” ” ” ” | वलयाकार | आधा योजन | – | – | – | – |
| ४ | पद्मवर वेदिका | ५०० धनुष | ” ” ” ” | वलयाकार | आधा योजन | – | – | – | – |
| ५ | वन ख ड | देशोन दो योजन | ” ” ” ” | वलयाकार | – | – | – | – | – |
| ६ | विजया राजधानी | १२००० योजन | ३७९४८ यो.साधिक | गोल | – | – | – | – | – |
| ७ | परकोटा | – | – | वलयाकार | ३७$\frac{१}{२}$ योजन | – | १२॥ योजन | ६। योजन | ३ यो. ०॥कोस |
| ८ | ५०० द्वार | ६२॥ योजन | – | १३$\frac{२}{५}$ यो॰ | ३१। योजन | – | – | – | – |
| ९ | कपि- शीर्षक | आधाकोस ×५०० ध॰ | – | – | देशोन आधाकोस | – | – | – | – |
| १० | वन्ख ड ४ | १२०००× ५०० यो॰ | – | – | – | – | – | – | – |
| ११ | लवण समुद्र | २ लाख | १५,८१, १३९ यो॰ साधिक | ३९५२८० योजन | १६००० योजन | १००० योजन | – | – | – |
| १२ | धातकी ख ड्डीप | ४ लाख योजन | ४१,१०, १६१ यो॰ साधिक | १०,२७, ७३५ यो॰ ३ कोस | – | – | – | – | – |





| | | आयाम विष्क भ | परिधि | द्वारो का अ तर/ आकार | ऊ चाई | ऊ डाई | मूल में विस्तार | मध्य में विस्तार | उपर विस्तार |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १३ | कालोदधि | ८ लाख योजन | ९१,७०, ६०५ यो. साधिक | २२,९२, ६४२ यो. ३ कोस | – | – | – | – | – |
| १४ | पुष्कर द्वीप | १६ लाख योजन | १,९२,८९, ८९४ यो. | ४८,२२, ४९६ यो. | – | – | – | – | – |
| १५ | आभ्यंतर पुष्कर | ८ लाख योजन | १,४२,३०, २४९ यो. | – | – | – | – | – | – |
| १६ | अढीद्वीप | ४५लाख योजन | १,४२,३० २४९ यो. | – | – | – | – | – | – |
| १७ | मानुषोत्तर पर्वत | – | १,४२,३६ ७१९ यो. (बाह्य) | – | १७२१ योजन | ४३० योजन १ कोस | १०२२ योजन | ७२३ योजन | ४२४ योजन |
| १८ | अ जन- गिरी | – | – | – | ८४००० योजन | १००० योजन | १०००० योजन साधिक | १०००० योजन | १००० योजन |
| १९ | नंदा पुष्करिणी | १ लाख योजन | – | – | – | १० योजन | – | – | – |
| २० | दधिमुखा | १०००० योजन | – | – | १०००० योजन | १००० योजन | – | – | – |

## ॥ सर्व जीव प्रतिपत्ति स पूर्ण ॥

॥ जीवाभिगम सूत्र स पूर्ण ॥

॥ तीन उपा ग सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-६ स पूर्ण ॥

# परिशिष्ट-१

**प्रश्न-१ : आगम में आये पुहुत्त-पुहत्त शब्द का सही अर्थ, शब्दार्थ क्या है ?**

**उत्तर-** जीवाभिगम सूत्र, भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र में पुहत्त या पुहुत्त शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है, क्वचित् उत्तराध्ययन वगैरह सूत्रों में भी पुहत्त शब्द प्रयोग देखा जाता है ।

जब शास्त्रकार को कहीं भी अनेक स ख्या को, अनेक स ख्या के विकल्पों को एक शब्द में कहना होता है तब पुहत्त शब्द का प्रयोग किया जाता है। पुहत्त शब्द का स स्कृत रूपान्तर **पृथक्त्व** बनता है। जिसका शब्दार्थ होता है- अलग-अलग, भिन्न-भिन्न, विभागरूप अथवा एकत्व का प्रतिपक्ष-अनेकत्व=अनेक ।

आगमोक्त इस पुहत्त शब्द को थोकडों में **प्रत्येक** शब्द से कहा जाता है। जो भाषा दृष्टि से एव अर्थ दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं है।फिर भी थोकडा प्रचलन से यह पर परा में बहु प्रचलित हो गया है। वास्तव में आगम की टीकाओं से और आगम प्रयुक्त पद्धति से इसका अर्थ **प्रत्येक** नहीं किंतु **अनेक** ऐसा किया जाना ज्यादा सुस गत होता है ।

**टीकाकारों एव कोशकारों के प्रमाण-**

**(१)** जीवाभिगम टीका पृ.११९ में- ***पुहत्त पृथक्त्व-पृथक् शब्दो बहुवाची।***

**(२)** कर्म प्रकृति स ग्रहणी चूर्णीकार-***पुहत्त शब्दो बहुवाची, इति प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितु प्रभवः ? उत्तर- पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितु ।*** अनेक (सेकडों, हजारों) रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ होता है। ***भगवती सूत्र श. १२, उद्दे.९।***

**(३)** ***एगत्त-पुहत्तिया भ गा भाणियव्वा-*** एक वचन के और बहुवचन के भ ग कह लेने चाहिये ।-***भगवती सूत्र ।***

**(४)** ***एगत्तेण पुहुत्तेण, ख धा य परमाणु य ।*** (उत्तरा.)पुद्गलों के एकत्रित





होने पर स्क ध बनता है और अलग-अलग विभाग होने से परमाणु अवस्था बन जाती है ।

(५) प्रज्ञापना सूत्र में देवों के आहार, श्वासोश्वास के दिनों की स ख्या कहने में भी पुहुत्त शब्द का प्रयोग किया गया है। पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वालों से लेकर देशोन दो पल्योपम तक वालों के लिये भी यह एक ही शब्दप्रयोग किया है। फिर भी उन सभी स्थिति वालों के श्वास के दिनों में और आहार के दिनों में फर्क है। क्योंकि स्थिति में फर्क है।

(६) भगवतीसूत्र शतक २२ में अनेक फलों और बीजों की अवगाहना भी **पुहुत्त** शब्द से कही गई है अर्थात् अ गुल पुहुत्त, विहत्थी पुहुत्त, रयणी पुहुत्त आदि ।

(७) जीवाभिगम और प्रज्ञापना सूत्र में तिर्यंच प चेन्द्रिय की अवगाहना कहने में एव मनुष्य की अवगाहना कहने में तथा कई जगह कायस्थिति कहने में **पुहुत्त** शब्द का प्रयोग किया गया है । वहाँ धणु, धणुपुहुत्त, के बाद गाउ, गाउपुहुत्त कहा गया है जिससे दो से लेकर १९९९ धनुष का ग्रहण भी **धणुपुहुत्त** शब्द से किया गया है ।

(८) इस प्रकार प्रज्ञापना, भगवती, जीवाभिगम में पुहुत्त शब्द से कहीं दो, कहीं सात, कहीं नौ, कहीं बारह, कहीं ९९, कहीं १९९, कहीं १९९९, कहीं स ख्याता, कहीं अस ख्याता और कहीं अन त तक का ग्रहण भी पुहुत्त शब्द से किया गया है। इस प्रकार पुहुत्त शब्द का विशाल अर्थ है और ऐसे विशाल अर्थ को कहने वाला हिन्दी शब्द **अनेक** या **बहुत** है।

अतः आगम में प्रयुक्त धणुपुहुत्त, कोडीपुहुत्त, सयपुहुत्त, सहस्स-पुहुत्त, अ गुलपुहुत्त, रयणिपुहुत्त, विहत्थीपुहुत्त, वासपुहुत्त, कोडीसय-पुहुत्त, कोडीसहस्सपुहुत्त आदि शब्दों को हिन्दी भाषा में क्रमशः अनेक धनुष, अनेक गाऊ, अनेक क्रोड, अनेक सौ, अनेक हजार, अनेक अ गुल, अनेक हाथ, अनेक बेंत, अनेक वर्ष, अनेक मास, अनेक सौ करोड, अनेक हजार करोड, इन शब्दों में कहना चाहिये।

थोकडों की प्रचलित भाषा में कभी भूल से एव भ्रम से **अनेक** के स्थान पर प्रत्येक शब्द का प्रयोग कर दिया गया है जो रूढ होकर पर परा से चला आ रहा है अर्थात् प्रत्येक धनुष, प्रत्येक गाउ, प्रत्येक करोड, प्रत्येक हजार, प्रत्येक सौ करोड आदि एव उस प्रत्येक शब्द का अर्थ भी सीमित मान लिया गया है कि दो से नौ तक।

वास्तव में यह शब्द प्रयोग और उसका माना गया अर्थ भी आगम से अस गत है । आगमिक शब्द पुहुत्त है उसका स स्कृत शब्द पृथक्त्व है और हिन्दी भाषा का शब्द अनेक है और उसका आगम आशय वाला अर्थ विशाल है। जब जहाँ जो घटित हो वही अनिर्दिष्ट स ख्या के अर्थ को कहने वाला यह शब्द है । इस एक ही शब्द से अनेक स ख्या एक साथ भी कह दी जाती है। यथा- अनेक मास वाले मनुष्य अमुक देवलोक तक जाते हक्त और अनेक वर्ष वाले अमुक देवलोकों मेंजातेहक्त। तो इस प्रास गिक शब्द में २ महीने और दो वर्ष वाले भी ग्रहित है और आगे अनेक महीनों और अनेक वर्ष वालों का भी ग्रहण है। कदाचित् कोई देवलोक में दो महिने वाला नहीं जावे, ऐसा भी हो तो अनेक शब्द में वह चल सकता है। अनेक वर्ष में तीसरे देवलोक में और बारहवें देवलोक में और अनुत्तर विमान में जाने वाले के वर्ष भिन्न रहे तो भी चल सकते हक्त। अतः अनेक(पुहुत्त) शब्द को २ से ९ तक में बाँधना भी उचित नहीं होता है ।

चौथे आरे के मनुष्यों की अवगाहना ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति में अनेक धनुष कही है तो वहाँ प्रयुक्त **पुहुत्त** शब्द से एक साथ २ धनुष वाले भी ग्रहित है और ५०० धनुष वाले भी ग्रहित है। इसलिये भी पुहत्त शब्द को २ से ९ तक में बांधना आगम सम्मत नहीं होता है।

इस प्रकार आगमोक्त पुहुत्त शब्द को थोकडों में प्रत्येक शब्द से कहना अनुपयुक्त है, उसे चलाते रहना भी गलत है। अतः उक्त प्रमाण चर्चा से चिंतन मनन कर, सही पद्धति रूप "अनेक" शब्द का प्रयोग करना चाहिये । यथा-अनेक करोड, अनेक सौ करोड, अनेक हजार करोड इत्यादि प्रयोग करने चाहिये। किंतु प्रत्येक करोड, प्रत्येक सौ करोड, प्रत्येक हजार करोड, प्रत्येक मास, प्रत्येक वर्ष, ऐसा नहीं





कहना चाहिये तथा जघन्य दो करोड उत्कृष्ट नौ करोड जघन्य दो हजार करोड उत्कृष्ट नौ हजार करोड ऐसा निश्चित स ख्या खोल कर भी नहीं बोलना चाहिये। क्योंकि जहाँ आगम में स ख्या नहीं खोल कर पुहुत्त शब्द कहा है, वहाँ बिना आगमाधार के ऐसी स ख्या निश्चित नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से कई दोष उत्पन्न होते हक्त, आगम विपरीत कथन होते हक्त तथा कई जगह उलझने खडी होती है, जिसे कल्पनाओं से हल करना पडता है। अतः पहले से ही सही निराबाध सुस गत शब्द **अनेक** का प्रयोग एव उसके अर्थ का निरूपण करना चाहिये ।

**प्रश्न-२ : आएसेण शब्द तो शास्त्रों में अपेक्षा दर्शाने के लिये आता है तो प्रस्तुत शास्त्र जीवाभिगम में आये आएसेण से टीकाकार ने मान्यता और वादी-प्रतिवादी रूप अर्थ-चर्चा करी है तो उपयुक्त क्या है ?**

**उत्तर-** आगमों में आएस=आदेश शब्द प्रयोग अनेक जगह पर हुआ है। भगवती सूत्र के २४ वें गम्मा शतक में बीसवें द्वार के दो विकल्प कियेहक्त- १. भवादेश २. कालादेश। भवादेश में भवों की स ख्या बताई जाती है और कालदेश में स्थिति बताई जाती है ।

न दीसूत्र में मति श्रुतज्ञान के लिये कहा गया है कि- ***आएसेण सव्व दव्व , सव्व खेत्त , सव्व काल , सव्व भाव जाणइ पासइ ।*** श्रुतज्ञानी अपेक्षा से सर्व द्रव्य क्षेत्र आदि को जानता है ।

जीवाभिगम में आदेश शब्द प्रार भ से ही प्रयुक्त है अर्थात् इस सूत्र की प्रार भिक रचना पद्धति आदेश शब्द की मौलिकता के साथ ही है। इस सूत्र में नौ प्रतिपत्तियों का विभाजन भी आदेश शब्दप्रयोग के साथ है। आगे दूसरी प्रतिपत्ति में स्थिति और कायस्थिति में भी आदेश शब्द के प्रयोग से युक्त कथन है।

जीवाभिगम सूत्र की उत्थानिका में यह बताया गया है कि(एक आदेश से-एक अपेक्षा से या एक प्रकार से)जीव के दो भेद है। एक आदेश से जीव के तीन भेद हक्त, यों क्रमशः बढाते हुए एक आदेश से जीव के दस भेद हक्त, ऐसा कहा गया है। फिर इन नौ प्रतिपत्तियों में उन दो तीन चार आदि भेदों पर स्थिति आदि की विचारणा की गई है ।

अभिधान राजेन्द्र कोश में भी **आएस** शब्द को प्रकारवाची बताया गया है। जिसमें प्रज्ञापनासूत्र जीवाभिगम सूत्र आदि से उद्धरण दिये गये है, यथा-

**१-एकेन आदेसेन ।** आदेश शब्द इह प्रकार वाची ।

**२-** ***आएसो त्ति पगारो इति वचनात् । एकेन प्रकारेण, एक प्रकार अधिकृत्य इति भावार्थः ।***

इस प्रकार आदेश शब्द का अर्थ **प्रकार** या **अपेक्षा** है, यह स्पष्ट है। जीवाभिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति में स्त्रीवेद की स्थिति चार प्रकार की और कायस्थिति पा च प्रकार की बताई गई है। फिर चारों, पा चों अपेक्षा से स्थितियों का स्पष्टीकरण किया गया है।

यहाँ टीकाकार आचार्य मलयगिरिजी ने स्थिति में अपेक्षा का कथन किया है और कायस्थिति में अपेक्षा कहते कहते मान्यता शब्द के प्रयोग में पहुँच गये हक्त। फिर उसे आचार्यों के मतभेद रूप में दिखाने समझाने का प्रयत्न भी किया है। किन्तु उन्होंने ही अनेकों स्थलों पर आदेश शब्द का परिभाषार्थ व्याख्यार्थ "अपेक्षा" और "प्रकारवाची" किया है। अतः कायस्थिति के इस प्रस ग में मान्यता कथन एक शाब्दिक (शब्दप्रयोग पद्धति की) स्खलना मात्र है। क्योंकि यह "आदेश" शब्द और इसका विषय इतना स्पष्ट है कि इस शब्द से मान्यता में उलझने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। न दीसूत्र, भगवतीसूत्र के उक्त स्थलों से और जीवाभिगमसूत्र की नव प्रतिपत्तियों के प्रार भिक वर्णन से सुस्पष्ट है कि जैनागमों में "आदेश" शब्द अपेक्षा और प्रकार अर्थ में प्रसिद्ध एव प्रचलित है ।

मान्यता भेद-मता तर आदि को दिखाने के लिये आगम में "आदेश" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। उसके लिये भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है अर्थात् आगमों में मान्यता भेद के भी अनेक पाठ कई सूत्रों में है किन्तु वहाँ कहीं पर भी **आदेश** शब्द का प्रयोग नहीं है । वे प्रयोग इस प्रकार है-





(१) ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में वक्षस्कार २, पृष्ट-५६० में कुलकर के विषय में मान्यता भेद **अन्ने पढ ति** इस प्रयोग से बताया गया है ।

(२) ज बूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभकूट के वर्णन में मान्यता भेद **पाढ तर** इस शब्द द्वारा कहा गया है ।

(३) उत्सर्पिणी के चौथे आरे के वर्णन में मतभेद **अण्णे पढ ति** शब्द से दिखाया है ।

(४) प्रज्ञापना पद १७ में **केई भण ति** इस शब्द का प्रयोग किया है ।

(५) व्यवहारसूत्र में **एगे एव आह सु, एगे पुण एव** ऐसा प्रयोग है।

(६) भगवतीसूत्र में मान्यता भेद के कथन हेतु **केई अपज्जत्तगा पद्म भण्ण ति, पच्छा पज्जत्तग** ऐसा वाक्यप्रयोग किया गया है ।

(७) ज्ञातासूत्र में देव के उपस्थित होने के वर्णन में **पाठ तर** शब्द के द्वारा मान्यता भेद कहा गया है ।

इस प्रकार मान्यता भेद के कथन आगमों में है। इनमें विविध शब्द या वाक्यप्रयोग है किंतु कहीं भी आदेश शब्द नहीं है। तथा इन मान्यता भेदों में दो विकल्प ही है अर्थात् दो से अधिक मान्यता भेद के विकल्प आगम में कहीं भी नहीं है। जब कि आदेश शब्द न दी में केवल एक विकल्प के लिये, भगवती में दो विकल्प के लिये और जीवाभिगम में तो ४-५ और ९ विकल्पों के लिये प्रयुक्त है। अतः अनेक विकल्पों वाले कायस्थिति के प्रस ग में आदेश शब्द को आचार्यों की मान्यता भेद में उलझाना और मानना कदापि उचित नहीं माना जा सकता। टीकाकार का इस प्रकार का कथन भ्रमपूर्ण एव स्ववचन विरोध दोषयुक्त है और आगम विपरीत भी है, यह स्पष्ट समझना चाहिये। अतः कायस्थिति के विकल्पों को मान्यता भेद कहना छाद्मस्थिक भूल है। उसका आग्रह न करते हुए अपेक्षा विशेष के विकल्प ही समझने चाहिये ।

यह स भव भी नहीं हो सकता कि इतनी सरल सी बात में आचार्यों के पा च भिन्न मत हो जाय और वे पाँचों ही इतने उलझन

में पड जाय कि उनका समन्वय न कर सकने से सूत्र में पा च मत दिखाने पड जाय, यह एक क्लिष्ट और अयुक्त कल्पना है। तथा उससे आचार्यों की अल्पज्ञता और हठाग्रहवृत्ति सिद्ध होती है। अतः गलत कल्पना में सरल विषय को नहीं उलझाकर आदेश शब्द के प्रचलित प्रसिद्ध और वास्तविक अर्थ के द्वारा ही विषय को समझना चाहिये और वैसे समझने में किसी प्रकार की सैद्धांतिक बाधा भी उत्पन्न नहीं होती है ।

**सार–** आदेश शब्द में अनेक विकल्प, प्रकार और अपेक्षा अर्थ करना चाहिये । मान्यता भेद अर्थ नहीं करना चाहिये। आगमों में मान्यता भेद के लिये अन्य शब्दों का प्रयोग होता है। आदेश शब्द का प्रयोग मान्यता भेद के लिये नहीं होता है। आदेश शब्द से मान्यता भेद में उलझना एक छाद्मस्थिक भूल है एव आगम विपरीत चिंतन प्ररूपण है। विद्वान आचार्यों से भी छाद्मस्थिक भूलें होना स भव है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है एव हिचकने की भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भूल तो गौतम गणधर से भी हो सकती है जिसे एक श्रावक भी टकोर कर सकता है ।

**प्रश्न–३ : एक समय की कायस्थिति जो मात्र स यम के गुणस्थानों में होती है वह मरने के निमित्त से ही होती है या यों भी १ समय के परिणाम होकर स्वाभाविक ही अन्य परिणामों से बाधित हो जाते हक्त?**

**उत्तर–** भगवतीसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र, जीवाभिगमसूत्र में कई भावों परिणामों (स्थानों) की एक समय की कायस्थिति कही गई है। व्याख्याकारों ने उसे समझाने के लिये, कहीं मरने की अपेक्षा घटित किया, कहीं परिणामों के परिवर्तन का स्पष्टीकरण किया। कहीं **"ही"** लगाया है तो कहीं **"भी"** लगाया है। किसी भी तरह से आगम कथन को घटित कर समझाने का यत्न किया है। फिर भी यह मानना ही होगा कि किसी भी तरह समझा जाय तो भी एक समय का उदयभाव और एक समय का वह परिणाम अवश्य ही होता है । एक समय के बाद दूसरा भाव और दूसरा उदय भी अवश्य होता ही है अर्थात् किसी भी तरह मानने पर उस प्रकृति का एक समय का उदय स्वभाव और उस भाव का एक





समय से भावा तर में परिवर्तन होने का स्वभाव तो मानना ही होगा।

यथा–स्त्रीवेद की एक समय की कायस्थिति यदि मरने की अपेक्षा समझी गई तो भी एक समय का स्त्रीवेद उदय स्वभाव तो मानना ही पडेगा और स्त्री परिणाम भाव का एक समय में परिवर्तित होना भी मानना ही पडेगा ।

अतः आगम में जिनभावों की एक समय की कायस्थिति कही है उसके स ब ध में ऐसा एका त नहीं मानना चाहिये कि– "कोई भी परिणाम एक समय में स्वाभाविक परिवर्तन होते ही नहीं है, केवल मरने से ही एक समय की स्थितिएँ बनती है। " क्योंकि ऐसा मानने में आगम का कोई प्रमाण नहीं है और व्याख्याकारों का भी ऐसा एका त आशय नहीं है। इसके लिये कुछ प्रमाण दिये जा रहे हक्त, उस पर अनुप्रेक्षण करना चाहिये–

(१) भगवतीसूत्र शतक २५ में पुलाक आदि सभी निय ठों में हायमान, वर्धमान और अवस्थित परिणामों की स्थिति कही है । उसमें जघन्य एक समय की स्थिति कही गई है। इससे स्पष्ट होता है कि परिणामों का एक समय का होना और परिवर्तित होना आगमकार को इष्ट है। पुलाक निर्ग्रंथ में भी एक समय में परिणाम परिवर्तित होना कहा है और इस निर्ग्रंथ अवस्था में काल करना भी नहीं माना गया है। इसीलिये टीकाकार श्री अभयदेवसूरी जी ने भगवती सूत्र के २५ वें शतक में स्पष्ट किया है कि कषाय आदि से बाधित होने पर पुलाक निर्ग्रंथ के इन हायमान वर्धमान अवस्थित परिणामों की १ समय की स्थिति बनती है।

सभी निर्ग्रंथों के अवस्थित परिणाम की उत्कृष्ट स्थिति भी सात समय की कही गई है। बकुश आदि निर्ग्रंथों के एक समय की स्थिति को समझाते समय टीकाकार ने मरण से समझाने में **भी** शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् मरने से भी एक समय की स्थिति घटित होती है यहाँ लगाये भी शब्द से भी स्पष्ट होता है कि एका त मरने से ही एक समय की स्थिति मानना टीकाकार को अभिमत नहीं है ।

मरण की अपेक्षा समझने के आग्रह में श्रेणी अवस्था रूप अप्रमत्त दशा में वर्तमान श्रमण का भी स्त्री वेद के परिणामों में जाना नपु सकता के परिणामों में जाना एव श्रमणी का पुरुषवेद के परिणामों में जाना मानना पडता है, यह अप्रमत्तदशा में विपरीत लिंग के परिणामों का मानना भी उपयुक्त नहीं लगता है ।

छट्ठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्त श्रमण के भी ऐसे अन्य लिंगी के परिणामों का होना एक विचित्र स्टेज है जो उदय की प्रबलता से स भव है। किन्तु ऐसी विचित्र स्टेज अप्रमत्त और श्रेणी में वर्तमान उच्चदशा के श्रमण में मानना अत्य त विचारणीय है। और ऐसे विचित्र परिणामों के स्टेज में मरकर अणुत्तर आदि देवों में उत्पन्न होना मानना और भी विचारणीय है ।

अतः एक समय की स्थितियों को स्वभाव से परिणाम से मानने में हिचकना नहीं चाहिये और मरते समय ही होने का एका त आग्रह नहीं करना चाहिये ।

(२) सामान्य रूपेण, विशेष रूपेण आदिष्टस्य जीवस्य यद् अव्यवछेदेन भवन सा कायस्थिति ।

(३) सर्व विरतिस्तु सर्व सावद्य अह न करोमि इत्येव रूपा, ततस्तत् प्रतिपत्ति उपयोग एक सामयिकोपि भवति ।

(४) आह च मूलटीकाकार- ***पढम समये काय जोगेण गहियाण भासा दव्वाण , बिईय समये वइ जोगेण निसग्ग काउण, उवरम तस्स, मरण तस्स वा एक समयो लब्भइ । मन योग के लिये भी तीसरे समय- उपरमते म्रियते वा तदा एक समय मनोयोगी लभ्यते ।***

यहाँ परिणामों के स्वाभाविक परिवर्तित होने पर भी एक समय की स्थिति होना टीकाकार ने समझाया है ।

(५) अवधिज्ञान की एक समय की कायस्थिति के लिये- च्यवनेन मरणेन, अन्यथा वा अन तर समये प्रतिपतति तदा अवधिज्ञानस्य एक-समयता भवति । यहाँ भी परिणामों के परिवर्तितत हो जाने से एक





समय में अवधिज्ञान का नष्ट होना स्वीकार किया है एव मृत्यु की अपेक्षा भी ।

(६) अवधिज्ञान के समान ही विभ गज्ञान के एक समय को टीका में सिद्ध किया है ।

(७) जीवाभिगम टीका पृष्ट(पत्र)६० में क्षयोपशम की विचित्रता से भी एक समय की स्थिति मानी है- ***सर्व विरति परिणामस्य तदावरण कर्म क्षयोपशम वैचित्र्यतः समयमेक स भवात् ।***

(८) प्रज्ञापना टीका में अवधिज्ञान का एक समय-***मरणतः प्रतिपातेन, मिथ्यात्व गमनतो वा ।***

जीवाभिगम टीका पृ-४६० में विभ ग ज्ञान की एक समयता के लिये **सम्यक्त्व लाभतो ज्ञान भावेन** ऐसा किया है । इन दोनों व्याख्याओं से भी स्पष्ट है कि मरने के बिना भी मिथ्यात्व या समकित आने पर भी परिणाम एक समय के हो सकते हक्त । जिससे वह ज्ञान एक समय रहता है ।

(९) जीवाभिगम टीका पृ.४५२ अवधिदर्शन की एक समय की स्थिति, मरण से और अध्यवसाय परिवर्तन से यों दोनों तरह से समझाई है।

(१०) अवधिदर्शन का अ तर एक समय- ***अन तर समये पुनस्तद् लाभः*** अर्थात् बीच के परिणाम एक समय स्वाभाविक रहेंगे यह स्पष्ट है ।

**सार-** १. स यम अवस्था में बिना काल किये ही कई प्रकृतियों का स्वाभाविक एक समय का उदय हो सकता है। २. कई परिणाम एक समय की स्थिति के अन तर परिवर्तित हो सकते हक्त। ३. प्रकृतियों का क्षयोपशम काल एक समय का हो सकता है । ४. और काल करने पर भी कई अवस्थाएँ एक समय की हो सकती है । ५. साथ ही कई भाव केवल अ तर्मुहूर्त के ही स्वाभाविक होते हक्त। वे मरने की अपेक्षा भी एक समय के नहीं होते। यथा- पुरुषवेद, काययोग, दोनों उपयोग, तीनों कषाय, ६ लेश्या आदि जघन्य अ तर्मुहूर्त ही होना आगमकार को ईष्ट है। ६. अस यत अवस्था में एक समय के परिणाम नहीं होते ।

७. वहाँ मरने की अपेक्षा से एक समय की स्थिति बनती है। ८. अतः धर्माचरणी तीनों वेद के एक समय की कायस्थिति अ तर आदि को स्वाभाविक परिणामों के परिवर्तन से मान्य करना सुस गत होता है। ९. स यम अवस्था के भावों की किसी भी एक समय की स्थिति के लिये मरणकाल का ही एका त आग्रह नहीं रखना चाहिये ।

किसी भी स्थिति को एका त रूप से मरण की अपेक्षा समझाने का प्रयत्न करने से व्याख्याकारों के सामने उलझन सी पैदा हुई है ऐसा ज्ञात होता है एव इन जघन्य स्थितियों को समझाने के प्रयत्न में कहीं आगम से अन्यथा तत्त्व का कथन भी हुआ है और कहीं मूलपाठ को शुद्ध अशुद्ध या पाठा तर मानने की स्थितिएँ भी उत्पन्न हुई है। अतः एका त में न जाते हुए आगम आशय को सरल विधि से ही समझने का प्रयत्न करना चाहिये एव अनेका तिक बुद्धि से चिंतन करना चाहिये।

**प्रश्न-४ : आएसेण शब्द की टीका के लिये प्रश्न.२ में उस व्याख्या के लिये छाद्मस्थिक भूल होने का उल्लेख किया गया है तो टीकाओं व्याख्याओं में अन्यत्र भी कहीं ऐसी छाद्मस्थिक भूलें हुई है ?**

**उत्तर-** अनेका त सिद्धा त युक्त वीतराग मार्ग से एका तवाद का रोग दूर ही रहता है। एका तवाद उलझनों का जनक है जब कि अनेका तवाद उलझनों का शोधक है ।

सर्वज्ञता के पूर्व की अवस्था के सामान्य अथवा विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थ अपने कई आदर्श गुणों से सर्वज्ञ तुल्य, जिन नहीं पण जिन सरीखा, केवली नहीं पण केवली सरीखा, ऐसी उपमा द्वारा उपमित कियेजा सकतेहक्त। वैसे सर्वोच्च छद्मस्थज्ञानी भी भूल के पात्र हो सकते हक्त तथा वे सरलता पूर्वक शुद्धि कर सकतेहक्त। इसके लिये आगम उपासक दशा सूत्र में आन द श्रावक और गौतम गणधर क घटित घटनाचक्र आज भी उपलब्ध है ।

अतः कोई कितना भी विद्वान छद्मस्थ है, जिनशासन में उसके लिये व्यक्तिमहत्त्व देकर अ धानुकरण नहीं किया जा सकता है। छद्मस्थ मात्र





भूल का पात्र है अर्थात् उनसे भूल होना स भव है, अस भव नहीं है ।

भगवान महावीर के दीर्घकाल के इस शासन में कई महापुरुषों ने आगम सेवा की है, अपना जीवन आगम सेवा में अर्पित भी किया है। अनेकों ने अ गबाह्य आगमों की रचना की है और अनेकों आचार्यों ने उपलब्ध आगमों की विस्तृत व्याख्या भी की है। सर्वज्ञता के अभाव में छोटी बडी भूलें उनसे भी हुई है। जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये कुछ तत्त्व यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिन्हें जानकर यह अनुभव अनुप्रेक्षण करना चाहिये कि किसी भी छद्मस्थ आचार्य का कथन यदि सापेक्ष नहीं है तो उसके आग्रह में नहीं पडना चाहिये। किसी भी आगम तत्त्व से उनका कथन अस गत या विपरीत हो तो उस पर ग भीरता पूर्वक विचारणा करके सही निर्णय लेना चाहिये, किन्तु **बाबा वाक्य प्रमाण** की उक्ति को चरितार्थ नहीं करना चाहिये ।

(१) जीवाभिगम टीका एव प्रज्ञापना टीका में अवधिदर्शन की कायस्थिति समझाने में विभ गज्ञान की कायस्थिति का उल्ल घन कर दिया गया है। नरक में उपयोग लाने ले जाने के सिद्धा त का भी उल्ल घन हुआ है। इस प्रकार एक तत्त्व को समझाने में दो तीन सूत्रों से विपरीत कथन हुआ है क्योंकि कायस्थिति जीवाभिगम एव प्रज्ञापना से विपरीत हुई और उपयोग का भगवती सूत्र से विपरीत कथन हुआ है ।

(२) अनेक प्रमाणों से **आएसेण** का "अपेक्षा से" यह अर्थ प्रमाणित और शुद्ध है फिर भी स्त्रीवेद की कायस्थिति में पा च अपेक्षा को पा च मता तर कह दिया गया और मत के प्ररूपक अलग अलग वादी मान लिये गये। उनमें आपस में समाधान नहीं होना मानकर सूत्र में वे मतभेद लिखे गये, ऐसा मान लिया गया। जब कि जीवाभिगम सूत्र की आदेश कहने की वह पद्धति ही है जिसका आल बन स्पष्ट रूप से प्रार भ में ही लिया गया है ।

(३) टीका में देवलोकों की अवगाहना बताने में आगम विपरीत कथन कर दिया गया है ।

(४) अपर्याप्त की कायस्थिति का विवेचन करने में भगवती सूत्र के गम्मा शतक से विपरीत कथन है ।

(५) प्रज्ञापना पद १२ एव २१ में वायुकाय के पर्याप्तों के स ख्यातवें भाग वालों को वैक्रिय करना कह दिया गया एव **उक्त च** कहकर उसे अन्य गाथा द्वारा सिद्ध कर दिया गया है जब कि आगम में अस ख्यातवें भाग कहा गया है ।

(६) प्रज्ञापना पद २१ की व्याख्या में सूर्य की किरणों को अवल बन कर आकाश में गमन करना कह दिया है। जो असत् कल्पित मात्र है।

(७) प्रज्ञापना पद २३ टीका में बकुल नामक वनस्पति के पा च भावेन्द्रिय होने का कथन कर दिया है। जब कि उसी सूत्र के १५ वें पद में एकेन्द्रिय के एक द्रव्येन्द्रिय और एक ही भावेन्द्रिय होना स्पष्ट कहा गया है। ऐसी विपरीत प्ररूपणा के लिये भी फिर यह कहा गया है कि- ***आगमेपि प्रोच्य ते ।*** जब कि किसी भी आगम में ऐसा कथन नहीं है ।

(८) अ तरद्वीपों का वर्णन आगम जीवाभिगम में स्पष्ट है कि ज बूद्वीप की जगती से दूर जल के मध्य वे सभी द्वीप स्वत त्र आये हुए है फिर भी जगती से एक दाढा निकलना बताया और उस दाढा पर उन द्वीपों का होना कहा है।

(९) देव नरक का अ तर्मुहूर्त का अ तर मनुष्य के भव से समझाया है, जब कि देव के साथ मनुष्य का अ तर्मुहूर्त का स ब ध ही नहीं है । अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना मनुष्य देवलोक में या नरक में नहीं जाता है, यह भगवती सूत्र के गम्मा शतक से स्पष्ट है ।

(१०) नौवें से बारहवें देवलोक के अनेक वर्ष के अ तर को समझाते हुए कह दिया कि यहाँ स यम ग्रहण के बिना कोई जीव उत्पन्न नहीं होता जब कि आगमानुसार १२वें देवलोक तक श्रावक, मिथ्यादृष्टि और गोशालकप थी भी जा सकते हक्त ।

(११) देवलोकों में जीव, पाँच स्थावर रूप में अन तवार उत्पन्न हुए





हक्त यह कथन सूक्ष्म स्थावर की मुख्यता से है फिर भी देवलोकों में बादर तेउकायपने उत्पन्न होना कह दिया जब कि बादर तेउकाय अढाई द्वीप में ही होती है ।

(१२) देवों के जघन्य अ तर के विषय में कहीं से गाथा उद्धृत कर आगम विपरीत कथन कर दिया गया कि आठवें देवलोक तक ९ दिन की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न होवें और दूसरा देवलोक तक अ तर्मुहूर्त की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न हो सकता हक्त, ऐसा प्ररूपण किया है। जब कि मनुष्य तो अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना देवलोक में जाता ही नहीं है। अ तर्मुहूर्त और नौ दिन का प्रश्न ही क्या ?

(१३) पुरुषवेद की कायस्थिति प्रज्ञापना और जीवाभिगम में जघन्य अ तर्मुहूर्त की कही गई है फिर भी कह दिया कि एक समय होनी चाहिये। जब कि आगम से विपरीत कथन हो रहा है ।

(१४) अकषायी की कायस्थिति एक समय की सूत्रों में स्पष्ट है फिर भी विवेचन में एक समय की स्थिति वाला पाठ सामने होते हुए भी अ तर्मुहूर्त के वृद्धवाद को सही कह दिया ।

(१५) पंचेन्द्रिय की कायस्थिति १००० सागरोपम साधिक सूत्रों में कही गई है एव पर परा में प्रसिद्ध है। टीकाकार स्वय ने पन्नवणा पद १८ में उसकी टीका करी हक्त, जीवाभिगम पडिवत्ती ४ में भी १००० सागरोपम की टीका करी है। फिर भी जीवाभिगम सर्व जीव पडिवत्ति ९ में उन्हीं टीकाकार ने बिना कुछ निर्देश चर्चा के अनेक सौ सागर की टीका कर दी है ।

(१६) जीवाभिगम सूत्र की नौ पडिवत्तियों के प्रार भिक पाठ की व्याख्या में आदेश का अपेक्षा अर्थ करते-करते वादी भी कहना शुरू तो किया किन्तु वादी कहने में नहीं पहुँचे। किन्तु उसके आगे पडिवत्ति दूसरी में स्त्रीवेदी की कायस्थिति के पाँच प्रकार में वादी कहना प्रार भ किया और फिर एका त रूप से वादी के आग्रह युक्त प्ररूपण

वाला विवेचन कर दिया और पाँच मतभेद होना बता दिया, जो कि पूर्ण रूप से अस गत है ।

(१७) जीवाभिगम प्रतिपत्ति-२ में पाँचवें आदेश के विवेचन में- १. स्त्री के लगातार ९ भव होना बता दिया । २. जलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प के आठ भव का निषेध करके उत्कृष्ट सात भव होना ही कह दिया। ३. आठवाँ भव एका त रूप से जुगलिये का ही होता है, ऐसा प्ररूपण कर दिया। ४. पर्याप्त के लगातार आठ भव ही होना कह दिया। ये कथन आगम सम्मत नहीं है और कोई परस्पर भी अस गत है। क्योंकि भगवती में जलचर उरपरिसर्प आदि के आठ भव का कालादेश कहा गया है । पर्याप्त के लगातार आठ से ज्यादा भव हो सकते हक्त । मनुष्य के लगातार आठ भव करने के बाद वह देवलोक में जा सकता है। इस तरह पर्याप्त के आठ से ज्यादा भव हो जातेहक्त। तभी पर्याप्ता की कायस्थिति अनेक सौ सागर की होती है। दो ६६ सागर अवधिदर्शन की स्थिति को सही रूप में समझाने के लिये भी कम से कम १० भव पर्याप्त के बताये जाते हक्त ।

(१९) पन्नवणा पद २१ की टीका में विद्याचारण के लिये कहा कि यह स यमवान नहीं होता है। जबकि आगमानुसार यह लब्धि स यमवान को ही होती है।

(२०) पुरुषवेद की अ तर्मुहूर्त की कायस्थिति को अवास्तविक कह दिया और कहा कि वेश परिवर्तन की अपेक्षा अ तर्मुहूर्त है वास्तव में भाव परिणाम की अपेक्षा तो एकसमय की ही जघन्य कायस्थिति होती है। इसका मतलब यह हुआ कि आगमकार एक ही सूत्र के एक ही प्रकरण में एक वेद की कायस्थिति द्रव्य वेष की अपेक्षा कहे और दो वेद की कायस्थिति भाव-परिणाम की अपेक्षा कहे, ऐसी कल्पना टीकाकार द्वारा करना भी उपयुक्त नहीं समझा जा सकता- ***प्रज्ञापना टीका. पृ.४५१ ।***





उक्त २० स कलन विद्वान आचार्य मलयगिरि से स ब धित है। जिनका कि जैनागम टीका साहित्य में एक अनूठा स्थान है। ये तेरहवीं शताब्दि के साधनासिद्ध पुरुष थे। आप में श्रुतसेवा की अनुपम लगन थी। छाद्मस्थिक क्षयोपशम की विचित्रता से ही निर्दिष्ट त्रुटिएँ स भव हुई है। आप एक भवभीरू, नम्र, सरल, आचार्य हुए है। आगम विपरीत प्ररूपण का किंचित भी स कल्प आपका नहीं होगा, फिर भी उक्त भूलें आप से हो ही गई है ।

(२१) निशीथ उद्देशक-२ में पादप्रोंछन का रजोहरण अर्थ कर दिया गया है, जबकि रजोहरण स ब धी दस सूत्र आगे पाँचवें उद्देशक में अलग है। पादप्रोंछन औपग्रहिक उपकरण अलग है, रजोहरण औघिक उपकरण अलग है। इन दोनों को एक कर देना भ्रम है । विशेष जानकारी के लिये पुष्प १२ में देखना चाहिये ।

(२२) विसुयावेइ- निशीथ उद्देशक दो में पादप्रोंछन के सूत्रों में अ तिम सूत्र में **विसुयावेइ** क्रिया है जिसका अर्थ है पृथक करना अर्थात् काष्ठ द ड से पादप्रोंछन को अकारण खोल कर अलग करना। किन्तु इस सही अर्थ को छोडकर धूप देना, सुखाना, धोना आदि अर्थ किये है। जब कि किसी भी उपधि को धूप देना सूर्य के ताप में सुखाना कोई दोष नहीं होता है अपितु गुणकर होता है और यदि किसी भी कारण से गीला हो गया तो उसे सूखाना तो आवश्यक कर्तव्य है उसे दोष रूप में कथन करके प्रायश्चित कहने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है ।

(२३) निशीथ उद्देशा-३, सूत्र-७३ **गोलेहणियासु** यह शब्द भूमि का विशेषण है । जिसका प्रास गिक अर्थ है हल हाँकी हुई जमीन पर लघुनीत बडीनीत नहीं परठना और परठने पर सचित मिट्टी के कारण प्रायश्चित आता है। इस सीधे और उपयुक्त अर्थ को छोडकर गायों के जानवरों के चरने की भूमि इत्यादि अयुक्त अस गत अर्थ किये गये हक्त । विशेष जानकारी के लिये आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित इस सूत्र का विवेचन देखना चाहिये ।

(२४) निशीथ उद्देशा ३ में **अणुग्गए सूरिए** शब्द है जिसका आशय है जिस स्थान पर सूर्य का ताप नहीं आता हो ऐसे अयोग्य स्थान में मलत्याग नहीं करना चाहिये। चाहे रात्रि में हो या दिन में, कभी भी ऐसे स्थान पर शौचनिवृति नहीं करना ।इस अर्थ को छोडकर ऐसा अर्थ किया गया है कि सूर्योदय के पहले मलमूत्र परठने नहीं जाना किन्तु भाजन में शौच निवृति करके रख देना, फिर सुबह परठना। ऐसा अर्थ आगम विपरीत कथन है। आगम में परठने की भूमि से युक्त मकान का होना, स ध्या समय मल विसर्जन की तीन भूमि का प्रतिलेखन करना एव रात्रि में परठने जाने के एव शौचनिवृति के लिये जाने, बैठने स ब धी कई विधान है। अतः रात्रि में अर्थात् सूर्योदय के पूर्व मल विसर्जन करने या परठने मकान के बाहर नहीं जाना, ऐसा अर्थ करना उपयुक्त नहीं है एव आगम सापेक्ष भी नहीं है ।

(२५) निशीथ उद्देशा १९ में औषध स ब धी सात सूत्र है अ तिम सातवें सूत्र में विहार में दवा ले जाने स ब धी प्रायश्चित है। उस जगह प्रयुक्त **वियड** शब्द के अर्थ भावार्थ को मद्य-मादक पदार्थ से स ब धित कर दिया है। जो कि जैन श्रमण के अयोग्य है। मद्य मा स सेवन नरक का कारण है उसे साधु उपयोग में ले और विहार में रखे फिर भी उसका लघु प्रायश्चित कहा जाय, यह भी उपयुक्त नहीं होता है ।

(२६) व्यवहार सूत्र उद्देशा २ में श्रमण के लिये **अट्ठ जाय** विशेषण दिया है जिसका अर्थ है कि किसी इच्छा में तीव्रता के कारण रूग्ण बना साधु । किन्तु यहाँ अर्थ कर दिया कि धन की इच्छा करने वाला साधु अर्थात् अपने परिवार वालों के लिये धन प्राप्ति की इच्छा में तल्लीन होकर रूग्ण पागल सा बना साधु। यहाँ सूत्र में उस रूग्ण साधु की सेवा करने का निर्देश है। रूग्ण सेवा आदि से स ब धित साधु के लिये धनप्राप्ति का अर्थ और विवेचन करना उपयुक्त नहीं है ।

(२७) व्यवहारसूत्र उद्देशा ३ सूत्र १-२ में **गणधारण** का विषय है जिसका अर्थ मुखिया बनकर विचरण करना या मुखिया बनकर विचरण





करने वाला है। वहाँ उसके लिये योग्य होना भी कहा है, साथ ही आज्ञा लेकर विचरण करना कहा है। बिना आज्ञा विचरण करने का निषेध किया है और प्रायश्चित भी कहा है। इसका अर्थ व्याख्याकारों ने आचार्य बनना, गणी या गच्छाधिपति बनने से जोड दिया है, वह उपयुक्त नहीं है। क्योंकि आचार्य उपाध्याय आदि की योग्यता गुण, श्रुत आदि का कथन उस सूत्र से बाद आगे के सूत्रों में ही है ।

(२८) व्यवहार सूत्र उद्देशा-९ में **सोंडियसाला** शब्द है जहाँ पर श्रमण को गोचरी जाने का प्रस ग है उसका अर्थ होता है खाद्यसामग्री या मिष्ठान सामग्री, ऐसा अर्थ न करके मद्यशाला अर्थ विवेचन कर दिया है। जब कि मद्यशाला में साधु के जाने का प्रस ग ही नहीं हो सकता ।

(२९) व्यवहारसूत्र उद्देशा-१० में श्रमण के अध्ययन स ब धी वर्णन दीक्षापर्याय के वर्षों से स ब धित करके कहा गया है। उसका ऐसा अर्थ कर दिया कि इतने वर्ष पहले यह सूत्र पढाना ही नहीं, जो कि आगम तात्पर्य से विपरीत अर्थ है। क्यों कि इसी सूत्र में तीन वर्ष की दीक्षा वाले को बहुश्रुत होने पर एव आचारा ग निशीथ सूत्र के मूल एव अर्थ सहित धारण करने वाला होने पर, उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित करना कहा है। अतः तीन वर्ष के पहले आचारा ग निशीथ नहीं पढाना यह अर्थ करना स्पष्ट ही आगम विपरीत है ।

(३०) ***व्यवहार उद्देशा-३ में निरुद्ध परियाए और निरुद्धवास परियाए*** शब्द है जिनका क्रमशः सीधा सा स गत अर्थ है अत्यल्प दीक्षा पर्याय (एकदिन) और अल्प वर्ष पर्याय(तीन वर्ष से कम)वाले को भी किसी परिस्थिति में आचार्य उपाध्याय पद दिया जा सकता है। इस अर्थ को छोडकर जबरन(बलात्) दीक्षा छोडने से किसी श्रमण को निरुद्ध पर्याय बनाना आदि विस्तृत विवेचन किया है जो मात्र कल्पना रूप ही है ।

ये छेद सूत्रों स ब धी स कलन है इस स ब धी विशेष जानकारी के लिये पूर्व निर्दिष्ट विवेचन युक्त शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये ।

इसमें निर्युक्तिकार, भाष्यकार, टीकाकार और चूर्णिकार सभी अपेक्षित है। अन्य भी सूत्रों की व्याख्याओं में ऐसी कई भूलें है। उन सब का यहाँ स कलन नहीं करके नमूना रूप थोडा सा स कलन दिया गया है। तटस्थतापूर्वक चिंतन मनन अनुभव करने वालों के लिये इतना ही पर्याप्त होगा ।

**सार**– तात्पर्य यही है कि छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है, अतः खुद के लिये का अन्य किसी विद्वान के लिये, किसी भी प्रकार का मान गुमान और दुराग्रह, हठाग्रह नहीं करके आगम सापेक्ष चिंतन मनन की गु जाईश रखते हुए जिज्ञासा वृति रखकर सत्य खोजते रहने का प्रयत्न करना चाहिये और सारे प्रयत्नों चिंतनों को आगम कसौटी पर कसने की बुद्धि रखनी चाहिये। किन्तु ***बाबा वाक्य प्रमाण*** की वृत्ति नहीं रखनी चाहिये तथा अपनी स्वच्छ द बुद्धि कल्पित आगम निरपेक्ष निर्णय लेने की वृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये ।

## प्रश्न-५ : गुणस्थानों स ब धी परिज्ञान-स्वरूप एव विशेषताएँ किस प्रकार वर्णित हैं ?

**उत्तर**– १४ गुणस्थानों का सुगम और सहजग्राही स्वरूप समवाया ग सूत्र के प्रश्नोत्तर में दिया गया है। देखें प्रश्नोत्तर भाग-२, पृष्ट-२४२ । इसके अतिरिक्त गुणस्थानों में पाये जाने वाले कुछ तात्विक बोलों को यहाँ कोष्टक द्वारा स क्षेप में एव आगे भी विस्तार से दिया जाता है ।

आगम समवाया ग में १४ गुणस्थानों के नाम मात्र है । गुणस्थान स ब धी अन्य प्रकीर्णक वर्णन तत्व वर्णन आगमों से प्रस्फुटित होता है जो थोकडाओं में स कलित किया गया है । उसे ही यहाँ स क्षेप में कोष्टक से दर्शाया जाता है। कर्मग्रंथ में भी गुणस्थानों का विस्तृत स्वरूप प्राप्त होता है, जो प्रायः आगम से मेल खाने वाला है। क्वचित् १-२ तत्त्व ही आगम से भिन्न जाते है जो कर्मग्र थ के विवेचन में स्वीकारा गया है ।





## गुणस्थानो में २५ द्वार

| गुण स्थान | १ योग | २ ज्ञान अज्ञान | ३ दर्शन | ४ लेश्या | ५ जीव के भेद | ६ कर्म बंध | ७ उदय | ८ उदीरणा | ९ सत्ता | १० निर्जरा | ११ चारित्र | १२ निर्यंठा | १३ परीषह | १४ गुणस्थान आगत | १५ गुणस्थान गत |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १३ | ३ अ॰ | ३ | ६ | १४ | ७/८ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | असंयम | × | × | २,३,४,५,६ | ३,४,५,७ |
| २ | १३ | ३ ज्ञा॰ | ३ | ६ | ६ | ७/८ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | " | × | × | ४,५,६ | १ |
| ३ | १० | ३ अ॰ | ३ | ६ | १ | ७ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | " | × | × | १,४,५,६ | १,४,५,७ |
| ४ | १३ | ३ ज्ञा॰ | ३ | ६ | २ | ७/८ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | " | × | १ | १,३,५,६, ७ से ११ | १,२,३,५,७ |
| ५ | १२ | ३ | ३ | ६ | १ | ७/८ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | संयमासंयम | × | १ | १,३,४,६ | १,२,३,४,७ |
| ६ | १४ | ४ | ३ | ६ | १ | ७/८ | ८ | ६/७/८ | ८ | ८ | ३ | ४ | २२/२० | ७ | १,२,३,४,५,७ |
| ७ | ११ | ४ | ३ | ३ | १ | ७/८ | ८ | ६ | ८ | ८ | ३ | ३ | २२/२० | १,३,४,५,६,८ | ६,८,४ |
| ८ | ९ | ४ | ३ | १ | १ | ७ | ८ | ६ | ८ | ८ | २ | १ कं॰ | २१/१९ | ७,९ | ७,९,४ |
| ९ | ९ | ४ | ३ | १ | १ | ७ | ८ | ६ | ८ | ८ | २ | १ कं॰ | १८/१६ | ८,१० | ८,१०,४ |
| १० | ९ | ४ | ३ | १ | १ | ६ | ८ | ६/५ | ८ | ८ | १ सूं॰ | १ कं॰ | १४/१२ | ९,११ | ९,११,१२,४ |
| ११ | ९ | ४ | ३ | १ | १ | २ | ७ | ५ | ८ | ७ | १ यथा॰ | १ निं॰ | १४/१२ | १० | १०,४ |
| १२ | ९ | ४ | ३ | १ | १ | २ | ७ | ५/२ | ७ | ७ | १ | १ निं॰ | १४/१२ | १० | १३ |
| १३ | ७ | २ | २ | १ | १ | २ | ४ | २ | ४ | ४ | १ | १ स्ना॰ | ११/९ | १२ | १४ |
| १४ | × | १ | १ | × | १ | × | ४ | २/× | ४ | ४ | १ | १ स्ना॰ | ११/९ | १३ | मोक्ष |

| गुण स्थान | १६ सम | १७ आहारक | १८ ध्यान | १९ सज्ञा | २० स ङ्ख्या | २१ समुद्घात | २२ शाक्तत | २३ उपजे | २४ पावे | २५ अल्पबहुत्व |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | १ | दोनो | २ | ४ | ६ | ५ | शाक्तत | असंख्य | अनंत | ११ अनंतगुणा |
| २ | १ | दोनो | २ | ४ | ६ | ५ | अशाक्तत | असंख्य | असंख्य | ८ असंख्यगुणा |
| ३ | १ | आहारक | २ | ४ | ६ | ५ | ” | ” | ” | ९ असंख्यगुणा |
| ४ | ४ | दोनो | ३ | ४ | ६ | ५ | शाक्तत | ” | ” | १० असंख्यगुणा |
| ५ | ४ | आहारक | ३ | ४ | ६ | ५ | शाक्तत | ” | ” | ७ असंख्यगुणा |
| ६ | ४ | ” | २ | ४ | ६ | ६ | शाक्तत | अनेक हजार | अनेक हजार करोड | ६ संख्यातगुणा |
| ७ | ४ | ” | १ धर्म | × | ६ | ४ | अशाक्तत | ” | अनेक सौ करोड | ५ संख्यातगुणा |
| ८ | २ | ” | शुक्ल | × | १/३ | × | ” | १६२ | अनेक सो | =३ संख्यातगुणा |
| ९ | २ | ” | ” | × | १/३ | × | ” | १६२ | अनेक सौ | =३ संख्यातगुणा |
| १० | २ | ” | ” | × | १/३ | × | ” | १६२ | ” | =३ संख्यातगुणा |
| ११ | २ | ” | ” | × | १/३ | × | ” | ५४ | ” | १ सबसे थोडा |
| १२ | १ | ” | ” | × | १ | × | ” | १०८ | ” | २ संख्यातगुणा = |
| १३ | १ | दोनो | ” | × | १ | × | शाक्तत | १०८ | अनेक करोड | ४ संख्यातगुणा |
| १४ | १ | अनाहारक | ” | × | १ | × | अशाक्तत | १०८ | अनेक सो | २ संख्यातगुणा = |

**नोट-** द्वारों की स ख्या में स कलनकर्ता की अभियुचि समझनी चाहिए । आगमोक्त निश्चित स ख्या नहीं होने से कोई कितना भी स्पष्टीकरण आगम सापेक्ष कर सकता है ।





## चार्टगत द्वारों का स्पष्टीकरण-

**(१) योग-** पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र दो योग नहीं पाने से १५-२=१३ योग। तीसरे गुणस्थान में औदारिक मिश्र वैक्रियमिश्र और कार्मण ये तीन योग और कम होने से १३-३=१०योग(औदारिक योग, वैक्रिय योग और ४ मन ४ वचन) होतेहक्त। पाँचवें गुणस्थान में आहारक-आहारकमिश्र और कार्मण ये तीन योग नहीं होने से १५-३=१२ योग। छट्ठे गुणस्थान में १४ योग, कार्मण नहीं होता। सातवें गुणस्थान में ११ योग, तीन मिश्र और कार्मण योग नहीं। आठवें से १२वें तक ९ योग(औदारिक तथा ४ मन, ४ वचन योग)। तेरहवें में सात योग- २ मन, २ वचन योग, औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मण। चौदहवें गुणस्थान में योग नहीं होते, अयोगी केवली गुणस्थान है।

**(२) ज्ञान अज्ञान-** पहले, तीसरे गुणस्थान में ३ अज्ञान। दूसरे, चौथे, पाँचवें में तीन ज्ञान। छट्ठे से १२वें तक ४ ज्ञान। तेरहवें चौदहवें में एक केवलज्ञान।

**(३) दर्शन-** बारह गुणस्थान तक ३ दर्शन। अ तिम दो गुणस्थान में एक केवलदर्शन।

**(४) लेश्या-** छ गुणस्थान तक ६ लेश्या। सातवें में ३ लेश्या शुभ। आठवें से आगे एक शुक्ल लेश्या। १४वें में लेश्या नहीं, अलेशी।

**(५) जीव के भेद-** प्रथम गुणस्थान में १४, सभी। दूसरे गुणस्थान में-६ जीव के भेद। तीन विकलेन्द्रिय एव असन्नि प चेन्द्रिय का अपर्याप्त और सन्नी प चेन्द्रिय का अपर्याप्त पर्याप्त दोनों ४+२=६।

**(६) कर्मब ध-** तीसरे गुणस्थान में आयुष्य कर्म नहीं ब धता है, अत: ८-१=७ कर्म का ब ध। शेष एक से सात गुणस्थान तक सात या आठ कर्म का ब ध। क्यों कि आयुष्य कर्म जीवन में एक बार ब धता है तब आठ, शेष समय में सात कर्म का ब ध। दसवें गुणस्थान में मोहकर्म का ब ध घटने से ६ कर्म का ब ध। आगे के ११,१२,१३ गुणस्थान में साता वेदनीय का ब ध। १४ वें गुणस्थान में अब ध।

**(७) कर्मउदय–** १ से १० गुणस्थान तक आठ ही कर्मों का उदय। ११वें १२वें में ७ कर्मों का उदय। १३वें १४वें गुणस्थान में ४ कर्मों का उदय।

**(८) उदीरणा–** भगवती सूत्र शतक–११ में एकेन्द्रिय के ६,७,८ कर्मों की उदीरणा कही है। इस पर से प्रार भ के ६ गुणस्थान तक ७,८,६ कर्मों की उदीरणा। ७वें, ८वें और ९वें गुणस्थान में ६ कर्म की उदीरणा। यहाँ ७ में आयुष्य कर्म घटता है और ६ में आयुष्य और वेदनीय दोनों कर्मघटतेहक्त। दसवें गुणस्थान के प्रार भ में ६ और अ त में ५ कर्म की उदीरणा मोहकर्म और घटा। ११वें गुणस्थान में ५ की और १२वें के प्रार भ में ५ की अ त में २ कर्म (नाम–गोत्र कर्म) की उदीरणा। तेरहवें गुणस्थान में दो कर्म की उदीरणा और १४वें में २ की तथा अ त में अनुदीरणा।

**(९) सत्ता–** १ से ११ गुणस्थान तक ८ कर्म की सत्ता। १२वें गुणस्थान में ७ कर्मों की सत्ता। १३वें १४वें गुणस्थान में ४ अघाति कर्म की सत्ता।

**(१०) निर्जरा–**दस गुणस्थान तक ८ कर्मों की निर्जरा। ११ वें १२वें गुणस्थान में ७ कर्मों की निर्जरा। १३वें १४वें में ४ कर्मों की निर्जरा।

**(११) चारित्र**–सामायिक आदि ५ चारित्र है। १ से ४ गुणस्थान तक मेंअस यम। पाँचवेंमेंस यमास यम। छट्ठे–सातवें में ३ चारित्र– सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्ध। आठवें नौवें में २ चारित्र, परिहारविशुद्ध कम हुआ। दसवें में–१ सूक्ष्म स पराय। उपर के ४ गुणस्थानों में एक यथाख्यात चारित्र होता है।

**(१२) निय ठा–** पाँच गुणस्थान तक निय ठा नहीं। छट्ठे गुणस्थान में चार– पुलाक, बकुश, प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। सातवें गुणस्थान में तीन, पुलाक नहीं। आठवें, नौवें, दसवें में एक कषाय कुशील। ११ वें १२वें में एक निर्ग्रंथ। १३ वें १४ वें में एक स्नातक निय ठा होता है।

**(१३) परीषह–** तीन गुणस्थान तक परीषह नहीं। चौथे, पाँचवें





गुणस्थान में एक दर्शन परीषह। छट्ठे सातवें में २२ परीषह। एक साथ में २० होवे=शीत–उष्ण में से एक और चर्या-निषद्या में से एक होवे। यों २ कम होवे। आठवें में २१, दर्शन परीषह नहीं और एक साथ में १९ होवे। नौवें में १८। स्त्री, भय, अरति ये तीन परीषह कम होवे। दसवें से १२ वें गुणस्थान तक निषद्या, याचना, अचेल, सत्कार-पुरस्कार मोहनीय के ये ४ कम होने से १८–४=१४। जिसमें १२ परीषह साथ में होवे, चरिया-शय्या परीषह साथ में नहीं वेदे एव शीत-उष्ण में से एक वेदे। १३वें १४वें गुणस्थान में ११। जिसमें एक साथ ९ परीषह होवे। दो परीषह साथ में नहीं होवे १०वें गुणस्थान के समान। परीषह स ब धी परिज्ञान भगवती श.८ उद्दे.८ से स्पष्ट होता है।

**(१४–१५) गुणस्थानों में परस्पर आगतगत–(१)** दूसरे से छट्ठे गुणस्थान वाले सभी **पहले गुणस्थान** में आ सकते है। पहले गुणस्थान वाले तीसरे, चौथे, पाँचवें और सातवें गुणस्थान में सीधे जा सक्तेहक्त। दूसरे छट्ठे और आठवें से ऊपर के गुणस्थान में सीधे नहीं जाते। **(२)** चौथे, पाँचवें, छट्ठे गुणस्थान वाले सीधे **दूसरे गुणस्थान** में आ सकते है और दूसरे गुणस्थान वाला मात्र एक प्रथम गुणस्थान में ही जाता है। **(३) तीसरे गुणस्थान** में १,४,५,६ गुणस्थान वाला सीधा आ सकता है और तीसरे वाला १,४,५,७ में सीधा जा सकता है। **(४) चौथे गुणस्थान** में १,३,५,६ एव ७ से ११ गुणस्थान वाले आ सकते है और चौथे वाला १,२,३,५,७ गुणस्थान में सीधा जा सकता है।

**(५) पाँचवें गुणस्थान** में १,३,४,६ गुणस्थान वाले आवे और पाँचवें वाला १,२,३,४,७ वें गुणस्थान में जावे। **(६) छट्ठे गुणस्थान** में–एक सातवें गुणस्थान वाला ही आता है और छट्ठे वाला १,२,३, ४,५,७ में जाता है।

**(७) सातवें गुणस्थान** में १,३,४,५,६,८ वें गुणस्थान वाले आते हक्त और सातवें गुणस्थान वाला ६,८,४ में जाता है अर्थात् चढ़े तो आठवें, पडे तो छट्ठे, काल करे तो चौथे में जावे। **(८ से १४)** ये गुणस्थान कोष्टक से समझ लेना। इनमें चढ़े तो, पड़े तो तथा काल

करे तो, ऐसा बोलना। १२ वें १३ वें गुणस्थान में काल नहीं करे, मात्र चढ़े ही। १४ वें में मात्र काल करके मोक्ष में जावे किन्तु चढ़े पड़े नहीं।

**(१६) सम्यक्त्व(समकित)**–पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व। दूसरे में सास्वादन। तीसरे में मिश्र। चौथे से सातवें तक में ४– उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और वेदक समकित। आठ से ११ तक में–२, क्षायिक और उपशम। १२,१३,१४ गुणस्थान में एक क्षायिक समकित। इस द्वार में ५ समकित और मिथ्यात्व और मिश्रदृष्टि गिन कर कुल सात का कथन है।

**(१७) आहारक**– पहला, दूसरा, चौथा और तेरहवाँ ये चार गुणस्थान आहारक अनाहारक दोनों। वाटे वहेता एव केवली समुद्घात की अपेक्षा। १४वाँ गुणस्थान अनाहारक। तीसरा तथा पाँचवें से १२वें तक के ९ गुणस्थान आहारक ही है, अनाहारक नहीं होते।

**(१८) ध्यान**– १,२,३ गुणस्थान में आर्त–रौद्र २ ध्यान। चौथे, ५वें में ३–धर्म ध्यान बढा। छट्ठे में–२, आर्त,धर्म। सातवें में–१ धर्मध्यान। आठ से १४ तक एक शुक्लध्यान। एक से ६ तथा तेरहवाँ इन सात गुणस्थानों में ध्यान रहित(ध्याना तरित=ध्यान सिवाय) अवस्था भी होती है। शेष गुणस्थान अप्रमत्त और अल्प समय वाले अर्थात् अ तर्मुहूर्त की स्थिति वाले होने से उनमें धर्म या शुक्ल में से एक ध्यान अवश्य होता है।

**(१९) स ज्ञा**– १ से ६ गुणस्थान तक चारों स ज्ञा। आगे स ज्ञा नहीं होती। उन्हें नोस ज्ञोपयुक्त कहा जाता है। **(२०) स हनन**– १ से७ गुणस्थान तक छहों स हनन। (७ से ११ गुणस्थान तक ३ स हनन क्रमशः। १२,१३, १४ गुणस्थान में एक वज्रऋषभनाराच स हनन होता है।

**(२१) समुद्घात**–१ से ५ गुणस्थान तक (तीसरा छोडकर) ५ समुद्घात क्रमशः। तीसरे में दो– वेदनीय, कषाय। क्योंकि इसमें जीव मरता नहीं है और उत्तर वैक्रिय भी करता नहीं है। छट्ठे गुणस्थान में ६, केवली समुद्घात को छोड़कर। सातवें में ४–वेदनीय, मारणा तिक, वैक्रिय, आहारक। इसमें वैक्रिय आहारक समुद्घात छट्ठे गुणस्थान में प्रर भकी हुई होती है। क्यों कि वैक्रिय, आहारक योग होने से वे दोनों समुद्घात गिनी गई है। तेरहवें गुणस्थान में एक केवली समुद्घात। भगवतीसूत्र श.२५ में १०,११,१२ गुणस्थान में समुद्घात नहीं कही है, सूक्ष्मस पराय





चारित्र और निर्ग्रंथ निय ठा की अपेक्षा। उसके आधार से ८,९,१०,११, १२,१४ गुणस्थान में समुद्घात नहीं होती।

**(२२) शाश्वत**– १,४,५,६,१३ ये पाँच गुणस्थान लोक में शाश्वत त्त। शेष ९ गुणस्थान अशाश्वत हक्त, अल्पस्थिति होने से।

**(२३) एक समय में नया उपजे**–१ से ५ गुणस्थान में एक समय में जघन्य एक, उत्कृष्ट अस ख्य नये हो सकते। छट्ठे, सातवें में उत्कृष्ट अनेक हजार। आठ से दस गुणस्थान में उत्कृष्ट १६२। ११ वें में ५४। १२,१३,१४ में उत्कृष्ट १०८ नये हो सकते।

**(२४) परिमाण(पावे)**–पहले गुणस्थान में अन त जीव होते हक्त। दूसरे से पाँचवें तक अस ख्य जीव होते हक्त। छट्ठे गुणस्थान में सदा अनेक हजार करोड साधु–साध्वी(सच्चे)होते हक्त। सातवें में उत्कृष्ट अनेक सौ करोड हो सकते हक्त जघन्य १,२,३ भी होवे। आठ से १२वें गुणस्थान में उत्कृष्ट अनेक सौ होवे। तेरहवें गुणस्थान में सदा अनेक करोड केवली होवे। १४वें गुणस्थान में उत्कृष्ट १०८ होवे।

**(२५) अल्पाबहुत्व**– सबसे थोडे ग्यारहवें गुणस्थान वाले ५४। (अनेक सौ) १२ वें १४ वें वाले स ख्यात गुणे–१०८(अनेक सौ)। ८,९,१० गुणस्थान वाले परस्पर तुल्य स ख्यातगुणे, अनेक सौ। १३वें गुणस्थान वाले स ख्यातगुणे अनेक करोड़ पावे। सातवें वाले स ख्यात गुणे अनेक सौ करोड़। छट्ठे वाले स ख्यातगुणे, अनेक हजार करोड़। पाँचवें वाले अस ख्यगुणे। दूसरे वाले अस ख्यगुणे। चौथे वाले अस ख्यगुणे। उससे प्रथम गुणस्थान वाले अन तगुणे।

**प्रश्न–६ : तीसरे गुणस्थान में १० योग किस प्रकार समझें ?**

**उत्तर**– यह गुणस्थान नारकी देवता वगैरह चारों गति में होता है। तथापि इस गुणस्थान में कोई भी उत्तर वैक्रिय शरीर नहीं बनाते। जन्म मरण तो इस गुणस्थान में होता ही नहीं है। अतः तीन मिश्र योग और एक कार्मण योग तथा आहारक योग ये पाँच नहीं होने से १५–५=१० योग होते हक्त।

इस गुणस्थान की स्थिति अ तर्मुहूर्त मात्र की ही होती है।

इतने अल्प समय में उत्तर वैक्रिय करने का स योग नहीं होता है। उत्तर वैक्रिय नहीं करने से वैक्रिय मिश्र नहीं होता। जन्म मरण नहीं होने से औदारिक, औदारिकमिश्र और कार्मण नहीं होता। ये तीन तथा आहारक और आहारकमिश्र ये ५ कम होने से १० योग कहे हक्त ।

**प्रश्न-७ : पाँचवें और सातवें गुणस्थान में योग ११ होते हक्त या १२ होते हक्त ?**

**उत्तर-** इस गुणस्थान वाला मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय जीव वैक्रिय शरीर बनाते हक्त तब वैक्रिय मिश्र और वैक्रिय दोनो योग होते हक्त और वैक्रिय से निवृत्त होकर पुनः औदारिक में प्रवेश करते समय पहले औदारिक मिश्र होता है फिर औदारिक योग होता है। ऐसा आगम कथित केवली समुद्घात के वर्णन से ज्ञात होता है। अतः इस गुणस्थान में आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण इन तीन को छोडकर १५-३=१२ योग है। कर्मग्रंथ में ११ योग कहे गये है वहाँ औदारिक मिश्र नहीं माना गया है अर्थात् वहाँ वैक्रिय से सीधा औदारिक योग स्वीकारा है। औदारिक मिश्र मानने स ब धी अपेक्षा भेद के कारण यह अ तर है-थोकडा में १२ योग और कर्मग्रंथ में ११ योग कहे जाते हक्त ।

इसी अपेक्षा भेद से सातवें गुणस्थान में ११ योग कहे जाते हक्त। वहाँ वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारंभ नहीं होता है। अतः दोनों का मिश्र योग नहीं होता और दोनों समुद्घातों की समाप्ति भी वहाँ नहीं होवे इस अपेक्षा औदारिक मिश्र भी नहीं होवे। यदि वैक्रिय या आहारक की समाप्ति सातवें गुणस्थान में हो तो वहाँ औदारिक मिश्र स्वीकार करने पर सातवें गुणस्थान में भी पाँचवें गुणस्थान के समान १२ योग स्वीकारना होगा। जिसमें आहारकमिश्र वैक्रियमिश्र और कार्मण ये तीन योग कम होने से १५-३=१२ योग होंगे।

**सार-** वैक्रिय और आहारक समुद्घात से निवृत्त होकर औदारिक में आते समय औदारिक मिश्र होने या नहीं होने की मान्यता भेद से यह भिन्नता समझ लेनी चाहिये।





# परिशिष्ट-२

## सूरत से विमलकुमारजी नवलखा के प्रश्नों के उत्तर

[**इस पुस्तक का प्रूफ पढने के बाद भेजे गये ये प्रश्नोत्तर हक्त** ]

**प्रश्न-१**-धनुष और अ गुल आदि किस तरह माना गया है ?

**उत्तर-** चार गति के जीवों की अवगाहना जो शास्त्रों में धनुष, हाथ, अ गुल आदि में कही जाती है, उस अ गुल माप को **उत्सेधा गुल** कहा जाता है, ऐसे अ गुल शास्त्र में तीन प्रकार के कहे गये है और उनका उपयोग तीन तरह का अलग-अलग बताया गया है। वे तीन अ गुल इस प्रकार है-(१) प्रमाणा गुल (२) आत्मा गुल (३) उत्सेधा गुल।

**(१)** भरत चक्रवर्ती राजा की ५०० धनुष की शरीर की अवगाहना थी। उनकी एक अ गुल की जो चौडाई होती है उसे **प्रमाणा गुल** कहते है। उनके हाथ की कोहनी तक जो लम्बाई होती है उसे प्रामाणा गुल का एक हाथ कहा गया है और उनके दोनों हाथों को सीधा फैलाने से जो धनुष का माप होता है वह प्रमाणा गुल का धनुष होता है। लोक की सभी शाश्वत चीजों का, क्षेत्रों का, नदी, पर्वत, द्वीपसमुद्रों, नरक पृथ्वियों आदि का माप इस प्रमाणा गुल के धनुष से और इसके योजन से कहा जाता है।

**(२)** अपने-अपने किसी भी समय में जो प्रमाणोपेत सुडौल मानव हो उसके अ गुल, हाथ, धनुष का जो माप होता है उसे **आत्मा गुल** कहतेहक्त। यह आत्मा गुल प्रत्येक जमाने में भिन्न-भिन्न होता है। इस माप से अपने-अपने जमाने के घर, खेत, जमीन, दरवाजे, भवन आदि केमाप होतेहक्त। साधुचर्या में दो कोस आहार पानी ले जाने की मर्यादा भी आत्मा गुल से होती है अर्थात् २४वें तीर्थंकर के साधुओं के समय दो कोस छोटा होता है तो २०वें, १६ वें आदि तीर्थंकरों के समय कोस बडा होता है। इस प्रकार अपने-अपने जमाने के आवश्यक

माप उस समय के आत्मा गुल से होते हक्त । आत्मा गुल का हर जमाने में अलग-अलग माप बनता है जब कि प्रमाणा गुल और उत्सेधा गुल सदा एक निश्चित ईकाई वाले ही रहते हक्त ।

(३) आधा पाँचवाँ आरा बीतने पर जो मनुष्य होंगे, उस समय के अनुसार प्रमाणोपेत मनुष्य के अ गुल की जो चौडाई होगी, वह एक उत्सेधा गुल कहा गया है। उस मानव के हाथ की कोहनी से मध्यमा अ गुलि के नख तक जो ल बाई होगी, वह उत्सेधा गुल का हाथ कहा गया है और उस समय के मनुष्य चार हाथ के धनुष को उत्सेधा गुल का एक धनुष कहा गया है। उत्सेधा गुल का माप भी सदा स्थिर एक ही रहता है। इस उत्सेधा गुल के हाथ, धनुष, कोस आदि से चार गति के जीवों की अवगाहना शास्त्रों में कही जाती है। यों तो अपने हाथ से सभी मानव प्रायः ४ हाथ के अर्थात् अपने एक धनुष के होते हक्त। किन्तु शास्त्र में अवगाहनाएँ उत्सेधा गुल से कही गई है। जैसे प्रथम तीर्थंकर के समय भरत आदि की अवगाहना ५०० धनुष की कही गई है। वे भी अपने हाथ से तो ४ हाथ या एक धनुष के ही थे पर तु उत्सेधा गुल के धनुष की अपेक्षा ५०० धनुष के थे। अपने इस जमाने में हम अपने हाथ से करीब ४ हाथ अथवा एक धनुष के ही है किन्तु हमारी शास्त्रीय अवगाहना उत्सेधा गुल के माप से है उससे हम करीब डेढ धनुष के हक्त। पर परा अनुसार आधे पाँचवें आरे के समय प्रमाणोपेत मानव का हाथ, एक फुट के करीब माना गया है और वर्तमान के मानव का हाथ डेढ फुट के करीब देखा जाता है। इस **उत्सेधा गुल के माप से** भगवान महावीर स्वामी दो धनुष के करीब थे और ऋषभदेव भगवान ५०० धनुष के करीब थे। इसी माप से तीन कोस के युगलिये ६००० धनुष के होते हक्त। इस प्रकार ये तीनों प्रकार के अ गुल और इनका प्रयोजन-उपयोग **अनुयोगद्वार सूत्र** में कहा गया है।

**प्रश्न-२ : पाताल कलशे नीचे १ लाख योजन कहाँ से कहाँ तक है ?**

**उत्तर-** हमारी जो पृथ्वी, समभूमि है यह रत्नप्रभा पृथ्वी प्रथम नरक का ऊपरी छत ही है अलग कोई पृथ्वी नहीं है। इस हमारी समभूमि से यह प्रथम नरक का पृथ्वीपिंड़ नीचे एक लाख अस्सी हजार योजन





तक है। उसके बाद इस पृथ्वी का किनारा आ जाता है। पाताल कलशे लवण समुद्र में है। वह समुद्र १००० योजन ऊँड़ा है। उसकी नीचे की सतह-भूमि से पाताल कलश का मुख प्रार भ होता है और वहाँ से एक लाख योजन नीचे तक पाताल कलश का अ तिम किनारा है। यह पूरी एक लाख की उसकी ऊँडाई रत्नप्रभा पृथ्वी में ही समाविष्ट होती है क्योंकि ये कलश एक लाख योजन ऊँड़े हक्त और प्रथम नरक रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन ऊँड़ी है। अतः पाताल कलशों को रहने की जगह इस रत्नप्रभा पृथ्वी में ही मिली हुई है और कहीं बाहर नहीं गये हुए हक्त। इन पाताल कलशों की ठीकरी १००० योजन की जाडी सर्वत्र ऊपर नीचे चौतरफ होती है। उसके सिवाय बीच का पोलार भाग होता है। इनका मुख स्थान और तलस्थान दस हजार योजन का ल बा-चौडा है और बीचोबीच में ये पाताल कलशे एक लाख योजन के चौडे हक्त। इस प्रकार एक हजार योजन का पानी है, फिर १ लाख योजन के कलश हक्त और फिर भी नीचे ७९०००योजन रत्नप्रभा पृथ्वी बाकी रहती है। व्य तरों के नगर, भवनपतियों के भवन और नारकी जीव इन सभी के स्थान जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र के नीचे नहीं होते। उसके बाद की भूमि में होते हक्त। अतः पाताल कलशों से किसी को बाधा नहीं आती है।

**प्रश्न-३ : सलिलावती विजय १००० योजन ऊँड़ी कैसे है ?**

**उत्तर-** यह एक विजय ही कुए जैसी ऊँड़ी हो वैसा नहीं समझना। मेरु पर्वत के पश्चिम से महाविदेह क्षेत्र की पूरी जमीन गोघाट जैसी ढ़लाव वाली है अर्थात् १७वीं विजय से २४ वीं विजय तक और ३२वीं विजय से २५ विजय तक यों कुल १६ विजय की भूमि क्रमशः नीचे-नीचे होती गई है। यों क्रमशः घटते हुए दोनों तरफ की सात-सात विजय तो ९०० योजन के तिर्च्छेलोक तक ही ऊँड़ी हुई है किन्तु अ तिम २४वीं सलिलावती और २५वीं वप्रा ये दो विजय साधिक ९०० से प्रारंभ होकर १००० योजन तक ऊँड़ी हो गई है। उन दोनों विजय के बाद शीतोदामुख वन भी नीचालोक में है। उसके बाद वहाँ लवण समुद्र की सीमा के पहले १२योजन चौड़ी जगती की भूमि है जो हजार

योजन ऊँची है। उस १००० योजन के बाद ऊपर आठ योजन ऊँची १२ योजन चौड़ी ज बूद्वीप की जगती(परकोटा) है। इस १२ योजन की जगती के बाद लवण समुद्र की क्षेत्र सीमा है। लवण समुद्र का पानी प्रार भ में तो ज्यादा ऊँडा नहीं है। क्रमशः ऊँड़ाई बढ़ती है। ९५००० योजन जाने पर १००० योजन की ऊँड़ाई पानी की होती है। अतः सलिलावती विजय के बाद तो सेकड़ों योजन तक नजीक में कहीं लवणसमुद्र का पानी है ही नहीं। अतः उसमें लवण समुद्र का पानी घुसने की शक्यता नहीं होती है। पश्चिम महाविदेह की सीतोदा महानदी का पानी लवण समुद्र की नीचे की भूमि में चलते-चलते ९५००० योजन जाने के बाद समुद्र के पानी में मिलता है अथवा बीच में ही भूमि में बिखर कर समाप्त हो जाता है। इस अपेक्षा से दो तीर्थंकर विहरमान अभी नीचा लोक में २४ वीं सलिलावती विजय में और २५ वीं वप्रा विजय में है। लोक के नक्शे में यह पश्चिम महाविदेह की ढ़ाल रूप विशेषता अनादि स्वभाव से है अर्थात् ढ़ाल कभी बनी नहीं है। प्रचलन में अधूरी बात प्रसिद्ध होने से मात्र सलिलावती विजय की बात ही चर्चा में आती है। जो कि समझ में नहीं जमे वैसी लगती है किन्तु पूरे पश्चिम महा विदेह की भूमि क्रमशः नीचे-नीचे ढ़लाव वाली है, यह बात समझ में आवे जैसी है।

**प्रश्न-४ : महाविदेह क्षेत्र में काल एक सरीखा होता है तो क्या वहाँ दिन-रात नहीं होते ?**

**उत्तर-** महाविदेह क्षेत्र में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप पुद्गल स्वभावों का परिवर्तन नहीं होता है। जिससे ६ आरों जैसा कालपरिवर्तन नहीं होता है। सदा केवल चौथा आरा जैसा पुद्गल स्वभाव बना रहता है। जिससे मनुष्यों की अवगाहना, स्थिति में भी बदलाव नहीं आता है। सदा एक करोड़ पूर्व की उत्कृष्ट उम्र एव ५०० धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

जो सूर्य चन्द्र हमारे यहाँ भरत क्षेत्र के ऊपर भ्रमण करते हक्त वे ही महाविदेह क्षेत्र में भी भ्रमण करते हक्त। अतः दिन रात आदि कालमान तो भरतक्षेत्र के समान वहाँ भी क्रमशः होता ही है।





**प्रश्न-५ : अढ़ाई उद्धार सागरोपम कितना होता है ? इससे द्वीप समुद्रों की स ख्या कैसे समझे ?**

**उत्तर-** एक योजन लम्बे, चौडे और ऊँड़े पल्य में उत्कृष्ट सात दिन के उगे हुए बालाग्र के अस ख्य ख ड़ करके ठूँस-ठूँस कर भरे जाय उसमें से एक सूक्ष्म समय में एक बालाग्र ख ड़ निकाला जाय और जितने समय में खाली होवे, वह काल एक सूक्ष्म उद्धार पल्योपम है, वैसे १० कोडाकोडी पल्योपम का एक उद्धार सागरोपम होता है। वैसे अढ़ाई उद्धार सागरोपम के जितने सूक्ष्म समय होते है उतने द्वीप समुद्र है अर्थात् अढ़ाई उद्धार सागरोपम के सूक्ष्म समयों के बराबर द्वीपसमुद्रों की स ख्या होती है। इस प्रकार एक सूक्ष्म समय में बालाग्र निकालने से **उद्धार** पल्योपम काल होता है। १००-१०० वर्षों से एक-एक बालाग्र निकालने से **अद्धा** पल्योपम सागरोपम होता है।एव उस एक योजन ल बे-चौडे पल्य के आकाशप्रदेश गिनने से **क्षेत्र** पल्योपम होता है। तीनों प्रकार से कुआँ(पल्य) खाली होने पर तीनों प्रकार के पल्योपम होते हक्त। उन्हें १० क्रोडाक्रोड से गुणा करने पर सागरोपम होता है। इन तीनों ही माप में अस ख्य वर्ष होते हक्त। अस ख्य और अन त की स ख्या को मात्र उपमा से समझ सकते हक्त। गिन्ती या स ख्या से अस ख्य और अन त को छद्मस्थ जीव नहीं समझ सकते ।

**प्रश्न-६ : देवलोक में एव ऊँचे-नीचे लोक में त्रस जीव कैसे गिने गये हक्त ?**

**उत्तर-** तिरछा लोक में सभी प्रकार के त्रसजीव होते हक्त पर तु देवलोकों में त्रस जीव केवल देवों को ही गिना गया है। उनके सिवाय कोई भी त्रस जीव देवलोक में नहीं होते हक्त।स्थावर में पाँचों प्रकार के सूक्ष्म एकेन्द्रिय देवलोकों में होते हक्त। बादर एकेन्द्रिय में तेउकाय देवलोको में नहीं होती एव बादर वनस्पति में प्रत्येक वनस्पति देवलोकों में नहीं होती, बादर साधारण वनस्पति और सूक्ष्म वनस्पति देवलोक में हो सकती है। साधारण वनस्पति (बादर निगोद) में क दमूल के सिवाय लीलण-फूलण, सेवाल, सिंगोड़ा आदि जलज वनस्पतियाँ वगैरह का भी समावेश होता है। सूक्ष्म वनस्पति तो सूक्ष्म निगोद रूप एक

ही प्रकार की होती है अर्थात् उसके एक शरीर में अन त जीव होते हक्त । चार स्थावर पृथ्वी आदि सभी जीव प्रत्येक शरीरी ही होते हक्त । उनके सूक्ष्म-बादर किसी में अन तकाय या अन तजीव नहीं होते। ऊँचा लोक में मेरु आदि पर्वतों की अपेक्षा सभी प्रकार के त्रस जीव वहाँ हो सकते है। नीचा लोक में भी सलिलावती और वप्रा दो विजयों की अपेक्षा एव १००० योजन ऊँडे समुद्रों की अपेक्षा ९०० योजन के बाद के १०० योजन में सभी प्रकार जलचर तिर्यंच त्रस जीव होते हक्त । पाताल कलशों के अ दर भी पानी में जलचर तिर्यंच त्रसजीव होते हक्त ।

**प्रश्न-७ : सूर्य चन्द्र की मेरु आदि पर्वत से और अलोक से दूरी किस तरह समझना ?**

**उत्तर-** यहाँ सूर्य चन्द्र नहीं बोल कर समुच्चय ज्योतिषी म डल की दूरी बोलना चाहिये। उसमें भी मुख्यता ताराम डल की होती है। क्योंकि शेष चारों ज्योतिषी विमानों की स ख्या अत्य त अल्प होती है, यथा- २ सूर्य २ चन्द्र ५६ नक्षत्र=१७६ ग्रह। जब कि तारा म डल की स ख्या क्रोड़क्रोड़ में होती है। इसलिये सर्वत्र तारों की बहुलता होने से प्रश्नोक्त दूरी तारों की अपेक्षा समझना। सूर्य चन्द्र तो अपने म ड़ल में भ्रमण करते हक्त। उनके म ड़ल तो मेरु आदि पर्वतों से और अलोक से ज्यादा दूर होते हक्त। मेरु पर्वत से ११२१ योजन दूरी तक में ज्योतिषी तारा विमान भी नहीं है और अलोक से तारा विमानों की दूरी ११११ योजन होती है। इस प्रकार ज्योतिषी म ड़ल का प्रार भ मेरु से ११२१ योजन दूर से होता है और ज्योतिषी म ड़ल का अ त लोका त से या अलोक से ११११ योजन पहले हो जाता है।

**प्रश्न-८ : व्य तर, परमाधामी और जृ भक देव कहाँ रहते हक्त ?**

**उत्तर-** अपनी समभूमि जो है वह प्रथम नरक रत्नप्रभा पृथ्वी का ऊपरी छत है। यह पृथ्वी नीचे १ लाख ८० हजार योजन की जाड़ी है। उसमें ऊपर १००० योजन तक की भूमि इस पृथ्वी का छत कहलाता है। उस छत में १०० योजन ऊपर और १०० योजन नीचे छोड़कर, बीच के ८०० योजन जाड़े क्षेत्र में व्य तर देवों के नगर हक्त। भूत, पिशाच,





यक्ष, राक्षस आदि आठ और आणपन्नी आदि आठ यों १६ प्रकार के व्य तरों के अस ख्य नगर हक्त। मेरु से उत्तर दिशा का लोक और दक्षिण दिशा का लोक ऐसे दो भाग कल्पित किये जाते हक्त। १६ व्य तरों के उत्तर के इन्द्र और दक्षिण के इन्द्र अलग-अलग होने से कुल ३२ इन्द्र व्य तर देवों के कहे गये हक्त। ये व्य तरों के नगर अस ख्यद्वीपों के नीचे की भूमि में हक्त, समुद्रों के नीचे नहीं है, क्यों कि समुद्र खुद हजार योजन ऊँड़े पानी से भरे होते हक्त। अत: वहाँ व्य तरों के नगरों के लिये जगह ही नहीं रहती है। व्य तरों के नगर भी मणिरत्नों के होने से सदा प्रकाशमान रहते हक्त। सूर्य का प्रकाश वहाँ नही है। ये देव पाताल में है तो भी इनका अपना देवलोक कहलाता है। जहाँ मनुष्य की अपेक्षा सभी प्रकार के अनुपम सुख एव सुविधाएँ होती है।

ये नगर कोई जघन्य भरतक्षेत्र जितने बड़े और उत्कृष्ट जम्बूद्वीप जितने होते हक्त, ऐसा पर परा से प्राप्त होता है। यहाँ मूलपाठ में ऐसा कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

**जृ भकदेव** आणपन्नी आदि इन्द्रों के आधीनस्थ होते हक्त उनके स्वत त्र इन्द्र नहीं होते। जृ भक देव भी ८०० योजन में ही ऊपरी ८० योजन क्षेत्र में होते हक्त। विशेष में तिरछालोक के १७० दीर्घ वैताढ्य की द्वितीय श्रेणी में अर्थात् समभूमि से २० योजन ऊपर जाने पर जृ भकों के निवास है। क चनपर्वत, जमगपर्वत आदि गोपुच्छ स स्थान वाले पर्वतों पर भी जृ भक देवों का निवास स्थान तिरछालोक में है ।

**परमाधामी देव** असुरकुमार जाति के भवनपति देवों में समाविष्ट है। इनकी उम्र उत्कृष्ट १ पल्योपम की होती है। अत: ये देव नारकी जीवों को दु:ख देने के लिये प्रथम नरक तक ही जा सकते है, ऐसा स्वीकार करना चाहिये। व्य तर भी १ पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले होने से प्रथम नरक में ही जा सकते हक्त ऐसा भगवती सूत्र में कथन है। असुरकुमार देव १ सागरोपम की उत्कृष्ट उम्र होने से तीसरी नरक तक जा सकते हक्त और वैमानिक देव उम्र की योग्यता अनुसार पहली नरक से सातवीं नरक तक जा सकते है। परमाधामी देवों का निवास असुरकुमार जाति के देवों के साथ में है। जो समभूमि से नीचे ४०००० योजन

जाने पर प्रथम नरक पृथ्वी के अ दर तीसरे आ तरे में है। अर्थात् प्रथम नरक के ३ पाथड़े और २ आ तरे पार करने के बाद तीसरे आ तरे में कुछ दूर जाने पर भवनपति देवों में असुरकुमारों के भवनावास आते हक्त। फिर क्रमशः १२वें आ तरे तक १० भवनपतियों के स्तनितकुमार देवों तक के भवनावास हक्त। कहीं कहीं दूसरे आ तरे से ११ वें आ तरे तक का कथन भी मिलता है किन्तु वह कथन भगवती सूत्र के चालीस हजार योजन के पाठ से विपरीत होता है। क्योंकि समभूमि से चालीस हजार योजन तीसरे आ तरे में ही पूरे होते हक्त।

**प्रश्न-९ : तारा विमानों की स ख्या अत्यधिक है तो उनमें परस्पर कितना अ तर होता है ?**

**उत्तर-** ताराओं का परस्पर अ तर दो प्रकार से होता है- स्वाभाविक और व्याघात की अपेक्षा। (१) स्वाभाविक रूप से ताराओं का परस्पर अ तर जघन्य ५०० धनुष होता है और उत्कृष्ट दो कोस होता है। यह न्यूनतम और अधिकतम अ तर है मध्यम कोई भी हो सकता है। (२) व्याघात की अपेक्षा- तारों के चलने के मार्ग में कहीं पर्वत या पर्वत के कूट आवे तो उस क्षेत्र की सीध में चलने वाले ताराओं में परस्पर अ तर सदा के लिये अधिक ही होता है अर्थात् उस पर्वत या कूट की चौडाई+आठ आठ योजन उस पर्वत या कूट से दूरी भी रहती है।

जो पर्वत या कूट ७९० योजन से ऊँचे होते हक्त वे ही इन ताराओं के मार्ग में आते हक्त। यथा- निषध और नीलपर्वत ४०० योजन ऊँचे हक्त उस पर कूट पाँचसो योजन ऊँचे हक्त। वे कूट ताराओं के मार्ग में व्याघात रूप में आते हक्त। ज्योतिष म डल के क्षेत्र में ये कूट २५० योजन चौडे होते है। वहाँ कूट के पूर्व और पश्चिम में चलने वाले ताराओं का अ तर २५०+८+८=२६६ योजन होता है। २५० योजन से कम चौडे कोई पर्वत या कूट तारों के बीच मार्ग में नहीं आते हक्त।

ताराओं का उत्कृष्ट व्याघात मेरु पर्वत से होता है। मेरु ताराओं के भ्रमण क्षेत्र में १०००० योजन चौडा है और ताराम डल मेरु से ११२१ योजन चारों तरफ दूर ही रहते हक्त। अतः पूर्व और पश्चिम के ताराओं का परस्पर व्याघात की अपेक्षा उत्कृष्ट अ तर मेरु पर्वत की अपेक्षा





१००००+११२१+११२१=१२२४२ योजन का होता है। मध्यम व्याघात ७९० योजन से अधिक ऊँचे पर्वत वृत वैताढ्य, जमगपर्वत आदि के द्वारा बनती है। इससे ज्ञात होता है कि ताराविमान या कोई भी ज्योतिषी विमान मेरु के सिवाय अन्य ऊँचे पर्वतों से ८ योजन दूर ही चलते हक्त।

# परिशिष्ट-३

## मात्र जिनकल्प ही एकल विहार है क्या आगमो में ?

जैनप्रकाश, दिल्ली में प्रकाशित उदयमुनि के निब ध का यह उत्तर है।

***इस विषय में जिनकल्पी विशिष्ट साधकों के नाम से एका तिक निरूपण किया जाना यथार्थ और परिपूर्ण नहीं होता है किंतु अयथार्थ और अपरिपूर्ण(अधूरा) कथन होता है। क्यों कि आगमों में सपरिस्थिक अल्प पुण्या शों वाले एकाकी विहारचर्या वालों का भी वर्णन किया गया है।***

(१) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-२७ में गर्गाचार्य के ५०० शिष्यों में से एक भी अनुकूल नहीं रहा। तब दुःखी होकर सब को छोडकर एकाकी विचरना म जूर किया। यहाँ कोई भी जिनकल्प आदि या गुरु आज्ञा वगैरह की कोई बात नहीं है। मात्र पापकर्मों के या अनादेय नाम कर्म के कारण अकेले रह कर भगवान महावीर के शासन में मोक्षगामी हुए, ऐसा स स्कृत टीका एव हिंदी व्याख्याओं में स्पष्टीकरण मिलता है।

(२) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-३२, गाथा ४-५ में ऐसे सपरिस्थितिक अर्थात् खुद के पुण्या शों की कमी से कोई समाधिकारक निपुण सहायक नहीं मिले तो साधु अपनी समाधि कायम रखने के लिये **एक्को वि पावाइ विवज्जय तो विहरेज्ज-** पापों से बचता हुआ अकेला भी विचरण कर सकता है। यह भी परिस्थितिक, स योगिक एकलविहार की शास्त्राज्ञा है।

(३) दशवैकालिक सूत्र की चूलिका-१, गाथा-१० में भी इसी प्रकार के कर्मों के कारण अकेला रहने की सपरिस्थितिक आज्ञा सूत्र में दी गई है। विक्रम की आठवीं शताब्दी में हुए आचार्य अगस्त्य सि ह सूरि ने इसकी चूर्णि-टीका करते हुए लिखा कि अब आगे की गाथा-११,१२ आदि में

शास्त्रकार श्री स्वय भवाचार्य ने अकेले सकारण रहने वाले साधु को क्या क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये, उन बातों का वर्णन किया है। वास्तव में वहाँ गाथा-११ से १६ तक सपरिस्थितिक अकेले रहना पडे ऐसे श्रमण के लिये अनेक सावधानियाँ सूचित की है। यह भी वर्णन जिनकल्पी आदि का नहीं है।

(४) सूत्रकृता ग सूत्र अध्ययन-१०, गाथा ११/१२ में भी सपरिस्थितिक एकलविहार का वर्णन है। वहाँ आधाकर्मी आहारपानी करने वालों के साथ रहने का(निषेध) वर्जन बताते हुए **आखिर वैसी परिस्थिति में सयम शुद्धि हेतु अकेला रहना भी स्वीकार करले, ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है, इसमें स देह करने की जरूरत नहीं है,** ऐसा कहा है, यथा- **एगत्तमेय अभिपत्थएज्जा=**परिस्थितिवश साधु अकेला रहना भी **अभिपत्थएज्जा=**स्वीकार कर ले। **एव पमोक्खो=** ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है। **ण मुस ति पास=**इसे असत्य मत समझो अर्थात् स यम शुद्धि, आत्मसमाधि के लिये अकेले रहकर भी साधना की जा सकती है। **एसप्प-मोक्खे, अमुसे, वरे वि=**इस प्रकार मोक्ष होना मृषा नहीं है और श्रेष्ठ भी है। यह उपरोक्त दो गाथाओं का अर्थ शब्दार्थ है। इस प्रकार यहाँ भी स यम शुद्धि के लक्ष्य से एव पुण्या शों की कमी वाले को अच्छा स योगाभाव में अकेले रहने की एव कल्याण करने की पूरी प्रेरणा की गई है।

(५) ज्ञातासूत्र में-२०६ साध्वियों का अकेले रहने का शास्त्रकार ने वर्णन भी किया और उन सभी को एक भव करके देवगति के बाद मोक्ष जाने का भी बता दिया है। जिससे एकलविहार को अन त कर्मस सार बढाने वाला कहने वाले विद्वान लेखक लोग स्पष्ट ही उत्सूत्र प्ररूपक होते हक्त। जब कि साधु के प्रकरण में व्यवहार सूत्र में आचार्य उपाध्याय को अकेले रहने की मनाई है। सामान्य साधु को अकेले की मनाई वहाँ नहीं है। और वहाँ व्यवहारसूत्र में साध्वी को अकेले रहने, विचरने, गोचरी जाने आदि की अनेक सूत्रों से मनाई की है किंतु अकेले साधु की मनाई का वहाँ एक सूत्र भी नहीं है। वहीं पर मात्र आचार्य उपाध्याय पदवीधरों को अकेले विचरने की स्पष्ट मनाई है। यहाँ ज्ञातासूत्र में भी साध्वियों के वर्णन से स्थविरकल्पी के एकल विहार को, सकारणता या प्रकृतिवश





के एकल विहार को बताया है न कि जिनकल्प को। क्यों कि साध्वियाँ जिनकल्पी होती नहीं है फिर भी उन २०६ सभी अकेली साध्वियों को एक भव से मोक्ष होना भी सूत्र में बता दिया है। जब कि साध्वी को अकेले नहीं रहने का स्पष्ट विधान **मूलपाठ व्यवहार सूत्र में** है तो भी यहाँ ज्ञातासूत्र में २०६ में से एक भी साध्वी के लिये सूत्रकार ने अन त स सार भ्रमण का कथानक नहीं कहा है। जब कि वहाँ व्यवहारसूत्र में साधु के अकेले रहने के निषेध नहीं है तो भी आज के विद्वान निब धकार लोग एका त रूप से अन त कर्मस सार बढाना कहते हक्त, मानो वे ही सर्वज्ञ बन गये हैं और मासिक, धार्मिक पत्रिकाओं पर उन्होंने ही अधिकार जमा रखा हो। मासिकपत्र वाले भी मानो उनके ही खरीदे हुए गुलाम जैसे बने रहते हक्त। वे सच्चे आगमिक निब ध छापने से मुँह छिपाते रहतेहक्त।

(६) युवाचार्यश्री मधुकरमुनि म.सा. के नेतृत्व वाली आगम बत्तीसी के व्यवहार सूत्र उद्देशक-८, सूत्र-५ का मूलपाठ अर्थ और विवेचन पृष्ट-४०६ से यहाँ अक्षरशः उद्धृत किया जा रहा है-

**सूत्र :- थेराण थेरभूमिपत्ताण कप्पइ द डए वा भ डए वा छत्तए वा मत्तए वा लट्ठिया वा भिसे वा चेले वा चेलचिलिमिलिं वा चम्मे वा चम्मकोसे वा चम्मपलिच्छेयणए वा अविरहिए ओवासे ठवेत्ता गाहावकुल पिंडवाय पडियाए पविसित्तए वा णिक्खमित्तए वा। कप्पइ ण सण्णियट्टचारीण दोच्च पि उग्गह अणुण्णवेत्ता परिहरित्तए।**

**सूत्रार्थ-** स्थविरत्व प्राप्त(एकाकी) स्थविरों को दड, भाड, छत्र, मात्रक, लाठी, काष्ठ का आसन, वस्त्र, वस्त्र की चिलमिलिका, चर्म, चर्मकोष और चर्मपरिच्छेदनक इत्यादि कोई भी उपकरण अविरहित स्थान में रखकर अर्थात् किसी को स भलाकर गोचरी के लिये जाना-आना कल्पता है। भिक्षाचर्या करके पुनः लौटने पर जिसकी देखरेख में द डादि रखे गये हक्त, उससे दूसरी बार आज्ञा लेकर अपने ही उन उपकरणों को ग्रहण करना कल्पता है।

**विवेचन-** इस सूत्र में ऐसे एकाकी विचरण करने वाले भिक्षु का वर्णन

है जो आचा.श्रु.१, अ.६ उ.२, सूय.श्रु.१ अ.१०, उत्तरा. अ.३२ गा. ५ तथा दशवै.चू.२ गा.१० में निर्दिष्ट सपरिस्थितिक एकलविहारी है। साथ ही शरीर की अपेक्षा वृद्ध या अतिवृद्ध है, **स्थविरकल्पी** सामान्य भिक्षु है और कर्मस योग से वृद्धावस्था तक भी वह अकेला रहकर यथाशक्ति स यम पालन कर रहा है।

शारीरिक कारणों से उसे अनेक औपग्रहिक उपकरण रखने पड रहे हैं। उन सभी उपकरणों को साथ लेकर गोचरी आदि के लिये वह नहीं जा सकता है। उसे असुरक्षित स्थान रहने को मिला हो तो वहाँ उन उपकरणों को छोडकर जाने पर बच्चे या कुत्ते उन्हें तोडफोड दें या लेकर चले जाएँ अथवा चोर चुरा ले इत्यादि कारणों से सूत्र में यह विधान किया गया है कि वह वृद्ध भिक्षु अपने उपकरणों की सुरक्षा के लिये किसी को नियुक्त करके जाए या पास ही कोई बैठा हो तो उसे सूचित करके जाए और पुनः आने पर उसे सूचित कर दे कि मैं आ गया हूँ, उसके बाद ही उन उपकरणों को ग्रहण करे। शारीरिक स्थितियों से विवश अकेले वृद्ध भिक्षु के लिए भी इस सूत्र में जो अपवादों का विधान किया गया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि सूत्रकार की या जिनशासन की एकलविहारी श्रमणों के प्रति अत्य त उदार एव अनेका त दृष्टि है।

सूत्रोक्त वृद्ध भिक्षु चलते समय सहारे के लिये दड या लाठी रखता है, गर्मी आदि से रक्षा के लिये छत्र रखता है, मल-मूत्र-कफ आदि विकारों के कारण अनेक मात्रक रखता है, मिट्टी के घडे आदि भाड भी रखता, अतिरिक्त वस्त्र-पात्र रखता है, मच्छर आदि के कारण मच्छरदानी भी रखता है, बैठने में सहारे के लिये भृसिका-काष्ठ आसन रखता है, चर्मख ड, चर्मकोष(उपानह-जूता आदि)या चर्मछेदनक भी रखता है अर्थात् इनमें से अपने आवश्यक उपयोगी कोई भी उपकरण रखता है। उनमें से जिन उपकरणों की गोचरी जाने के समय आवश्यकता न हो उनके लिये सूत्र में यह विधान किया गया है। विशिष्ट साधना वाले पडिमाधारी या जिनकल्पी भिक्षु औपग्रहिक उपकरण रखने आदि के अपवादों का सेवन नहीं करते हक्त और गच्छगत भिक्षु की ऐसी सूत्रोक्त





परिस्थिति होना स भव भी नहीं है, क्यों कि गच्छ में अनेक वैयावृत्य करने वाले साधु होते हक्तअत: परिस्थितिवश स्थविरकल्प वाले सामान्य बहुश्रुत भिक्षु भी जीवनपर्यंत एकाकी रहकर यथाशक्ति स यममर्यादा का पालन करते हुए विचरण कर सकता है, यह इस सूत्र के मूल पाठ से स्पष्ट होता है। खासियत तो यह है कि ऐसे अपवाद सेवन रूप उपकरणों को रखने वाले अकेले साधु के लिये भी शास्त्रकारों ने विधान रूप में सूत्र में स्थान दिया है। तो भी हमारे विद्वान गिने जाने वाले निष्ठुर बनकर उत्सूत्र प्ररूपणा कर के स तोष मानते है।

(७) व्यवहारसूत्र, उद्देशक-६, सूत्र-६, ७ में अकेले भिक्षु को कैसे उपाश्रय में नहीं रहना और कैसे उपाश्रय में रहना हो तो किस विधि से रहना इस बात का खुलाशा किया गया है। यह विधान भी सपरिस्थितिक अकेले साधु की अपेक्षा है। इसमें अल्प श्रुतज्ञानी और बहुश्रुत दोनों के लिये विधि और निषेध के सूचन है। अत: ये दोनों सूत्र भी जिनकल्पी पडिमाधारी की अपेक्षा नहीं है और इन सूत्रों में अकेले साधु का उल्लेख स्पष्ट है। देखने के लिये आगम समिति ब्यावर से(मधुकर मुनि का) छपा व्यवहारसूत्र पृष्ट-३८०, ३८१ पूरा देखा जा सकता है ।

इस प्रकार के अनेक आगम प्रमाणों की उपेक्षा करके आज के विद्वान कहे जाने वाले श्रमण अधिकतम कथाओं की बातें लेकर और सूत्र की एकपक्षीय बातों से मनचाहा उत्सूत्र प्ररूपण करते हक्त एव उसे आगम के प्रगाढ ज्ञान के अनभिज्ञ स पादक छाप भी देते हैं। यही पूरे समाज के पत्रकारों की दशा है। कम से कम आगम के नाम की बातें छापने में स पादकों को बहुत सतर्क होना चाहिये। लेखक लोग भगवान और आगम के नाम से मात्र पर परावादी उत्सूत्री और एका तवादी लेखन करते हक्त। जब कि शास्त्रकार ने एकलविहार के स ब ध में कितनी उदारता वर्ती है यह उपर बताये गये आगम प्रमाणों से सूज्ञ विद्वान समझना चाहे तो समझ सकते है। तदुपरा त पर परा को लेकर बैठने वाले एव तोतारट त करने वालों को कुछ भी समझ में नहीं आ सकता। क्यों कि कवि के शब्दों में कहा गया है-

**ज्यों कीडी मुख लवण ग्रही ने, शक्कर ढिग पर जावे ।**
**लवण त्याग किया बिन कीडी, शक्कर स्वाद न पावे ॥१॥**

इसी तरह खोटी पकडी पर परा, आगम विपरीत धारणा आदि का त्याग का लक्ष्य जब तक नहीं होगा तब तक आगम के और भी पचासों दृष्टा त दे दिये जाय तो भी दुराग्रह का त्याग किये बिना वे जँच नहीं सकते ।

इस प्रकार स्थविर कल्पी में अनेकों प्रकार के एकलविहारी आगम प्रमाणों से सिद्ध है फिर भी बडे बडे विद्वान कहे जाने वाले उत्सूत्र प्ररूपणा कर एकलविहारी स तों के प्रति अपनी निर्दयता और आक्रोश भरी दृष्टि से समय समय पर बरसते रहते हक्त ।

वास्तव में एकलविहारी स त अपनी परिस्थितिक लाचारी को स्वीकार करते हुए सही श्रद्धा प्ररूपणा, तप-स यम, ज्ञान-ध्यान से ज्ञातासूत्र की साध्वियों के समान कल्याण कर भी सकते हक्त किन्तु उनके नाम से एका तिक और खोटी प्ररूपणा करने वालों को खुद ही सोचने समझने का प्रयत्न करके अपने मानस को तथा अह को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। चातुर्मास सूची २००९ में १४ एकल विहारी आचार्य शिवमुनि की आज्ञा में छपे है और गुजरात की एक स प्रदाय में १७ मुनिराज के १३ चातुर्मास छपे हक्त जिसमें गच्छाधिपति सहित नौ अकेले स तों के चातुर्मास होते हक्त। वे भी सभी स प्रदाय की आज्ञा में हक्त। अकेले स त और अकेले दुकेली साध्वी अपने कर्मों के किसी भी उदय विचित्रता से जिन शासन में सदा से होते आये हक्त। शास्त्रकारों ने उनके साथ उदारता वर्ती है अर्थात् अकेली साध्वियों को भी आगम अ गसूत्र में स्थान दिया है और एक भव करके मोक्ष जाना भी कह दिया है। आज के एका तवादी पडितों की बुद्धि में तो एकलविहारी के लिये आगम में ऐसा मोक्ष होना, मिलना ईर्ष्या का फलदायी होगा। विचित्र कर्मों से ५०० साधुओं को छोडकर अकेले रहने वाले गर्गाचार्य को भी शास्त्रकार ने तिरस्कृत और नरकगामी नहक्त बताया है। व्यवहारसूत्र आचार्य भद्रबाहुस्वामी १४ पूर्वी का हक्त उसमें अकेले अति वृद्ध स त का कितना अनुग्रह भरा वर्णन है





कि वे सकारण अकेले तो है तथापि शरीर की परिस्थिति से अनेक आश्चर्य उपजावें वैसे उपकरण भी उनके पास हो सकते हक्त- छत्र आदि, तो भी शास्त्रकार ने उनका तिरस्कार युक्त वर्णन या निंदात्मक वर्णन न करके विधानात्मक वर्णन अनुक पा भरा किया है कि अपना सामान किसी के स रक्षण में रखकर गोचरी जावें ।

आज समाज में कितने ही आज्ञा में एकलविहारी है उदार गुरुओं के कारण तथा अनुदार गुरुओं के कारण अनाज्ञा में एकलविहारी है । किंतु है सभी अपनी अशुभ कर्मदशा, अ तरायकर्म, अनादेय नामकर्म या प्रकृति दोष आदि किसी भी अशुभ कर्मता के कारण है । दशवैकालिक सूत्र में दो चूलिका है पहली चूलिका में ऐसे अ तराय आदि कर्म वालों को अकेले रहने की प्रेरणा एव सावधानी कही गई है और दूसरी चूलिका में किसी भी परेशानी में स यम छोडने की स्पष्ट मनाई हिदायत करी है। दोनों चूलिकाओं का मिलकर तात्पर्य यह कि कैसे भी कर्म स योग है, स यम नहीं छोडकर अकेले रहकर कर्मों को निभा लेना बहेतर है। ऐसे अपने अशुभ कर्मों को पाटने वाले, साधुपने में रहने वाले सभी एकाकी श्रमण अनुक पा पात्र है। अतः विद्वान कहे जाने वालों को अनेका तिक विधानों से भरे आगम के नाम से आये दिन एका तवादी अशुद्ध प्ररूपणा करके अपनी विद्वत्ता का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये ।

०००००००

## इस पुस्तक में

**प्रूफ सहयोग :** श्री विमलकुमार जी नवलखा, सूरत
**सेटींग सहयोग :** श्री जिज्ञेश जोशी, राजकोट ।